



श्री राम उवाच-26

झीलों पर सूर्योदय

आचार्य श्री गमलाल जी म.सा.

प्रकाशक
साधुमार्गी पब्लिकेशन
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

श्री शम उवाच-26

झीलों पर सूर्योदय

आवृत्ति :	प्रथम संस्करण, मितम्बर 2022 4000 प्रतियाँ
मूल्य :	₹ 200/-
प्रकाशक :	साधुमार्गी प्रालिकेशन अन्तर्गत - श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, समता भवन, आचार्य श्री ननेश मार्ग, श्री जैन पी. जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड, गंगाशहर, बीकानेर-334401 (राज.) फोन - 0151-227026, 3292177, 2270359
	e-mail : ho@sadhumargi.com visit us : www.sadhumargi.com
ISBN No. :	978-93-91137-01-4
मुद्रक :	पायोटाइट प्रिन्ट मीडिया प्रा. लि. उदयपुर

शांत बनें, शांत रहें...

उदय यानी उन्नति। उदय यानी विकास। उदय यानी प्रकट होना। सूर्योदय का उदय यानी प्रकाश का विकास। प्रकाश प्रकट होना। सूर्योदय हमेशा झीलों पर ही होता है। झील शांति और संतोष का प्रतीक है। न वह नदी की तरह चंचल है और न ही समुद्र के समान अतृप्ति।

सूर्योदय इशारा करता है नयी शुरुआत का। सूर्योदय देता है नवीन ऊर्जा। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की नयी शुरुआत करे, जन-जन को नवीन ऊर्जा मिले, इसके लिए आचार्य श्री रामलाल जी म. सा. संदेश देते रहते हैं। उनके संदेश केवल उनकी वाणी से ही नहीं निकलते अपितु उनकी क्रिया में भी संदेश होता है। गुरु राम का संदेश है कि शांत बनो, शांत रहो। हर परिस्थिति में शांत रहो। हर जर्मि पर शांत रहो। हर समय शांत रहो। शांत रहने के साथ आनंदित रहो। जो है और जैसा है उसी में आनंदित रहो। गुरु राम का यह संदेश पुस्तक ‘झीलों पर सूर्योदय’ में विभिन्न रूपों में संकलित है। यह संकलन सन् 2022 में झीलों की नगरी उदयपुर में सम्पन्न चारुमासि में आचार्य श्री द्वारा फरमाए गये व्याख्यानों से किया गया है।

गुरु राम का संदेश है कि ‘सच्ची डगर एक ही’ है और जो सच्ची डगर पर चलेगा उसकी बोधि आरोग्यमय होगी। बोधि आरोग्यमय होने से उसकी मनोभूमि हरी-भरी होगी। ‘मनोभूमि हो हरी-भरी’ तो व्यक्ति को ज्ञात हो जाता है कि ‘एक वंदना दुख दूर निवारे।’ ज्ञात होते ही ‘परम सफलता का सूत्र’ प्राप्त होने में देर नहीं लगेगी। विकास के शुभेच्छु पाठको! इस सूत्र से ‘परमात्मा से मुलाकात’ करें और जीवन में लाभ कमाएं।

यह पुस्तक लाभ कमाने का अवसर प्रदान करेगी। ऐसा लाभ जिसे सभी प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा लाभ जो सबका अंतिम ध्येय होता है। अंतिम ध्येय यानी मानव जीवन से मुक्ति। अंतिम ध्येय यानी मोक्ष। मोक्ष यानी जन्म-

मरण से छुटकारा। जन्म-मरण से छुटकारा प्राप्त करने का मतलब है जन्म-जन्म के दुखों से दूरी।

दूरी को दूर करने के लिए यह पुस्तक आपको देगी नवीन ऊर्जा। नवीन ऊर्जा से आप कर सकेंगे नयी शुरुआत। नयी शुरुआत से आपके जीवन में भी होगा सूर्योदय। झीलों पर सूर्योदय के समान शांत और तृप्ति। यह सूर्योदय सबको देगा शांति। सबको देगा तृप्ति। इस सूर्योदय की लालिमा सबके भीतर एक नयी रोशनी भरने वाली है। सबके जीवन को शुभ बनाने वाली है। जो अपने जीवन में नयी रोशनी चाहते हैं, जो शुभ मार्ग के पथिक बनना चाहते हैं उनके लिए ये संदेश महत्वपूर्ण साबित होंगे। परिवर्तनकारी होंगे। जिन्हें दुखों से दूर रहना है, जिन्हें वास्तविक सुख और शांति की तलाश है उनके लिए गुरु राम के ये संदेश बहुउपयोगी होंगे। ऐसे बहुउपयोगी संदेश स्वयं पढ़िए और सबको पढ़ने के लिए प्रेरित करिए।

इस पुस्तक के प्रकाशन में गलतियों से बचने का तो पूरा प्रयास किया ही गया है, भाव भी वही रखने का प्रयास है, जो आचार्य श्री ने व्याख्यान फरमाते हुए व्यक्त किये थे। सारी सतर्कता के बावजूद आचार्य श्री के भावों को जस-का-तस व्यक्त करने में हमसे कोई चूक हो गयी हो तो यह हमारी कमी है। अपनी इस कमी के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं। क्षमा के साथ हम यह भी चाहेंगे कि पाठक हमारी गलतियों को हमसे बतायें, जिससे भविष्य में हम उन गलतियों से बच सकें। हम उनके आभारी होंगे जो किसी भी प्रकार की त्रुटि से हमें अवगत करायेंगे।

संयोजक

साधुमार्गी पब्लिकेशन

अन्तर्गत श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

संघ के प्रति अहोभाव

हे पितृ तुल्य संघ! हे आश्रयदाता संघ!

संसार के प्रत्येक जीव की रक्षा के लिए सतत प्रयत्नरत संघ! तुम्हारी शीतल छाँव तले हम अपने परिवार के साथ तप-त्याग से युक्त आध्यात्मिक, सुखद जीवन जी रहे हैं। तुम्हारे ही आश्रय में रहकर हमने अपने नन्हे चरणों को आध्यात्मिकता की दिशा में बढ़ाया है। तुमने ही हमें आत्मा के अन्वेषण हेतु प्रेरित किया। तुम्हारी ही प्रेरणा से प्रेरित होकर हमने अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर बढ़ाया है। इस हेतु हम संघ का अभिवादन करते हैं।

संघ ने हम अकिञ्चन को इस पुस्तक ‘झीलों पर सूर्योदय’ के माध्यम से सेवा का अनुपम अवसर प्रदान किया। इस हेतु हम अपने आपको सौभाग्यशाली समझते हैं। अन्तर्भाविना से संघ का आभार व्यक्त करते हुए यह विश्वास करते हैं कि भविष्य में भी परम उपकारी श्री संघ शासन हमें सेवा का अवसर प्रदान करता रहेगा।

-अर्थ सहयोगी-

फटहलाल, रणजीतलाल, सम्पतलाल, गणपतलाल

दिनेश कुमार कावड़िया (गुड़ली वाला)

॥ सेवा है यज्ञकुण्ड, समिधा सम हम जलें॥

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	मनोभूमि हो हरी भरी	7
2.	सच्ची डगर एक ही	18
3.	मोक्ष का प्रवेश द्वारा	31
4.	दुःख सुमरियां दुःख होय	42
5.	ये आँखें और वह आँख	54
6.	एक बंदना दुख दूर निवारे	67
7.	विराम नहीं, अद्वि विराम	80
8.	जीवन में लाभ कमाए जा	94
9.	तन्मय यात्रा की साधना	111
10.	बोधि हो आरोग्यमय	126
11.	परमात्मा से मुलाकात	140
12.	कर्लूँ शुद्ध मन संथारो रे	152
13.	परम सफलता का सूत्र	159
14.	देव दर्शन ऐसे करें सुलभ	174



1. मनोभूमि हो हरी भरी

पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे अजित अजित गुणधाम।
जे तें जीत्या रे, ते मुझ जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम॥

अनादिकाल से जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा हुआ जीव जब कुछ शुभ पुण्य का संचय करता है तो मनुष्य जीवन को प्राप्त करता है। उसे जिनेश्वर देवों की वाणी को सुनने का अवसर प्राप्त होता है और उस पर श्रद्धान करते हुए गति हो पाती है। पुण्य के संचय से हमें न केवल मनुष्य जन्म मिला अपितु प्रभु महावीर की धर्म प्रक्षमि प्राप्त हुई। प्रभु महावीर के उपदेश प्राप्त हुए। प्रभु महावीर की वाणी सुनने-समझने को मिली। देव दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ। इसके लिए हम अपने सौभाग्य की जितनी भी प्रशंसा करें, वह कम ही होगी।

चातुर्मार्सिक प्रसंग प्रेरणादायी है। वैसे तो चातुर्मास आता है और चला जाता है, फिर भी चातुर्मास की अपनी एक महिमा है। जैसे बारिश का मौसम किसान के लिए हर्ष का मौसम है, वैसे ही चातुर्मास धर्म-ध्यान के लिए अवसर शुभ है। जैसे बरसात में धरती हरी-भरी हो जाती है, वैसे ही चातुर्मास में शुभ भावनाओं से हमारी मनोभूमि हरी-भरी हो जाए। पुण्य के प्रताप से हम धर्म की ओर अभिमुख बनें। हमारा मन धर्म के तत्व को समझने लगे तो हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी।

साधु के एक स्थान पर चार माह रुकने को हम चातुर्मास कहते हैं। चातुर्मास की व्यवस्था चार महीनों के लिए होती है। सामान्यतया साधु को एक जगह लम्बे समय तक रुके रहने के लिए मना है। साधु को विचरण करते रहना चाहिए। जैसा कि कहा गया है-

‘बहता पानी निर्मला, पड़ा गंधोला होय,
साधु तो रमता भला, दाग ना लागे कोय...’

साधु को विचरण करते रहना चाहिए।

‘चरैवेति, चरैवेति’

अर्थात् चलते रहो, चलते रहो। साधु आठ महीने विचरण करते हैं। फिर क्या कारण है कि चार महीने एक जगह रहना होता है?

अहिंसा भगवती की उपासना के लिए, अहिंसा की परिपालना के लिए मुख्य रूप से चातुर्मास का प्रसंग बनता है। इन महीनों में जीवोत्पत्ति बहुत ज्यादा हो जाती है। हरी, लीलन-फूलन बहुत ज्यादा होती हैं। इस समय छोटे-छोटे जीवों की उत्पत्ति भी बहुत ज्यादा हो जाती है। ऐसे में यदि विचरण होगा तो उन जीवों की रक्षा कर पाना बहुत कठिन होगा। अहिंसा की पालना दुष्कर होगी। इसलिए प्रभु महावीर ने जहाँ साधुओं को विचरण की बात कही, वहीं चार महीने एक जगह पर रहने की बात कही।

जैसे कछुआ अपने पैर संकुचित करके रखता है, वैसे ही मुनियों को भी आत्मनिष्ठ होकर चार महीने एक जगह व्यतीत करना चाहिए। चातुर्मास के चार महीनों में साधना में लीन रहकर, आत्म-चिंतन, योग निग्रह, इंद्रिय निग्रह की साधना करते हुए अर्हत बनने की आराधना करते रहना चाहिए। आप पूछ सकते हैं कि अर्हत बनने की आराधना क्यों, सिद्ध बनने की आराधना क्यों नहीं करनी चाहिए?

अर्हत बनने की आराधना सिद्ध बनने की ही आराधना है, क्योंकि यह निश्चित है कि अर्हत बनने वाला सिद्ध बनेगा ही। राग-द्वेष को जीतने की आराधना करते रहना चाहिए। राग-द्वेष ही संसार का मूल है। राग-द्वेष ही जन्म-मरण का मूल है। संसार को यदि मकान की उपमा दी जाए तो आराधना नींव है। राग-द्वेष को हटाना, राग-द्वेष को छिन्न-भिन्न करना हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिए।

जैसे पुराने झाड़-झाँखाड़ को दूर करके खेत में नयी फसल पैदा की जाती है, वैसे ही हमें वैर-विरोध की पुरानी शृंखलाओं को नष्ट कर देना चाहिए। राग-द्वेष की कँटीली झाड़ियों को छील-छाल करके नष्ट कर देना चाहिए। वे पनपेंगी तो हमारी मनोभूमि का, आध्यात्मिक भूमि का रस पी लेंगी। झाड़-झाँखाड़ पनपते रहेंगे तो हमारी आत्म शक्ति कमजोर होती रहेगी। इसलिए

ये जरूरी है कि वैर-विरोध की पुरानी शृंखलाओं को तोड़ें। उन्हें काट डालें। बताइए कि किसी से वैर करने से क्या फायदा होगा? किसी का विरोध करने से क्या फायदा होगा?

मनुष्य जीवन में कभी किसी से वैर हो जाता है। व्यक्ति किसी का विरोध कर देता है। कभी अज्ञान के कारण तो कभी अहंकार की वजह से विस्थितियां पैदा हो जाती हैं। इससे हमारा मन छिन्न-भिन्न हो जाता है। समाज और परिवार बिगड़ते हुए नजर आते हैं। वैर और विरोध से हानि बहुत है, जबकि लाभ कुछ नहीं। इससे केवल हमारा अहंकार तुष्ट हो सकता है। हमारे अज्ञान को मुस्कुराने का मौका मिल सकता है। इसके अलावा और कोई फायदा नहीं होगा। इसके अलावा और कुछ फायदा मुझे नजर नहीं आता।

क्या सचमुच में हम अपने अज्ञान को हँसने का मौका देंगे? क्या अज्ञान को पनपने का मौका देंगे?

अपने अहंकार को जोड़कर आत्मभावों को तिरोहित करेंगे तो आत्मा का ‘मैं’ तत्व गौण होता चला जाएगा। चारुर्मास आत्मा के उस अहम तत्व को जागृत करने के लिए है। हम उस अहम तत्व को जगाएं। उससे हमें सच्ची राह मिलेगी।

लोग कहते हैं कि जीवन जीने की कला आनी चाहिए, किंतु भगवान इससे अलग बात कहते हैं। भगवान कहते हैं कि जीवन जीने की कला सीखने जाएंगे तो जीवन व्यतीत हो जाएगा पर जीने की कला हस्तगत हो पाएगी या नहीं, कोई पता नहीं है। भगवान ने कहा कि मरने की कला सीख लो। भगवान ने जीवन पर जोर नहीं दिया। उन्होंने मृत्यु पर जोर दिया। यदि हमने मृत्यु की कला सीख ली तो जीवन जीने की कला स्वतः प्राप्त हो जाएगी। यदि मृत्यु को नहीं सीखा तो जीवन की कला अधूरी रहेगी। इसलिए भगवान कहते हैं कि हमें मृत्यु की कला आनी चाहिए।

कैसे आए मृत्यु की कला? मृत्यु भी कला है क्या? मरने की भी कोई विधि है क्या?

निश्चित रूप से मृत्यु भी एक कला है। मृत्यु की भी एक विधि है। विधि से मरने वालों के लिए विधि है। 12 वर्ष पहले उसकी साधना शुरू हो

जाती है। उसकी विधि चालू हो जाती है। जो मरने की कला सीख लेता है, उसके भीतर जीवन जीने की कला अपने आप प्रकट हो जाती है। फिर वह किसी से न वैर करेगा और न किसी का विरोध। न वह राग-द्वेष में उलझेगा, न अहंकार को पलने देगा और न अज्ञान को ही बढ़ने देगा।

भारत का एक पर्यटक विदेश गया। वहाँ उसने भारत के जैसा वट वृक्ष नहीं देखा। उसने वट वृक्ष तो अनेक देखे, किंतु भारत जैसे नहीं। वहाँ के वट वृक्ष यहाँ के अरंड के पौधे जैसे थे। छोटी-छोटी हाइट वाले। यह देखकर उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि वट वृक्ष तो ऊँचे फैले हुए होते हैं, किंतु क्या कारण है कि यहाँ पर छोटे-छोटे हैं।

उसने उन वृक्षों की देख-रेख करने वाले माली से सम्पर्क किया। उसने माली से पूछा कि सर ये वट वृक्ष इतने छोटे-छोटे क्यों हैं? इनकी ऊँचाई क्यों नहीं बढ़ पाती?

माली ने कहा कि आपकी जिज्ञासा सही है। आपका प्रश्न सही है। वट वृक्ष बड़ी ऊँचाई प्राप्त करते हैं, किंतु हम इसकी जड़ को बढ़ने नहीं देते। वह जैसे ही बढ़ती है उसे काट देते हैं। जड़ को काट देने से वट वृक्ष बढ़ नहीं पाते हैं, ज्यादा फैल नहीं पाते हैं।

उसकी समझ में बात आ गई कि जड़ काटने से वृक्ष की ऊपर बढ़ने की क्षमता विकसित नहीं हो पाती। उसी तरह हम अज्ञान की जड़, अहंकार की जड़ काटते रहेंगे तो अज्ञान कभी भी हम पर हावी नहीं होगा। कभी बढ़ेगा ही नहीं। अन्यथा हम सोए रह जाएंगे और अज्ञान हमारे ऊपर हावी हो जाएगा। अहंकार अपने भावों को मलीन बनाने वाला हो जाता है। फिर हम जैसा चाहते हैं वैसा अहंकार हमें होने नहीं देता, रोक देता है। यदि मैं किसी से क्षमा-याचना करना चाहूँ तो अहंकार आगे आ जाता है। मन में क्षमा माँगने की भावना हो जाती है किंतु हमारा अहंकार हमें रोक देता है। वह कहता है— नहीं-नहीं। वह हमारी ऊँचाई को बढ़ने नहीं देता।

क्या ऐसे अहंकार को हमें गले लगाकर रखना चाहिए? क्या इसकी शाखाएं हमें नहीं काट देनी चाहिए? क्या इनकी जड़ें खोखली नहीं करनी चाहिए? यह प्रश्न किसी से भी पूछने पर उत्तर यही मिलेगा कि काटनी चाहिए,

खोखली करनी चाहिए।

कोरोना काल सब ने देखा। हमारी आँखों के सामने क्या-क्या घटनाएं घटी। कितनी बड़ी त्रासदी थी। हमारा पुण्य रहा होगा कि हम बच गए। हमने कोरोना से बचने का क्या उपाय किया? लॉकडाउन हुआ। लॉकडाउन होने से पर्यावरण विशुद्ध हुआ लेकिन जैसे ही सब कुछ खुला, फिर पर्यावरण दूषित होता जा रहा है। हम हमारे कर्तव्य पर दृष्टि डालें। हमारा लक्ष्य केवल अर्थोपार्जन नहीं होना चाहिए। हमें अपने कर्तव्य पथ पर दृष्टि डालनी चाहिए। अपना कर्तव्य अपनी दृष्टि से कभी ओझल नहीं होना चाहिए।

‘किं मे कडं किं च मे किञ्चसेसं’

अर्थात् मैंने क्या किया और आगे क्या करना है। मैंने मनुष्य जन्म पाया है। सारी सुख-सुविधा प्राप्त हुई है। सारे अनुकूल वातावरण हैं। हमें भगवान की बात श्रवण करने का अवसर मिला है। धर्म जानने-समझने का सौभाग्य मिला है। ऐसे समय में क्या करना चाहिए? हमें यह सोचना चाहिए कि आत्मा का विकास किससे हो सकता है या यह सोचना चाहिए कि धन की बढ़ोतरी कैसे हो सकती है, परिवार का विकास कैसे हो सकता है?

यदि आत्मा का हास होता है तो बाकी सारे विकास शून्य हैं। एक, दो, तीन, चार या हजार शून्य हो, उसके पीछे एक अंक नहीं है तो सारे शून्यों की कोई कीमत नहीं होगी।

नीतिकारों ने कहा है कि कोई कितनी भी कलाएं सीख ले, किंतु उसके जीवन में धर्म कला नहीं आई तो उसका जीवन बेकार है। जीवन में धर्म कला आनी चाहिए। जीवन में एक धर्म कला आ गई और बाकी कोई कला नहीं आई तो भी कई कलाएं अपने आप हस्तगत हो जाएंगी। आप देखो कि सूर्योदय होते ही सारी सृष्टि अपने आप खिलती है।

कोई तैयार करता है क्या उसको? नहीं,

सृष्टि को खिलाने की कोई तैयारी नहीं करता। सृष्टि में अपने आप रौनक आती है। वैसे ही धर्म कला हमारे जीवन में आएगी तो हमारे भीतर एक नई रोशनी भरने वाली बनेगी। हमारे जीवन को शुभ बनाने वाली बनेगी। आत्मनिष्ठा को आगे बढ़ाने वाली होगी। उस धर्म कला को धारण करने के

लिए सुंदर अवसर है भगवान महावीर का जीवन। भगवान महावीर का जीवन हमारे सामने उपस्थित है। उनकी साधना हमारे सामने उपस्थित है। जानें, कैसे उन्होंने अपने मरण को सँवारा। जन्म हमारे हाथ में नहीं है, किंतु मृत्यु हमारे हाथ में है। मौत हमारे हाथ में है। यदि हम चाहें तो मौत को अपने हाथ में ले सकते हैं।

मैं ज्यादा इस विषय में नहीं कहूँगा, किंतु धन्ना अणगार की थोड़ी बात अवश्य कहूँगा। धन्ना अणगार ने बेले-बेले की तपस्या की। दीक्षा लेने के बाद जीवन-पर्यन्त बेले-बेले की तपस्या और पारणे में आयंबिल तप की आराधना की। एक रात्रि उनके मन में विचार आया कि मेरा शरीर शुष्कभूत हो गया। अब इसमें ताकत नहीं है। उठने-बैठने में भी परेशानी हो जाती है। उठने-बैठते समय ‘मुझे उठना है, मुझे बैठना है,’ ऐसे विचार मन में पैदा हो जाते हैं। इस शरीर को और कुछ खुराक देकर साधना करना चाहूँ तो संभव नहीं है। इसलिए मुझे अब मृत्यु का वरण कर लेना चाहिए। उन्होंने विचार किया कि शरीर का काम केवल मेरी साधना में सहयोग करना है, किंतु अब यह शरीर साधना में सहयोग करने जैसा नहीं रहा तो इसे आहार देने में क्या फायदा!

वे भगवान महावीर के पास पहुँचे। उन्हें वंदन-नमस्कार किया और कहा कि भगवान यदि आपकी अनुज्ञा हो, आपकी अनुमति हो तो मैं अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना स्वीकार करना चाहता हूँ। उन्होंने संलेखना स्वीकार कर ली। अपनी मृत्यु को सँवार लिया। मृत्यु को अपने कब्जे में कर लिया। उन्होंने बड़े प्रेम से मृत्यु को वरा। कोई हाहाकार नहीं, रोना-धोना नहीं। मृत्यु हमारे हाथ में है। मृत्यु की कला हमारे हाथ में है। मृत्यु की कला आ गई तो जीवन जीने की कला अपने आप आएगी। उसके लिए अलग से कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

हमने जीवन के लिए बहुत सारे मनसूबे बाँधे, बहुत अर्थोपार्जन किया, परिवार बढ़ाया, मकान बनाया पर मृत्यु बिगड़ गई तो ये सारी सुख-सुविधाएं किस काम की! ये सुख-सुविधाएं थोड़े समय की हैं। ये हमारे मृत्यु को किसी और रास्ते में ले जाकर कहीं का कहीं धकेल देंगी। हम यदि सुख में रह गए, सुख की आकांक्षा हमारे मन में बनी रह गई और हम नरक-निगोद में

चले गए तो फिर वहाँ से कितने समय बाद छुटकारा होगा, यह कहना बड़ा मुश्किल है। यह कहना बड़ा कठिन है। इसलिए हमें जो सुंदर अवसर प्राप्त हुआ है, उसको साधना चाहिए। उसकी आराधना करनी चाहिए।

इस चातुर्मास काल में एक सुखद संयोग बना है। इतने (16+66) ज्ञानी, ध्यानी, मौनी, तपस्वी साधु-साधिवियों का संयोग आपको प्राप्त हो रहा है। मैंने एक दिन कहा था किसी को ज्ञान-ध्यान सीखना हो तो वह अपना प्रयत्न करे और राजन मुनि जी म.सा. से ज्ञान-ध्यान सीखने के लिए आगे की बात करे। यह मौका मिला है। ज्ञान के अभाव में सारा शून्य है। आने-जाने वालों की व्यवस्था अच्छी की, आवास-निवास की व्यवस्था अच्छी की, किंतु यदि धर्म कार्य से रीते के रीते रह गए तो क्या लाभ मिलेगा ? खाली के खाली रह गए तो क्या लाभ मिलेगा ? कोरे के कोरे रह गए तो चातुर्मास का क्या लाभ उठाया ? प्रश्नवाचक चिह्न लग जाएगा।

प्रश्नवाचक चिह्न न लगने देने का यह सुंदर अवसर है। इसका अपने आपमें लाभ उठाना चाहिए। लाभ उठा सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि 24 घंटे धर्म-ध्यान में लगा दें। अन्य सारे कार्य गौण कर दें। अगर कोई 24 घंटे भी धर्म-ध्यान में लगाए तो अच्छी बात है, किंतु नहीं लगा सकते तो अपना समय नियोजित करें कि परिवार व व्यापार के लिए कितना समय लगाना और धर्म-ध्यान के लिए कितना समय लगाना। यह निर्धारण हमें ही करना होगा। अभी युवा संघ को आपने सुना। उन्होंने अपनी भावना व्यक्त की। युवा जहाँ जागृत होता है वहाँ फिर कहने की क्या बात है!

मैंने कल रात युवाओं से कहा था कि युवाओं की नींव मजबूत बन जाए तो आने वाले वर्षों तक संघ-समुदाय सुदृढ़ रहेगा। उसकी नींव हिलने वाली नहीं होगी। युवा कमजोर रह गया तो हमारी नींव कमजोर होगी। कमजोर नींव के ऊपर भव्य भवन कैसे खड़ा होगा! इसलिए युवाओं को, बच्चों को विशेषकर जागृत होना जरूरी है। धर्म-ध्यान के माध्यम से नींव मजबूत करनी चाहिए।

वृद्ध अनुभवी हैं। उन्होंने अपने जीवन में बहुत सारे अनुभव प्राप्त किए हैं। उनका अनुभव हमें लेना चाहिए और अपने अनुभव के आधार पर नए-नए

तरीके ढूँढ़ने चाहिए। जैसे व्यापार के तरीके ढूँढ़े जाते हैं, वैसे ही धर्मराधना के लिए तरीका ढूँढ़ना चाहिए। सोचना चाहिए कि क्या-क्या और कैसे-कैसे किया जा सकता है, जिससे हम धर्म का विकास कर सकते हैं। यह हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

हमारी शक्ति का उपयोग यदि हमने धर्म की महिमा बढ़ाने में लगाई तो उससे पुण्य होगा या पाप होगा?

कर्म की निर्जरा होने की बात है। उससे पुण्य का उर्पजन होने की बात है। शुभ कार्यों में हम अपनी शक्ति का प्रयोग करें। हम अपने शक्ति को ऐसे कार्यों में लगाने का प्रयत्न करें, जिससे हमारे भीतर शुभ भावना जगे। जिससे हमारे भीतर सौभाग्य प्रकट करने का प्रसंग बने। अपनी शक्ति का उपयोग यदि ऐसे कार्यों में नहीं करके फालतू बातों में किया तो क्या फायदा होगा।

महासतियों के विचारों को आपने सुना। मेरा उदयपुर में चातुर्मास का स्पष्ट मानस नहीं था। अजमेर तक दिमाग में उदयपुर नहीं था। किशनगढ़ तक उदयपुर दिमाग में नहीं था। ठीक है कि विनती है, सबकुछ है, किंतु झुकाव नहीं था। किशनगढ़ तक कोई झुकाव नहीं था। कहीं और ही झुकाव था। सरवाड़ से केकड़ी के लिए विहार किया तो विचार एकदम चेंज हो गए। मैंने सोचा उपाध्याय श्रीजी से विचार करना ठीक रहेगा। उस स्थिति में होली में लगभग सात-आठ दिन पहले उदयपुर की तरफ बढ़ने का विचार बना।

उदयपुर वालों ने कहा कि हमने नहीं सोचा कि हमें चातुर्मास मिल जाएगा। नहीं सोचा तो हम क्या कर पाते! आपने औपचारिक विनती की होगी तब भी हम तो आ ही गए।

‘बिना बुलाए जो घर आए, ऐसे मेहमानों से डरियो...’

हमें बुलाने की आवश्यकता कहाँ पड़ेगी? हमारा जब मन हो तब आएं।

एक ने कहा 2016 से विनती कर रहे हैं। विनती नहीं करते और हम आ जाते तो क्या होता? विनती हो या नहीं, संतों को कहीं न कहीं चौमासा करना ही है। लोग विनती नहीं करें तो भी संतों का चातुर्मास होगा या नहीं होगा?

(समवेत स्वर होता है- होगा)

स्थूलभद्र मुनिराज की बात करें तो किस संघ ने जाकर चातुर्मास की विनती की! कोशा गणिका ने कब विनती की कि मेरे रंगशाला में चातुर्मास कीजिए! कोशा गणिका ने स्थूलभद्र मुनिराज से विनती नहीं की। उनके गुरु से भी विनती नहीं की। उसने किसी भी साधु-साध्वी की विनती नहीं की। वहाँ चातुर्मास सम्पन्न हुआ या नहीं हुआ? बोलने की आवश्यकता नहीं है। हम जहाँ जाते हैं, वहाँ हमारा घर है। हमने एक घर छोड़ा तो बहुत सारे घर मिल गए। बिना किराए के हमें बड़े से बड़े स्थान मिलते हैं। आप देखो किसी को इतना बड़ा स्थान मिलेगा क्या? कहीं घरों में जाएंगे तो दो रूम और एक किचन मिलेगा। साधुओं ने एक मकान का त्याग किया तो उनको बड़े-बड़े मकान मिलते हैं।

एक जमाने में कठिनाई से स्थान प्राप्त होते थे। इसलिए एक साथ चातुर्मास की परंपरा नहीं थी। चातुर्मास के लिए ग्रन्थों में बताया गया कि पाँच-सात दिन रुककर यदि स्थान सही नहीं हो तो फिर बदला जा सकता है। ऐसे बदलते-बदलते एक महीना बीस रात तक बदला जा सकता है। इसके बाद 70 दिन एक जगह व्यतीत करना जरूरी होता है। फिर नहीं बदला जा सकता।

प्रश्न उठता है कि क्यों नहीं बदला जा सकता? क्योंकि वर्षा समाप्त हो जाती है। बहुत सारे जीवों की उत्पति कम हो जाती है। अतः बाद में बार-बार स्थान चेंज करने की आवश्यकता नहीं होती। एक महीना बीस रात तक परिवर्तन करने की भगवान ने अनुमति दी। इसके बाद पहले से अनुज्ञा ली हुई हो तो भले ही वहाँ चले जाएं, अन्यथा शेष 70 दिन का समय वहाँ व्यतीत करना होता है।

दो दिन पहले सुरुपरिया जी ने कहा कि संवत्सरी एक होनी चाहिए। आज सुबह मैं प्रार्थना के बाद आया मांगलिक के लिए। उस समय मेरे मन में विचार पैदा हुआ कि चातुर्मास का पर्व है और सामायिक ड्रेस में सिर्फ 40-50 लोग ही नजर आ रहे हैं। बाकी के लोग खुले नजर आ रहे हैं, क्या ऐसे में पर्व की आराधना होगी! सुरुपरिया जी ने एक संवत्सरी की तो बात कही पर आज भी वे सामायिक नहीं कर पाए! आज दरी का उपयोग नहीं लेते, आज कुछ नये परिवेश में आते तो कितना अच्छा होता!

मैं दरी पर बैठने वालों से प्रश्न करूँगा कि आप सामायिक करते तो कितना अच्छा होता ? कैसा लगता ? दरी पर बैठने वाले आज यदि सामायिक की आराधना किए होते तो मन में आनंद आता या नहीं आता ?

(लोगों ने कहा-आता)

आता तो फिर क्यों वंचित रह गए ?

‘पैसा लगे ना टका, ढुँढ़िया धर्म पक्का’

बाजार से खरीदने की बात नहीं है। सहज ही धर्म की आराधना होती। हम एक घंटे प्रवचन में आते हैं, उसमें सामायिक हो जाती है। धर्म-आराधना हो जाती है। ‘आम के आम गुठली के दाम’ फिर क्यों वंचित रहे गए ? आप सोचो, विचार करो। कोई बात नहीं, ‘बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेहु’

जो बीत गया वह हाथ में आने वाला नहीं है। अभी दोपहर का समय बाकी है। रात्रि प्रतिक्रमण का समय बाकी है। उस समय हमें क्या करना है ?

(लोग कहते हैं- सामायिक करनी है)

जोर से बोलो। दरी वाले बोल रहे हैं या सामायिक वाले बोल रहे हैं ? बोलना किसको है ?

(लोगों ने कहा- दरी वालों को बोलना है)

‘ना कोई कारण है, ना कोई बहाना है, प्रतिक्रमण में सबको... आना है’

कैसे करना है आप विचार करें। आज सहज ही चातुर्मासिक पर्व है। हमारी धर्म-आराधना, सामायिक में होती तो हमारे मन में अहोभाव होता कि आज चातुर्मास का पर्व है, आज मैं भी पारणा करूँगा।

आज हमारा पारणा हो जाना चाहिए या नहीं ?

(लोगों ने कहा- हो जाना चाहिए)

किस का पारणा होना चाहिए ?

आज चातुर्मास पर्व में हमारे अव्रत का पारणा हो जाना चाहिए। हम धर्म-स्थान में हैं, हमें कोई विचार नहीं करना है कि कैसे कपड़े बदलूँ, कैसे

करूँ। यदि यहाँ कपड़े बदलने में संकोच होता है तो घर से बदल कर भी आ सकते हैं। मैं कह रहा था कि एकदम से स्टेरिंग मुझी और चातुर्मास का विचार कहाँ बन गया?

(लोगों ने कहा- उदयपुर का बन गया)

यह मुझे समझ में आ रहा था कि संतों और सतियों की संख्या अधिक हो जाएगी। महासतियों की संख्या 55 की संभावना चल रही थी, संख्या 66 हो गई। किन्हीं साधियों को 18 साल हो गए तो किन्हीं को 19 साल। मेरा भी छत्तीसगढ़, पं. बंगाल, कर्नाटक, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र आदि विचरण होने में उधर समय लग गया। जो कुछ हो, समय जितना लगा सार्थक गया। हमने प्रभु महावीर के धर्म प्रज्ञसि की आराधना की। प्रभु महावीर के जिनशासन की सेवा की, प्रभावना की महिमा बढ़ाई। हमारा एक-एक क्षण सार्थक हुआ।

हमारे युवा भाइयों से मेरा कहना है कि हमें जो भी अवसर मिला है उसको सार्थक करें। हमें भगवान महावीर की महिमा बढ़ानी है। समय का, शक्ति का ध्यान रखना। संसार का कार्य करते-करते बहुत समय लगाया होगा। बहुत उपक्रम किए होंगे। अब अपना जीवन मोड़कर जिनशासन की आराधना में अपने आपको लगाना है। अपनी शक्ति को, अपने समय को जिनशासन की आराधना में लगाना है। जिनशासन की आराधना में लगा हुआ समय सार्थक होगा। उसमें लगी शक्ति सार्थक होगी। मृत्यु की कला सीखने का मौका मिलेगा। ऐसे रास्ते पर अपने जीवन को आगे बढ़ाएंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

2. सच्ची डगर एक ही

पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे, अजित अजित गुणधाम।

जे तें जीत्या रे, ते मुझ जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम॥

अजितनाथ भगवान की स्तुति करते हुए कहा गया है कि मैं अजितनाथ भगवान के पंथ को निहार लूँ। उसे देखूँ।

देखना किससे होता है? आँखों से।

हम जो कुछ भी देखते हैं आँखों से देखते हैं। किसी की आकृति, रंग-रूप, वर्ण आँखों से देखा जाता है। यह बात पुनः ध्यान में लें कि देखना आँखों से होता है। ज्ञानी पुरुषों ने चर्म चक्षुओं से उच्चा, ज्ञान की आँख को बताया है। उसे श्रेष्ठ बताया है। कहा गया है कि ‘आगमचक्षु साहू’ यानी जो केवल चमड़े के चक्षु से नहीं देखकर, ज्ञान की आँख से देखता है, उसका देखना सारथक होता है। किंतु अधिकांश व्यक्ति चमड़े की आँखों से देखने को ही देखना मान लेते हैं। वे उसी के आदी होते हैं।

चमड़े की आँखों से हम आकार-प्रकार जरूर देखते हैं, किंतु बारीकी से निरीक्षण ज्ञान चक्षु से ही होता है। बिना ज्ञान चक्षु के बारीकी से निरीक्षण होना मुश्किल है। कठिन है। दुर्घट है। आकार-प्रकार को हमारी आँखें ग्रहण करने में समर्थ होती हैं, वे बहुत स्थूल होते हैं, किंतु विचारों को इन आँखों से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि वे सूक्ष्म होते हैं। उनको अनुभव की आँखों से देखा जा सकता है।

पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे, अजित अजित गुणधाम...

तीर्थकर देवों का मार्ग भी इन आँखों से देखा जाना संभव नहीं है। तीर्थकर देवों के शासन को, तीर्थकर देवों के पथ को, तीर्थकर देवों के मार्ग को ज्ञान की आँख से जान सकते हैं।

प्रश्न होता है कि तीर्थकर देवों का मार्ग क्या है?

हम कह सकते हैं कि अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह तीर्थकर देवों का मार्ग है। अहिंसा का प्रकटीकरण कैसे होगा?

‘पद्मे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं। सव्वं भंते!

पाणाइवायं पच्चक्खामि। से सुहुमं वा बायरं वा तसं वा थावरं वा...

प्राणातिपात का पच्चक्खाण ग्रहण करते हुए कहते हैं कि किसी प्राणी का वध नहीं करना। किसी प्राणी के प्राणों का हरण नहीं करना। किसी प्राणी के प्राणों का वियोजन नहीं करना। इससे हमारे भीतर अहिंसा प्रकट होगी। किसी के प्राणों का हनन बिना कषायों के नहीं हो सकता। कहीं न कहीं हमारे भीतर क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष के तत्व होंगे तो ही हम किसी के प्राणों का वियोजन करने की तैयारी करेंगे। यदि हमारे भीतर क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं हैं तो हमारे द्वारा किसी भी प्राणी का हरण नहीं हो पाएगा। लोभ की परिभाषा करना थोड़ा कठिन है क्योंकि जल्दी से उसकी पहचान नहीं होती। क्रोध की पहचान अपेक्षाकृत जल्दी से हो जाती है। माया की अपेक्षा अहंकार की पहचान ज्यादा जल्दी हो जाती है। हम सामने वाले की आकृति से अनुभव कर सकते हैं कि वह व्यक्ति क्रोध में है या मान है। क्रोध जब आएगा उस समय आँखें थोड़ी टेढ़ी हो जाएंगी। आँखों में आक्रामकता आ जाएगी। आँखें सहज नहीं रहेंगी। चेहरे पर तनाव आ जाएगा। हाथों में कम्पन होने लगेगा। इन सबसे क्रोध की पहचान हो जाती है।

मान की पहचान भी हो जाती है। हालांकि उसकी पहचान थोड़ी कठिन है। क्रोध की पहचान जितनी आसान है, उतनी आसान मान की पहचान नहीं है। किसी की अकड़ से पता लग जाता है कि वह घमंडी है। वह मान में है। वह अहंकारी है। मान की पहचान से कठिन माया की पहचान है क्योंकि माया सदा भीतर होती है। माया का स्थान हृदय माना गया है। वहाँ दाँव-पेच चलता है। वहाँ छल-छद्म चलता है। उसकी पहचान बारीकी से जानने वाला ही कर सकता है। लोभ की पहचान और भी सूक्ष्म है। और भी बारीक है। लोभ की पहचान जल्दी से नहीं हो सकती। लोभ अनेक प्रकार का होता है। केवल धन

का ही लोभ नहीं होता। अस्तित्व का भी लोभ होता है। परिवार का भी लोभ होता है। पद-प्रतिष्ठा का भी लोभ होता है। कहीं न कहीं हमारे भीतर क्रोध-मान-माया-लोभ की भावना होती है तभी किसी न किसी रूप में जीवों के वध का काम हो पाता है। उसके पीछे कारण कुछ भी रहे होंगे, किंतु कहीं न कहीं हमारे कषाय का भाव उसमें रहा हुआ होता है। क्रोध, मान, माया, लोभ जितने प्रचुर होते जाएंगे, अहिंसा उतनी ही स्थूल होती चली जाएगी। अहिंसा प्रगाढ़ नहीं बन पाएगी। कषाय जितने अलग होते चले जाएंगे, अहिंसा उतनी ही सटीक बनेगी। सुदृढ़ बनेगी। सौष्ठव बनेगी। परिपूर्ण अहिंसा वीतरागता के समय में प्रकट हो पाती है। परिपूर्ण समता वीतराग के समय में प्रकट हो पाती है। उसके पहले हम अभ्यास कर सकते हैं, उस रास्ते पर चल सकते हैं किंतु परिपूर्ण अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती।

भगवान महावीर का इस धरा पर विचरण हो रहा था। उस विचरण से अनेक लोग लाभान्वित हो रहे थे। मेघ कुमार भी भगवान के दर्शन करने के लिए पहुँचा। उसने दर्शन किया। उनकी वाणी सुनी। उसके मन में विचार आया कि मुझे भगवान के पथ पर चलना है। जो रास्ता भगवान ने दिखाया है उसी मार्ग पर मुझे चलना है।

भगवान ने दो प्रकार से रास्ते बताए। पहला अगार धर्म और दूसरा अनगार धर्म। जिसका जैसा सामर्थ्य हो, वह उसके अनुसार गति कर सकता है। बच्चा दौड़कर जा सकता है, युवा तेज स्पीड में दौड़ सकता है और बुजुर्ग से उसी गति से चलना संभव नहीं होता। जैसे अलग-अलग व्यक्तियों की अलग-अलग गति होती है, वैसे ही धार्मिक आचरण करने में तीव्रता और मंदता होती है। सभी के लिए एक समान अवस्था नहीं हो सकती क्योंकि सबका क्षयोपशम एक समान नहीं होता। सबकी समझ एक समान नहीं होती।

भगवान महावीर के शासन में चौदह हजार संत और छत्तीस हजार महासतियां जी थीं। उनमें से सात सौ साधु और चौदह सौ साध्वियाँ ही मोक्ष में गईं।

सात सौ ही संत क्यों गए मोक्ष में? चौदह सौ ही सतियाँ जी क्यों गई मोक्ष में?

इसलिए क्योंकि सबकी समझ एक समान नहीं होती। समझ में भिन्नता होती है। समझ में अंतर होता है। भगवान के ग्यारह गणधर हुए। सबके मन में तत्त्व के प्रति संशय था, पर एक समान संशय नहीं था। किसी को आत्मा के विषय में डाउट था, किसी को पुण्य के विषय में तो किसी को पाप के विषय में डाउट था। किसी को बंध के विषय में डाउट था। अलग-अलग प्रकार से अनेक संशय थे। उनसे एक बात स्पष्ट होती है कि सबकी सोच एक समान नहीं होती। आज भी यदि अनुभव करते हैं तो सबकी सोच एक समान नहीं होती। कोई बच्चा तीव्र बुद्धि वाला होता है। छोटी उम्र में ही उसकी सोच बड़ी गहन होती है।

हम आचार्य पूज्य गुरुदेव श्री नानालाल जी म.सा. के जीवन का एक प्रसंग ध्यान में लें तो मालूम हो जाएगा कि छोटी उम्र में भी कैसे विचार थे उनके। प्रसंग उस समय का है, जब उन्होंने कन्हैयालाल जी के साथ एक दुकान डाली। दुकान डालने के बाद एक दिन नानालाल जी के मन में विचार पैदा हुआ कि साझेदारी का कार्य खतरनाक होता है। पारिवारिक सम्बन्धों में भी खटास पैदा होती है। ऐसी स्थिति में साझेदारी लम्बे समय तक नहीं टिक पाती। यह विचारकर उन्होंने अपने चचेरे भाई कन्हैयालाल से कहा कि भाई कन्हैयालाल, अपना व्यापार यदि लम्बे समय तक चलाना है तो एक बात ध्यान में लेनी चाहिए। जिस समय मुझे गुस्सा आ जाए, उस समय तुम चुप रह जाना और जिस समय तुम्हें गुस्सा आएगा, उस समय मैं चुप रहूँगा।

यह छोटी-सी बात है, किंतु कितनी महत्वपूर्ण है। यह जीवन निर्माण की बात है। केवल जीवन निर्माण की बात नहीं है, समुदाय के लिए भी महत्वपूर्ण है। एक 12-13 वर्ष के बालक ने इतनी गहरी बात कैसे सोच ली! हर किसी के सोच में यह बात नहीं आती। हमारी सोच में तो नहीं आई! उनके सोच में आ गई। उन्होंने भविष्य को भाँप लिया। इसे कह सकते हैं ज्ञान की आँख। इसे कह सकते हैं दिव्य विचार। चमड़ी की आँख महत्वपूर्ण नहीं होती। दिव्य विचार महत्वपूर्ण होते हैं। दिव्य विचारों से ही श्री नानालाल जी ऊँचाइयों पर पहुँचे। साधु बने, आचार्य बने और जगत को नई दिशा दी।

उनकी कही गयी एक छोटी-सी बात पर हम यदि अमल कर लें तो

परिवार में संघर्ष खत्म हो जाएगा। परिवार में आपसी तनाव दूर हो जाएंगे। परिवार में लड़ाई-झगड़े होने का मूल कारण है कि एक व्यक्ति कुछ बोलता है तो दूसरा चुप नहीं रह पाता है। दूसरा सोचता है कि वह बोल रहा है तो मैं क्यों चुप रहूँ। वह जवाब देता है। जवाब, आग में धी डालने का काम करता है। आग में धी का मतलब अग्नि को और प्रज्वलित कर देना। छोटी बात को बड़ी बात कर देना। बात इतनी बढ़ जाती है कि आदमी टूट जाता है। विवाद खड़ा हो जाता है। छोटी सी बात बड़ा संघर्ष पैदा करने वाली हो जाती है। किंतु एक व्यक्ति बोले और दूसरा व्यक्ति शांत रहे तो परिवार का कुछ बिगाड़ नहीं होगा।

बिगाड़ होगा क्या ?

(नहीं होगा)

कहने से कोई चोट लगती है क्या ?

(कोई चोट नहीं लगती)

उसको सुन लेने से, उसका जवाब नहीं देने से कुछ बिगाड़ नहीं होगा। कोई चोट नहीं लगेगी। कभी-कभी पत्थर की चोट से भी ज्यादा शब्दों की चोट लग जाती है, किंतु समझदार व्यक्ति शब्दों की चोट को सहन करने में समर्थ हो जाता है। वह सह लेता है। किसी ने बहुत कड़वी बात कह दी तो भी वह सोचता है कि कुनैन भी रोग निवारण के लिए हितकर होती है।

पुराने समय में किसी को मलेरिया होने पर कटु चिरायता देते थे। उससे मलेरिया ठीक हो जाता था। वर्तमान में तो कई दवाइयाँ चलती हैं। वैसे ही कोई कटु बात कह दे तो उस समय आप उस बात को झेल लो। उस समय जवाब नहीं दिया तो बात वहीं पर रुक जाएगी। यदि उसको हवा दी गई तो वह आग की तरह फैलती जाएगी और फिर परिवार के आपसी प्रेम-सम्बन्ध जलकर भस्म होने की स्थिति में आ जाएंगे। आग को बुझाने का बहुत बड़ा तरीका यह है कि जब मुझे गुस्सा आ जाए तो तुम शांत रहना और तुझे गुस्सा आएगा तो मैं शांत रहूँगा। यह कहना बहुत बड़ा इलाज है। बहुत बड़ा उपचार है।

एक तरीका होता है आग बढ़ाने का और दूसरा तरीका होता है आग बुझाने का। आग का शमन करने की सोच हर किसी में नहीं होती। हमने बहुत

सारी किताबें पढ़ी होंगी, बहुत सारे व्याख्यान सुने होंगे, किंतु हम संघर्ष बढ़ाने की बात करते हैं या संघर्ष घटाने की बात करते हैं? यह हमें सोचना है।

मैं बात बता रहा था मेघ कुमार की, जिसके मन में विचार पैदा हो गया कि मुझे भगवान के बताए हुए मार्ग पर चलना है। मुझे साधु जीवन स्वीकार करना है। अभी मैंने दो मार्ग बताए थे। एक अगार धर्म और दूसरा अनगार धर्म।

किसको कहते हैं अगार धर्म?

गृहस्थ में रहते हुए स्थूल रूप से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह का पालन करने को अगार धर्म कहते हैं। अभी वह परिपूर्ण अहिंसा का पालन करने में समर्थ नहीं है। अभी पूरे परिवार का त्याग करने में समर्थ नहीं है।

और साधु बनने का अर्थ क्या है?

साधु बनने का अर्थ है कि अब मेरा कोई पारिवारिक रिलेशन नहीं है। किसी समय मेरे माता-पिता, भाई-बहन रहे होंगे, परिवार रहा होगा, किंतु साधु बनने के बाद वे सारे सम्बन्ध छिन्न हो जाते हैं। कोई रिलेशन नहीं रह जाता। कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। जो साधु बनने के बाद भी उस रिलेशन को नहीं काट पाता, वह परेशान रहेगा। दुखी रहेगा।

भगवान कहते हैं कि स्नेह के बंधन बहुत भयंकर होते हैं। ‘नेह पासा भयंकरा’

रस्सी का बँधन ज्यादा भयंकर नहीं होता है, किंतु स्नेह का बँधन बहुत ज्यादा भयंकर होता है। स्नेह का धागा इतना सूक्ष्म होता है कि उसे हम आँख से नहीं देख पाते हैं।

उदयपुर की एक घटना बतायी जाती है। घटना महाराणाओं के समय की बतायी जाती है। बताया जाता है कि अनेक जगहों पर भ्रमण करते हुए एक पहलवान उदयपुर पहुँचा और महाराणा के समक्ष यह कहता है कि मैंने बहुत-सी जगहों पर अपनी पहलवानी का करिश्मा दिखाया और फतह प्राप्त की है। यदि किसी जगह कोई अखाड़े में आने के लिए तैयार नहीं हुआ तो वहाँ के राजा मुझे सर्टिफिकेट दे दिए हैं। मैं आपके राज्य में आया हूँ। आपके यहाँ कोई

पहलवान है तो मेरे से दंगल कराया जाए। यदि ऐसा कोई पहलवान नहीं हो जो मेरे से दंगल कर सके तो आपकी तरफ से भी एक सर्टिफिकेट मुझे मिल जाना चाहिए।

महाराणा ने उसे अतिथिशाला में ठहराया और एक अर्जेंट मीटिंग बुलाई कि ऐसा आदमी आया है क्या किया जाना चाहिए। मीटिंग में विचार हुआ कि यदि सर्टिफिकेट दे देते हैं तो मेवाड़ की नाक कटती है और सर्टिफिकेट नहीं देते हैं तो दंगल के लिए किसको लाकर खड़ा करें! सबकी बुद्धि चकरा गई कि क्या किया जाए!

उस मीटिंग में वहाँ का जेल अधीक्षक भी था किंतु वह विशेष काम के लिए मीटिंग से निकलकर वापस जेल में आ गया। उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह चिंता में डूबा हुआ था। उस जेल में एक अपराधी बड़े अपराध के आरोप में बंद था। उस अपराधी ने जेलर से कहा कि सर आज आप तनाव में लग रहे हो, किसी चिंता में लग रहे हो। आपके चेहरे पर चिंता है। ऐसा क्या प्रसंग आया जिससे आपको चिंता हो गयी है?

जेलर ने कहा, तुमको क्या मतलब ?

अपराधी ने कहा कि मुझे कुछ भी मतलब नहीं किन्तु इनसान हूँ तो इनसान का दर्द मन को दर्दी बना देता है। आप भले ही न कहें किंतु बिना कहे किसी बीमारी का इलाज भी नहीं है। बीमारी ज्ञात होने पर कोई न कोई इलाज निकलता है।

जेलर के मुँह से निकल गया कि एक ऐसा पहलवान आया है जो कह रहा है कि मुझसे दंगल किया जाए। हमें ऐसा कोई नजर नहीं आता जो उसका मुकाबला कर सके।

अपराधी ने कहा कि जिनको आदमियों की पहचान नहीं होती उनके लिए समस्याएं खड़ी रहती हैं।

जेलर ने कहा, क्या मतलब ?

अपराधी ने कहा, आप यदि मुझे उसके सामने दंगल में उतारें तो मैं उसको हराने में समर्थ हूँ।

जेलर ने कहा, देख लो बड़ी-बड़ी बात मत करना। पक्की बात है कि

तुम दंगल करोगे ?

अपराधी ने कहा, एक दम पक्की बात है।

जेल अधीक्षक दौड़ा-दौड़ा गया महाराणा के पास और बताया कि एक अपराधी यह बात बोल रहा है।

महाराणा ने कहा, कहीं वह भागने की फिराक में तो नहीं है! उसे बता दिया जाए कि मैदान में आने के बाद उसके हाथ की हथकड़ी और पैर की बेड़ी खोली जाएगी। दंगल के समय भी सेना का पहरा लगा रहेगा। तुम बीच में से भागना चाहो तो भी वैसी स्थिति नहीं रहेगी। उसको अवगत कराया गया। उसने कहा मैं तैयार हूँ।

अपराधी को मैदान में लाया गया। बहुत सारे लोग खड़े थे। दर्शकों की अपार भीड़ थी। महाराणा के साथ अन्य पदाधिकारी भी मौजूद थे।

महाराणा ने कहा कि कारीगर को बुलाओ और उसकी हथकड़ी-बेड़ी कटवाओ ताकि कुश्ती हो सके।

अपराधी ने कहा कि हुजूर, कारीगर की आवश्यकता नहीं है। आपकी आज्ञा हो तो ये बेड़ी नहीं रहेगी, हथकड़ी नहीं रहेगी। ये टूट जाएंगी।

महाराणा ने कहा, हाँ मेरी आज्ञा है।

अपराधी ने हाथ हिलाकर जोर से झटका दिया और लोहे की हथकड़ियाँ टूट गईं। पैरों को भी जोर से हिलाया और एक झटका दिया कि बेड़ियाँ भी टूट गईं।

महाराणा विचार करने लगे कि आदमी है कि कुछ और!

अपराधी के इस करिश्मे को देखकर दंगल करने के लिए आये पहलवान का मनोबल भी डाउन हो गया।

‘मन के जीते जीत है और मन के हारे हार।’

पहलवान ने सोचा कि यह कोई मानव है या राक्षस, पता नहीं क्या करेगा। वह पहले ही हार गया। उसने सोच लिया कि इससे जीत नहीं पाऊंगा। हम ऐसी बात दिमाग में डाल लेते हैं कि मेरे से ऐसा नहीं होगा। तेले के प्रसंग पर बहुतों ने तेला किया, किंतु बहुतों ने यह सोच लिया कि अपने से बेला, तेला

नहीं हो सकता। मेरे शुगर है, बी.पी. की बीमारी है, मेरे से नहीं हो सकता।

मुंबई में एक चाँदी वाले श्रावक थे। उनका चाँदी का व्यापार था इसलिए उन्हें चाँदी वाला बोलते थे। उनको शुगर की बीमारी थी, किंतु हर वर्ष मासखमण की तपस्या करते थे। शुगर का पेसेंट भी तपस्या कर सकता है या नहीं?

कितने लोगों के मन में भय रहता है कि शुगर बढ़ गया तो क्या होगा, शुगर डाउन हो गया तो क्या होगा। शुगर बढ़ता-घटता रहता है। केवल खाने से ही नहीं घटता-बढ़ता। उसके घटने-बढ़ने का सम्बन्ध हमारे विचारों से भी है। आदमी जितना नेगेटिव सोचता है उतना ही शुगर डाउन होने की स्थिति रहती है, बढ़ने की स्थिति का कारण भी व्यक्ति का विचार है। मेरा यह कहना है कि हम मन से हार जाते हैं। कई लोग तीन से आगे बढ़ गए, तो कड़ियों ने पारणा करने का सोच लिया। हर व्यक्ति की सोच अलग-अलग होती है। कई बार लोग मन से बहुत जल्दी हार जाते हैं। मन को कमजोर कर लेते हैं। मन की कमजोरी आदमी के शरीर को कमजोर करने वाली होती है।

बात पहलवान की हो रही थी। दंगल शुरू हुआ। पहला मौका अपराधी ने पहलवान को दिया। पहलवान ने दाँव चलाया और अपराधी ने पछाड़ दिया। जैसे ही अपराधी का दाँव चला, उसने पहलवान को गिराकर उसके सीने पर पैर रख दिया। वह एक बाजी में ही चित हो गया। पहलवान सोचने लगा कि अब क्या करूँ, जिससे मेरा जीवन तो बच सके। अपराधी ने कहा कि एक बार और खेल लो। फिर वही हालत हुई। अपराधी ने पहलवान को नीचे गिरा दिया। तीसरी बार भी गिरा दिया।

आखिर में कौन जीता?

(लोग कहते हैं- अपराधी जीत जाता है)

दंगल खत्म होने पर महाराणा ने उस अपराधी को अपने पास बुलाया और कहा भाई, तुम्हारी ताकत हमने देख ली। ताकत देखकर हमारे मन में एक प्रश्न खड़ा हो गया कि जब तुम्हारे भीतर इतनी ताकत थी तो फिर हमारी जेल में कैसे रह गये!

अपराधी ने कहा, हुजूर! सच्ची बात यह है कि मैं आपके शिकंजे में

नहीं था। उसे तोड़ना तो मेरे दाएं हाथ का खेल था। मैं कभी भी बाहर निकल सकता था, किंतु मैं जान रहा था कि मैं यदि बाहर भाग गया तो मेरे घरवालों को परेशान किया जाएगा। मेरे बच्चों को सताया जाएगा। बार-बार उन पर आरोप लगाए जाएंगे। मेरे परिवार वालों को कठिनाइयां नहीं हों, इस कारण से मैं जेल में था।

वह किससे बँधा हुआ था ?

वह मोह के धागे से बँधा हुआ था। वह स्नेह के धागे से बँधा हुआ था। मोह के धागे से बँधा होने से वह जेल में था। यदि वह स्नेह के धागे में नहीं बँधा होता तो क्या वह महाराणा की जेल में बंद रहता ? नहीं रहता।

जैसे उसे मोह के धागे ने रोक रखा था, वैसे ही मोह के धागे से बँधे होने के कारण आप साधु नहीं बन पा रहे हैं।

किस कारण से नहीं बन पा रहे हैं ?

(लोगों ने कहा- मोह के कारण से नहीं बन पा रहे हैं)

मोह के धागे से नहीं बन पा रहे हैं। हम मोह के धागे से बँधे हुए हैं। उस धागे को तोड़ना बहुत कठिन है। वह धागा आँख से नहीं दिखता। आँख से दिखने वाले धागे को तोड़ना आसान है, किंतु यह भीतर का धागा है। इसको ज्ञान की आँखें जान सकती हैं। बहुत-से लोग कहते हैं कि म.सा. मैं तो निवृत्त हो गया संसार के कार्यों से। क्या उसका संसार छूट गया ? कहते हैं कि अब मैं कोई भी व्यापार नहीं करता हूँ, कोई व्यापार नहीं देखता हूँ। व्यापार नहीं करने से संसार नहीं छूट गया। व्यापार नहीं देखने से संसार का त्याग नहीं हो गया। भले ही वह घर में रहते हुए कोई भी कार्य नहीं करता होगा, फिर भी मोह का तांता है या नहीं है ?

(लोगों ने कहा- मोह का तांता है)

एक संत हुए थे हुलासमल जी। बहुत समय हो गया, उनका स्वर्गवास हुए। 65 साल की उम्र में दीक्षित हुए। बीस साल तक स्थानक में रहे थे। वे घर नहीं जाते थे। घर से भोजन आता था। स्थानक में ही भोजन करते थे और घर वाले थाली वापस ले जाते थे। कभी उनके मन में दीक्षा की भावना नहीं जगी, कभी हिम्मत नहीं हुई। किसी ने दीक्षा की प्रेरणा नहीं दी, धक्का नहीं दिया।

आज तो धक्का लगाने वाले हैं, किंतु उस समय कोई धक्का लगाने वाला नहीं मिला। उनकी भावना को प्रज्ञवलित करने वाला कोई नहीं बना।

उनके लड़के राजू की भावना हुई दीक्षा लेने की तो उन्होंने विचार किया कि राजू दीक्षा ले रहा है और मैं बैठा हूँ! मैं इतने सालों से स्थानक में बैठा रहा, कभी विचार नहीं किया। उन्होंने कहा कि मैं भी दीक्षा लूंगा और नाना गुरु ने दीक्षा दे दी।

दीक्षा के बाद उनका कहना था कि बीस सालों तक मैं घर नहीं गया, किंतु जो शांति दीक्षा लेने के बाद आई, वह शांति पहले नहीं थी। घर से कोई आता भोजन लेकर के तो सुनाता कि आज वह बीमार है, व्यापार में घाटा हो गया। आज यह हो गया, वह हो गया। ये बातें कानों में पड़ती और भीतर जाकर वैसे ही खटकती थी जैसे आँखों में रेत कण या कचरा चला जाने पर आँख खटकती है। तब सम्बन्ध टूटा हुआ नहीं था। साधु बनने के बाद यह हो गया कि अब मेरा कुछ भी नहीं है। न मेरा परिवार है, न मेरा घर है, न मेरी सम्पत्ति है, न मेरी जायदाद है, न मेरी जमीन है, न मेरी प्रोपर्टी है। किसी से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध टूटता है तो भीतर सुख की धारा प्रवाहित होती है। नहीं टूटता है तो वह धारा प्रवाहित नहीं हो पाती। अवरुद्ध रहती है।

संसार में रहकर भी कोई व्यक्ति श्रावक ब्रत लेकर यदि निरंतर मोह के सम्बन्ध को धीरे-धीरे कम करने की दिशा में रहता है तो वह भी सुख को प्राप्त कर सकता है, किंतु ब्रत-नियम लेने के बाद आए दिन मोह बढ़ता जाए, आरंभ-परिग्रह बढ़ता जाए तो उसको सुख की धारा नहीं मिलेगी। खाली पच्चक्खाण लेने से नहीं होगा। आजकल बहुत-सी जगह ऐसा होता है। भीतर माल कुछ और है जबकि छाप कुछ और लगी रहती है। ऊपर छाप लगने से उस माल के भीतर क्लालिटी आ जाएगी क्या?

(लोगों ने कहा - नहीं आएगी)

जब तक हमारे भीतर की क्लालिटी नहीं सुधरेगी, तब तक हम में क्लालिटी नहीं आ पाएगी। जिस दिन यह भावना प्रकट हो जाएगी कि मैं भगवान महावीर का श्रावक हूँ, उस दिन से हमारा स्तर सुधरने लगेगा।

श्रावक की क्या पहचान है, श्रमणोपासक की पहचान क्या है?

श्रावक की पहली शर्त होती है ‘अभिगय-जीवाजीव।’ इसका अर्थ होता है जिसे जीव और अजीव का ज्ञान हो गया। किस-किसको जीव और अजीव का ज्ञान है? जो जीव और अजीव को नहीं जानता है वह ब्रत-नियमों का सम्यक् प्रकार से पालन नहीं कर सकता। वह नियमों की सम्यक् आराधना नहीं कर सकता। इसलिए श्रावक की पहली पहचान नौ तत्व की जानकारी से होती है। किंतु नौ तत्वों के नाम गिना देने से उसके ज्ञाता नहीं बन जाते।

खाली नौ तत्वों के नाम जानने से कुछ नहीं होगा। जीव क्या है, जीव की पर्याय क्या होती है, जीव की अवस्था कौन-कौन सी होती है, अजीव की अवस्था कौन-कौन सी होती है इनको जानकर ही श्रमणोपासक की दिशा में आगे बढ़ पाएंगे। अन्यथा

‘नौ चुकिया छह भूलिया, बारह को जाने नहीं नाम
गांव ढिंढोरे पीटियो, श्रावक म्हारे नाम’

ऐसे में सुख की धारा प्राप्त नहीं होगी। नौ तत्वों का ज्ञान होगा, उन पर हमारा चिंतन-मनन चलता रहेगा तो धीरे-धीरे हमारे भीतर से मोह का धागा, मोह का रस कम होता हुआ चला जाएगा।

2003 की बात है। बड़ी सादड़ी मेरा चातुर्मास था। उस समय व्याख्यान में ऐसा ही प्रसंग आया। मैंने कहा अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पदाधिकारियों को नौ तत्वों का ज्ञान होना चाहिए।

व्याख्यान के बाद, चरण स्पर्श करते हुए श्री सायरचन्द्रजी छल्लाणी निकले और कहा कि “थोकड़ा क्या होता है?” हम तो एक 25 बोल का थोकड़ा जानते हैं।

कितने होते हैं थोकड़े, बताओ?

यह नहीं मालूम! दुनिया में क्या हो रहा है वह सारी बातें मालूम हैं, किंतु घर में क्या-क्या माल भरा हुआ है वह हमने नहीं जाना। वह हमने पढ़ा नहीं। जैसी ललक होनी चाहिए, जैसी जिज्ञासा होनी चाहिए वह नजर नहीं आ रही। सायरचन्द्रजी को थोकड़ा जानने की इतनी रुचि जगी कि वे दिल्ली से जयपुर (मोहनलाल जी मुथा के पास) थोकड़े सीखने के लिए आते थे। जब वैसी ललक जगती है तो मोह के बादल अपने आप कम पड़ते हुए चले जाते हैं।

थोकड़ों के ज्ञान से, नौ तत्वों के ज्ञान से उनके भीतर पारिवारिक मोह धीमा पड़ गया। संवेग जगा। वे साधु बन गए।

हम भी बन सकते हैं या नहीं बन सकते ?

(लोगों ने कहा- हम भी बन सकते हैं)

कब करना थोकड़ों का ज्ञान ? कब करना नौ तत्वों का ज्ञान ?

(लोगों की तरफ से आवाज आती है- आज से)

आज कहने से नहीं होगा। उसके लिए खपना पड़ेगा। समय लगाना पड़ेगा। बुद्धि का उपयोग करना पड़ेगा। तब उस ज्ञान को हस्तगत करने में समर्थ होंगे। हमारे पास अभी अवसर है। हमें अवसर मिला है। ऐसे अवसर को खो दिया, लाभ नहीं ले पाए तो फिर हम समर्थ नहीं होंगे। इसलिए विचार करें, चिंतन करें, मनन करें और ऐसे अवसर का लाभ लें। लाभ लेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ। आज का इतना ही।

14 जुलाई, 22

3. मोक्ष का प्रवेश द्वार

पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे, अजित अजित गुणधाम।
जे तें जीत्या रे, ते मुझ जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम॥

जिस पर कोई विजय प्राप्त नहीं कर सकता, वह अजेय धाम है। जिस किले के, जिस परकोटे को कोई जीत नहीं सके, वह अजेय स्थान हो जाता है। अजेय यानी कोई जीतने वाला नहीं। मोक्ष अजेय स्थान है। वहाँ पर काम, क्रोध, मद, मत्सर जीव पर हावी नहीं हो सकते।

संसार विषय-वासनाओं का स्थान है। संसार में रहने वाले जीवों को कहीं न कहीं विषय-वासना घेर लेती है। वह अपने से प्रभावित कर लेती है। अजित गुण धाम वह स्थान है जहाँ पर विषय-वासनाओं का जोर नहीं चलता। ‘पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे अजित अजित गुणधाम’ के माध्यम से कवि उस अजेय स्थान को प्राप्त करना चाहता है।

एक सद्गुण आदमी को ऊँचा उठा देता है और एक दुर्गुण आदमी को नीचे गिरा देता है। जैसे थोड़ा-सा दही बहुत सारे दूध को दही के रूप में परिणित कर देता है, वैसे ही एक सद्गुण या एक दुर्गुण व्यक्ति को अपनी तरफ मोड़ लेता है। गुण का एक अर्थ होता है रस्सी। आचार्य पूज्य नानालाल जी म.सा. ने यह बात संवत् 2026 के मंदसौर चातुर्मास में बताई थी।

गुण के दो अर्थ होते हैं। एक गुणात्मक रूप और दूसरा गुण यानी रस्सी। श्रीमद् आचारांग सूत्र में बताया गया है कि ‘जे गुणे से मूलठाणे’ अर्थात् गुण ही मूल स्थान है। यहाँ पर भी गुण शब्द आया है। यहाँ गुण शब्द पाँच इंद्रियों के विषयों के सम्बन्ध में आया है। इस प्रकार गुण के विभिन्न अर्थ होते हैं, किंतु इसका निष्कर्ष निकलता है- नियंत्रण करना। यदि पाँच इंद्रियों का विषय सबल है तो वे हमारे मन को, हमारी आत्मा को नियंत्रित कर लेते हैं।

एक सबल रस्सी किसी आदमी को बाँधकर नियंत्रित कर लेती है। वैसे ही एक सदुण हमारे दुर्गुणों को, हमारे विषय-वासनाओं को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। इसलिए अपने भीतर गुण विकसित करना चाहिए। अनेक गुणों में एक गुण होता है श्रद्धा का गुण। यदि एक श्रद्धा का गुण हमारे भीतर विकसित हो गया तो वह बहुत सारे दुर्गुणों को दूर करने वाला बनेगा। यदि हमने श्रद्धा को विकसित किया तो बहुत सारे दुर्गुण अपने आप दूर हो जाएँगे। इससे सबसे पहले मोह-मिथ्यात्व दूर होगा। अज्ञान दूर होगा। हम सम्यक् प्रकार से देखने में समर्थ बनेंगे। जो पदार्थ जैसा है, जो तत्त्व जैसा है, हम उसको उसी प्रकार से देखने में समर्थ हो पाएँगे। यह बहुत बड़ी शक्ति हमारे भीतर जागृत होगी। विषय-वासनाओं से भी हमारा मन उपरत रहेगा। हम उससे बचने की कोशिश करेंगे।

भगवान महावीर से एक बार पूछा गया ‘धार्मसद्वाए णं भंते! जीवे किं जणयइ? अर्थात् धर्म के प्रति श्रद्धा से जीव को क्या लाभ होता है, उसे क्या प्राप्त होता है, कौन सी विशेषता उसके भीतर प्रकट होती है? तो भगवान ने कहा कि ‘साया-सोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ’ अर्थात् धर्म के प्रति श्रद्धा से पाँच इंद्रियों के विषय में रमण करने वाले की दृष्टि बदल जाती है। उन्हें महत्व देने वाले की दृष्टि बदल जाती है। वह सोचने लगता है कि पाँच इंद्रियों के विषयों को प्राप्त करना मेरा लक्ष्य नहीं है। दृष्टि बदलती है तो वह सोचने लगता है कि मेरा लक्ष्य मोक्ष है। मेरा लक्ष्य आत्मकल्याण है। मेरा लक्ष्य आत्म समाधि है। वह सोचने लगता है कि पाँच इंद्रियों के विषय मेरी समाधि को भंग करने वाले हैं। मेरी समाधि को छिन्न-भिन्न करने वाले हैं।

श्रद्धावान पुरुष यदि परिपूर्ण रूप से पाँच इंद्रियों के विषयों को छोड़ने में समर्थ नहीं होता है तो भी उनसे सावधान अवश्य रहता है। उनसे सजग अवश्य रहता है। उनको अपने पर हावी नहीं होने देता। अपने आपको उनके चंगुल में फँसने नहीं देता। वह सजग हो जाता है कि पाँच इंद्रियों के विषय उसे अपने चंगुल में फँसा नहीं ले।

नवदीक्षिता महासती श्री अनमोल श्रीजी म.सा. की दीक्षा 6 जुलाई को यहीं पर सम्पन्न हुई थी और आज उन्हें छेदोपस्थापनीय चारित्र में आरूढ़

किया गया। साधु जीवन स्वीकार करना और उसकी परिपालना करना कोई कठिन कार्य नहीं है। बहुत आसान है, बशर्ते कि हम उसमें रम जाएँ अन्यथा साधु जीवन हमें जंजाल भी लग सकता है। लगेगा कि मैं बंधन में आ गया। मेरी स्वतंत्रता छूट गई। लगेगा कि पहले मैं बहुत स्वतंत्र था, जो मन चाहे कर सकता था, किंतु यहाँ आने के बाद बंधन है कि यह करना, यह नहीं करना। यह सोच साधक को उलझा देती है। इसके विपरीत अनुशासित साधक सोचता है कि इससे हमारे भीतर जागृति आती है। हम अकृत्य से बचते हैं और करणीय के प्रति सजग होते हैं। साधु जीवन हमें सिद्धि तक पहुँचाने वाला होता है। सिद्धि का द्वार है साधुत्व। जिसने साधुत्व को प्राप्त कर लिया उसको मोक्ष प्राप्त होगा ही होगा। फिर वह बचना भी चाहे तो बच नहीं पाएगा। जो एक बार उस द्वार में घुस गया उसको आगे बढ़ना ही पड़ेगा। भले ही देर लगे, किंतु मुक्ति उसका वरण किए बिना रह नहीं सकती।

भगवान महावीर की आत्मा साधुत्व के मार्ग से सिद्धत्व को प्रकट करने में समर्थ हो पाई। एक भगवान महावीर की आत्मा ही नहीं, जितने भी सिद्ध बने हैं, उन सबने पहले साधुत्व का स्पर्श किया है। बिना साधुत्व का स्पर्श किए कोई भी सिद्ध नहीं बन सकता।

बात समझ में आ रही है ना!

(लोग कहते हैं- आ रही है)

साधुत्व का स्पर्श किए बिना कोई भी सिद्ध नहीं बन सकता। साधुत्व उसी का सार्थक होता है जिसके भीतर श्रद्धा का भाव जागृत हो। बिना श्रद्धा के ज्ञान, ज्ञान नहीं होता। और सम्यक् ज्ञान के अभाव में चारित्र सम्यक् नहीं होता। इसलिए आचार्य उमास्वाति तत्वार्थ सूत्र में कहते हैं ‘सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः’ अर्थात् सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है। मात्र श्रद्धा हमें मंजिल तक नहीं ले जा सकती। मात्र ज्ञान भी हमें मंजिल दिलाने वाला नहीं हो सकता। ज्ञान और क्रिया दोनों संयुक्त होंगे तो ही मोक्ष की प्राप्ति होगी।

श्रीमद् भगवती सूत्र में एक बड़ी अच्छी चर्चा है। मनोरम चर्चा है, मनोवैज्ञानिक चर्चा है। चर्चा में भगवान से पूछा गया कि भगवान, मात्र ज्ञान से

क्या कोई सिद्धि प्राप्त कर सकता है?

भगवान ने कहा, यह अर्थ समर्थ नहीं है कि कोई मात्र ज्ञान करे, बस ज्ञान करता जाए तो उसे सिद्धि प्राप्त हो जाए।

भगवान महावीर के युग में ऐसी मान्यता वाले, ऐसी परम्परा वाले लोग भी थे जिनकी मान्यता थी कि केवल ज्ञान करो और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि एक पक्ष ऐसा भी था जो यह मानता था कि ज्ञान करने की आवश्यकता नहीं है। वह पक्ष मानता था कि केवल क्रिया करो।

भगवान से पूछने पर उन्होंने कहा कि न तो मात्र ज्ञान आपको मोक्ष दिलाने वाला है और न केवल क्रिया ही आपको मोक्ष तक पहुँचाने वाली है। ज्ञान और क्रिया दोनों रथ के पहिये बनेंगे तो रथ दौड़ेगा। दोनों पहिये नहीं होंगे तो रथ नहीं दौड़ पाएगा, फिर हम मंजिल तक नहीं पहुँच पाएंगे। मंजिल को पाने के लिए हमें हमारा पुरुषार्थ जगाना होगा। अपने भीतर सदुण्ठों का विकास करना होगा।

सच्चाई नाम का एक सदुण्ठ हमारे भीतर आ जाए, तो सारे दुर्गुण उसमें दब जाएंगे। दब जाने का मतलब है कि उसके कंट्रोल में आ जाएंगे। वे उसके जीवन में प्रभाव नहीं डाल पाएंगे। उसके जीवन पर आक्रामक नहीं बन पाएंगे। उसे अपने अधीन नहीं कर पाएंगे। सच्चाई के एक गुण से आप में हजारों सदुण्ठ आ सकते हैं। एक सच्चाई का गुण व्यक्ति को सुधारेगा और एक झूठ का दुर्गुण आदमी के बहुत सारे सदुण्ठों की शृंखला को नष्ट करने वाला बन जाता है। केवल एक असत्य, एक झूठ आदमी को डुबाने वाला होता है और एक सत्य उसको उबारने वाला बन जाता है।

‘सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार...’

बोलचाल की भाषा में हम कहते हैं कि सौँच को कभी आँच नहीं आती। हमारी भारतीय संस्कृति की मूल अवधारणा है ‘सत्यमेव जयते।’

सत्यमेव जयते का अर्थ क्या है? सत्य की जीत होती है।

यहाँ बैठने वालों से एक प्रश्न करना चाहूँगा। ऐसा कौन व्यक्ति है जिसने आज तक कोई पिक्चर नहीं देखी? चाहे टी.वी. पर या सिनेमा हॉल में।

(कोई हाथ खड़ा नहीं करता है)

एक तो हाथ खड़ा करो।

(अब एक व्यक्ति ने हाथ खड़ा किया)

क्या बात है, कभी भी पिक्चर नहीं देखी आपने ?

(व्यक्ति ने कहा- 20-25 साल पहले देखी भगवन्)

कभी भी देखी, देखी तो है।

अच्छा, एक बार से ज्यादा किस-किसने नहीं देखी ? सौ बार से ज्यादा किसने नहीं देखी ? अब सौ बार की गिनती किसने लगाइ। गिनकर कौन देखता है पिक्चर।

कई लोग ऐसे भी हैं जो एक ही दिन में तीन बार पिक्चर देख लेते हैं। प्रथम, द्वितीय व तृतीय तीन शो देखते हैं। सोचते हैं कि क्यों छोड़ूँ। आपने पिक्चर में देखा होगा कि अन्याय की जीत हो रही है, असत्य की जीत हो रही है फिर एकदम से पासा पलटता है और सत्य की विजय होती है। सत्य की जीत होती है। पिक्चरों को देखकर हमने एक भी गुण अपने भीतर नहीं लिया ? एक भी गुण नहीं लिया कि सत्य की विजय होती है। ज्ञान की विजय होती है।

क्या हमने इतना विश्वास भी किया सत्य पर ? यदि सत्य पर इतना विश्वास होता तो हम कभी भी असत्य का सहारा नहीं लेते, किंतु आज हमारी दशा क्या है ?

आज बहुत-से लोगों ने यह धारणा बना ली है कि बिना झूठ के जीवन चलने वाला नहीं है। कई लोगों की धारणा है कि बिना झूठ के व्यापार नहीं चल सकता। जीवन नहीं चल सकता। जिसने धारणा ही ऐसी बना ली कि बिना झूठ के हमारा जीवन नहीं चल सकता तो वह सच्चाई की तरफ बढ़ने का साहस भी कैसे कर पाएगा ? क्योंकि उसने मान ही लिया कि बिना झूठ के जीवन नहीं चलेगा। उसने मान लिया कि बिना झूठ के व्यापार नहीं चलेगा। झूठ बोलना ही पड़ेगा। यह आज की बात नहीं है। अनादिकाल से झूठ का प्रवाह चलता आ रहा है।

नदियाँ कब से हैं ?

(लोग कहते हैं- अनादिकाल से हैं)

नदियाँ भी शाश्वत हैं। सारी नदियाँ शाश्वत नहीं हैं किंतु गंगा-सिंधु नदियाँ अनादिकाल से चल रही हैं। गटर भी चलते हैं या नहीं चलते ?

(लोग कहते हैं- चलते हैं)

मनुष्य जहाँ होगा, वहाँ गंदगी तो होगी। वहाँ गटर के नाले बहेंगे। दोनों ही चलते रहे हैं। यह हम पर निर्भर है कि हम किसका आश्रय लें।

हम गटर को महत्व दें या नदी को ?

(लोग कहते हैं- नदी को)

गटर भी हमारे जीवन का अंग हैं। उसमें हमारा ही उच्छिष्ट पदार्थ है। हमने जिसको छोड़ा वह गटर में है और नदी का पानी ग्रहण करने की बात होती है। गटर का पानी ग्रहण नहीं करते हैं, किंतु नदी का पानी ग्रहण करते हैं, क्योंकि बिना पानी के जीवन नहीं चलेगा। बिना पानी के जीवन दुष्कर है। कठिन हो सकता है। पाँच-दस दिन चौविहार कर सकते हैं। पाँच-दस दिन पानी का दर्शन किये बिना काम चल सकता है। इस युग में ज्यादा से ज्यादा 40-50 दिन बिना पानी के रह सकते हैं। भगवान महावीर के युग में छह महीने तक बिना अन्न-जल के तपस्या हुई। भगवान ऋषभदेव के समय स्वयं ऋषभदेव भगवान ने एक वर्ष तक न अन्न का सेवन किया न पानी का। ‘असणं, पाणं, खाइमं, साइमं’ ये चारों आहार उनको प्राप्त नहीं हुए। एक वर्ष तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करने के बाद भी उनका जीवन टिका रहा।

बाहुबली जी की कहानी हम सुनते आए हैं कि भरत चक्रवर्ती के साथ युद्ध करते हुए उन्हें आत्म जागरण हुआ तो एक विचार आया कि बड़े भाई पर हाथ नहीं उठाऊं। उससे उनके जीवन में ऐसा मोड़ आया कि वे साधु बन गए। एक वर्ष तक एक स्थान पर खड़े रहकर साधना में लीन हो गए।

उन्होंने कितनी बार आहार किया, पानी कितनी बार लिया ?

आहार-पानी की तो क्या बात करें, वे एक वर्ष तक हिले-डुले ही नहीं।

कितने महीनों हिले-डुले नहीं ?

बारह महीनों तक नहीं हिले-डुले।

कोई है यहाँ पर जो बारह महीनों तक बिना हिले-डुले रह सकता है? बारह महीनों तक नहीं, बारह दिनों तक अपना हाथ-पाँव हिलाए बिना रह सकता है कोई? जाने दो बारह दिन, बारह घंटों तक भी रहने वाला है क्या कोई?

जहाँ तक मुझे स्मृति है आचार्य पूज्य श्रीलाल जी म.सा. के समय उदयपुर की भूमि पर एक श्रावक जी ने 151 सामायिक एक आसन पर की। कहते हैं कि उन्होंने खड़े रहकर 151 सामायिक की। 151 सामायिक में कितना समय लगा?

(लोग कहते हैं- पाँच दिन)

एक दिन में तीस सामायिक होती है तो पाँच दिन में 150 सामायिक होगी। एक सामायिक अधिक की। पाँच दिन से थोड़ा ज्यादा समय उन्होंने सामायिक में लगाया। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि उदयपुर वाले रिकॉर्ड तोड़ दें, किंतु नया रिकॉर्ड तो बन सकता है ना?

गुरुदेव का चातुर्मास देशनोक में सम्पन्न हो रहा था। वह देशनोक में गुरुदेव का दूसरा चातुर्मास था। किशनलाल जी भूरा ने मासखमण किया और गुरुदेव का पथारना हुआ। किसी ने पूछ लिया कि कोई दया का मासखमण करे तो गुरुदेव पथार सकते हैं क्या?

मैंने गुरुदेव से पूछा नहीं और कह दिया कि कोई कर सकता है तो गुरुदेव पथार सकते हैं। मैंने सोचा कि खाना छोड़कर मासखमण करना आसान है, किंतु खाना खाकर दया का मासखमण उतना ही कठिन है। बल्कि उससे भी कठिन कह सकते हैं। उपवास करने वाला तो दिनभर कुछ भी काम धन्धा कर सकता है पर दया में रहने वाले को 24 घंटे बिना रुकावट के 30 दिन तक धर्म-स्थान में संवर की क्रिया में रहना पड़ता है। खाना छोड़ना महत्वपूर्ण बात नहीं है, महत्वपूर्ण बात है संवर की क्रिया में रहना। एक उपवास करना आसान है, किंतु एक सामायिक करना कठिन हो सकता है। बहुत-से लोग उपवास करने वाले होते हैं, किंतु उन्हें सामायिक करना नहीं सुहाता। सामायिक करना, संवर करना बहुत कठिन होता है।

ऐसे विचार मेरे मन में आए कि दिन भर संवर में रहना बहुत कठिन है।

उसके आधार पर मैंने कह दिया। वर्तमान युग में बच्चा निरंतर रोता रहता है तो उसको संभालें या सामायिक करें! छोटे बच्चे का स्थान अब मोबाइल ने ले लिया है। उसका रोना चलता ही रहता है। उससे कितनी हिंसा होती है। ऐसे युग में दया का मासखमण होता है तो कितनी हिंसा से बचा जा सकता है। दया करने का मतलब मोबाइल नहीं चलाना, कच्चे पानी को नहीं छूना, हिंसा नहीं करना। छहकाय जीवों की यतना करना बड़ी बात होगी।

उस समय 82 मासखमण दया के हुए। उसके बाद फिर किसी भी चातुर्मास में 82 मासखमण नहीं हुए। तपस्या ज्यादा हो गई होंगी, तपस्या के मासखमण 150 तक भी हो गए, किंतु दया के मासखमण ज्यादा नहीं हुए। गुरुदेव के देशनोक चातुर्मास में ही सामायिक के 300 लगभग मासखमण हुए। उस समय लोगों का मन बन गया कि हमें सामायिक का मासखमण करना है और उन्होंने किया। लोग पूरे दिन-रात हिंसा, झूठ, छल-कपट, प्रपंच, आस्त्रव से बचे। कर्मबंधनों से बचे।

धर्म की साधना करना महत्वपूर्ण है। धर्म की सुवास आना, धर्म की भावना आना महत्वपूर्ण होता है। धर्म यानी सत्य की सदा जयकार होती है। धर्म भी हमें सदा जय दिलाने वाला होता है। धर्म की ही जीत होती है। यदि धर्म नहीं है तो जीवन नहीं है। सत्य नहीं है तो सच्चा जीवन नहीं है। हम भले ही जीवन जी रहे होंगे, किंतु जीवन की साख नहीं है। सत्य वाले की आँख का तेज निराला होगा। अद्भुत होगा।

होगा या नहीं होगा ?

(लोगों ने कहा- होगा)

सत्य में जीने वालों की आँख में ऐसा तेज होता है कि उनकी आँखों में कोई झाँकने की कोशिश नहीं कर पाएगा। जैसे सिंह की आँख से आँख मिलाना बहुत कठिन होता है, वैसे ही सत्य की राह पर चलने वाले से आँख मिलाना बहुत कठिन है। कोई विगला ही मिला पाता है। हर आदमी के वश की बात नहीं है।

मुझे स्पष्ट ध्यान नहीं है कि उस समय आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. मुनि अवस्था में थे या आचार्य अवस्था में। एक बार पहाड़ी इलाकों

में पाँच संतों के साथ चल रहे थे। रास्ते में सिंह नजर आया। साथ चल रहे संतों ने कहा, गुरुदेव सिंह आ रहा है।

गुरुदेव ने कहा कि रेल के डिब्बे की तरह एक-दूसरे के आगे-पीछे हो जाओ। गणेशलाल जी म.सा. आगे चल रहे थे। उन्होंने सिंह की आँखों से आँखें मिलाई और सिंह साइड से निकल गया।

यह बात स्पष्ट करती है कि सिंह से जो आँख मिला ले उस पर सिंह हमला नहीं करता। और कोई कुत्ते से आँख मिला ले तो कुत्ता पीछे पड़ जाएगा। इसलिए कभी आँख मिलाना हो, तो किससे मिलाना ?

(लोग कहते हैं- सिंह से मिलाना)

जंगल में जाकर तो आप किसी से आँख नहीं मिला पाओगे। गुलाब बाग में शायद सिंह होंगे ?

(एक व्यक्ति ने कहा- सज्जनगढ़ में छोड़ दिए गए)

पहले गुलाब बाग में सिंह होते थे। खुले हुए सिंह से आँख मिलाने की हिम्मत नहीं होगी। पिंजरे में बंद सिंह से भी आँख मिला लोगे क्या ?

सिंह, सिंह ही होता है, इसलिए हमारे तीर्थकर देवों के लिए कहा गया है पुरिससीहारां।

जैसे पशुओं में सबसे बढ़कर सिंह होता है, वैसे ही पुरुषों में सिंह के समान शूरवीर तीर्थकर होते हैं। वे निर्भय होते हैं। निर्भयता आती है सत्य से। सत्य हमारे जीवन में आएगा तो अगल-बगल झाँकने की आवश्यकता नहीं होगी। हम सच्चे धर्म की राह पर चलते रहेंगे। जीवन के शिखर तक ले जाने वाला एक मात्र सत्य है। सत्य धारण करने से आगे बात बनती है।

सत्य के संस्कार सुहाने, नहीं बनाने पड़े बहाने।

निष्कपट रहे खास भाविक जन, सत्य सदा जयकार॥

सत्य में जीने वाले को बहाना बनाने की आवश्यकता नहीं होती। उसका हृदय निष्कपट रहता है। जिसका हृदय निष्कपट होता है उसकी यात्रा निष्कंटक चलती है। उसे कोई बाधा नहीं आती। कोई अवरोध नहीं आता।

आप कहेंगे कि भगवान महावीर के जीवन में बहुत सारी बाधाएँ

आई, बहुत सारी रुकावटें आई।

हमारी दृष्टि में वे रुकावटें हैं, किंतु हकीकत में जीवन की सच्चाई है। वे जीवन को दिशा देने वाली हैं। प्रेरणा देने वाली हैं। जब हमारे सामने कठिनाइयाँ आती हैं तो हमारी सोई हुई शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं। जब हमारे सामने कोई चुनौती नहीं होती है तो हम शिथिल हो जाते हैं। जब हमारे सामने चुनौती होती है तो हमारे मन में उत्साह जगता है। हमारे भीतर का सोया हुआ उत्साह और उमंग जागृत हो जाता है। हमारी सोई हुई शक्तियाँ जागृत हो जाती हैं।

सत्य का एक चारित्र भाग है जिसमें सच्चाई से जीवन जीने का प्रयत्न किया था। ये कोई पौराणिक कहानी नहीं है। आगमिक कहानी नहीं है। यह एक दंत कथा है। कहानी कैसी भी हो, उसे सुनने में कोई रुकावट नहीं है, बरते हमें कोई प्रेरणा मिले। यदि कभी पिक्चर देखने का मन भी हो तो लक्ष्य होना चाहिए कि मैं कुछ प्रेरणा लेकर आऊँ। हमने कई बार कहानियां सुनी होंगी। कहानी बहुत महत्व की होती है। हमारे भीतर संस्कारों का बीज बोने वाली होती है। इसलिए कहानी कैसी भी हो प्रेरणा देने वाली होनी चाहिए। हर कहानी से कोई न कोई प्रेरणा मिलती है, बरते हमारी दृष्टि, हमारी सोच, हमारी समझ प्रेरणा लेने वाली हो। हम किसी भी बात को मनोरंजन में निकाल सकते हैं और किसी भी बात को गहराई से ले सकते हैं।

धन्ना जी ने सुभद्रा की बात को गहराई से ले लिया। हमने ऐसी बातों को हँसी में टाल दिया होगा। प्रसंग हमारे सामने भी आए होंगे। कभी श्रीमती जी ने टोन मारी होगी। कौन ऐसा है जिसने कभी टोन नहीं सुनी, हाथ खड़े कर सकते हैं। झूठ में हाथ खड़े नहीं करना।

‘डागलिये चाढ़ देखो, घर घर रो ओई लेखो’

यह सहज बात है कि परिवार व समुदाय में खटपट होगी। यह स्वाभाविक है। ऐसा नहीं है कि कभी हो ही नहीं। कोई उससे प्रेरणा ले लेता है, तो कोई उसको टाल देता है। प्रेरणा लेने से कोई नयी बात सामने आ जाती है। धन्ना जी ने प्रेरणा ले ली तो नयी बात प्रकट हुई। सभी प्रेरणा लें। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मात्र श्रीमती जी से ही प्रेरणा लें। कथा, कहानी, प्रवचन-

व्याख्यान किसी भी माध्यम से प्रेरित होकर जीवन में सुधार की स्थिति बना सकते हैं।

इसलिए यह कहानी चलती रहेगी। इस कहानी के मुख्य पात्र हैं शांतिलाल और आशा। यह कहानी एक दिन में खत्म होने वाली नहीं है। कई दिन तक चलती रहेगी। यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि कितने दिन लगे। महत्वपूर्ण बात यह है कि हम उसमें से चुनते क्या हैं। जैसे हंसा मोती चुगता है वैसे ही हम इस कहानी में से महत्वपूर्ण बात चुनने में समर्थ हो सकते हैं।

आज एक बिंदु ध्यान में लेकर चलें कि आत्महित में जो होगा वही करेंगे। आज के दिन आत्मा के अहित का काम नहीं करना। हिंसा से जुँड़ेंगे तो आत्महित का काम नहीं होगा। एक दिन जो भी करना आत्महित के लिए करना। दूसरी प्रवृत्ति नहीं करनी।

कोई है तैयार ? कौन तैयार है ?

चलो यह कर लो कि व्याख्यान से उठने के बाद एक घंटे तक मोबाइल को चालू नहीं करना। मांगलिक होने के बाद एक घंटे तक मोबाइल चालू नहीं करना। कौन-कौन करेगा ? बहनें भी हाथ जोड़ लें। प्रत्याख्यान। आज इतना ही।

15 जुलाई, 22

4. दुःख सुमरियां दुःख होय

पंथडो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे अजित अजित गुणधाम।
जे तें जीत्या रे, ते मुझे जीतियो रे, पुरुष किश्युं मुझ नाम॥

पंथडो मतलब पथ और निहालुं मतलब देखना। इन पंक्तियों के माध्यम से कवि कह रहे हैं कि मैं अजित नाथ भगवान के पथ को निहारना चाहता हूँ। देखना चाहता हूँ कि उनका मार्ग कैसा है, उनकी डगर कैसी है, जिस पर वे बढ़ते हुए चले गए। उन्हें कहीं अवरोध नहीं आया। अवरोध आया तो भी उन्होंने उसे दूर कर दिया।

भगवान महावीर दीक्षित होकर मुनि बने तो ‘नमो सिद्धाण्ं’ पद का उच्चारण करते हुए सिद्ध भगवंतों का आदर्श अपने सन्मुख रखकर गतिशील हो गए। उन्हें पहली ही रात में भयंकर उपसर्ग का सामना करना पड़ा, किंतु उससे उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। ‘सिर मुंडाते ही ओले पड़े’ जैसी स्थिति हो गयी, किंतु वह स्थिति उनके मन को हिलाने में समर्थ नहीं हो पायी। कितनी भी कठिनाइयां आयीं, वे सारी कठिनाइयों को सहने के लिए तत्पर रहे। वे दुःखी नहीं हुए। दुःख का स्मरण दुःख को पैदा करता है। मन में बसा हुआ दुःख का भाव हमें दुःखी बनाता है।

दुःख को सहना ज्यादा मुश्किल नहीं होता है, दुःख को भूलना बहुत मुश्किल होता है। मेरे साथ किसी ने बुरा बरताव किया तो उसको सह तो लेता हूँ पर भूल नहीं पाता। किसी ने एक चाँटा जड़ दिया उसको सह तो लेता हूँ, किंतु यह भूल नहीं पाता कि अमुक ने मुझे चाँटा लगाया था। चाँटा लगाने की कसक मन में पड़ी रहती है। उसको भूलना बहुत कठिन होता है। जब तक उसको भूलते नहीं हैं तब तक वहीं अटके रह जाते हैं। तब तक गति नहीं हो पाती है।

तीर्थकर देवों का मार्ग है- ‘अईयं पडिक्कमामि’ अर्थात् अतीत का प्रतिक्रमण। जो हो गया उसे भूल जाओ। जो हो गया उसकी स्मृति दिमाग में भरो मत। वह चीज दिमाग में भरी रहेगी तो नया उपार्जन कैसे कर पाएंगे।

हमारे दिमाग में कौन-कौन सी बातें भरी हुई हैं? हमारा दिमाग क्यों बोझिल है? हमारे मस्तिष्क में नये विचार क्यों नहीं पैदा हो पाते? यदि पैदा होते भी हैं तो उसके साथ कुछ मिक्स हो जाता है। कुछ मिक्स हो जाने से पूर्णतः स्वस्थ चीज हमारे सामने नहीं आती।

शरीर रोगों से कमजोर होता है। अन्यमनस्क विचारों से मन कमजोर होता है और कषाय, ईर्ष्या, डाह से आत्मा कमजोर होती है। एक शरीर का रोग होता है, एक मन का रोग होता है और एक आत्मा का रोग होता है। शरीर के रोग को फिर भी आदमी सह लेता है, किंतु मन का रोग सह नहीं पाता। इससे हमारा मन कमजोर होता चला जाता है। मन की शक्ति क्षीण होती चली जाती है।

श्रीमद् आचारांग सूत्र में एक बात कही गई है ‘अद्वे लोए परिजुण्णे दुस्संबोहे अविजाणए...’

इसका एक-एक शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। ‘अद्वे लोए’ अर्थात् आर्तलोक। आर्त किसे कहेंगे? ये चीज मेरे पास नहीं है। मुझे इस चीज की आवश्यकता है। ये चीज मुझे मिल जाए। इस प्रकार हम जितनी भी आकांक्षा करते हैं, वे सभी आर्त भावों के अंतर्गत आती हैं। आर्त भाव में हम अपने मन को कमजोर करते हुए चले जाते हैं।

किसके मन में यह आकांक्षा नहीं रहती है कि मुझे यह मिलना चाहिए, वह मिलना चाहिए? व्यक्ति धन की प्राप्ति के लिए आर्त बन रहा है। परिवार के लिए सुख-साधन जुटाने खातिर आर्त बना हुआ है। अपनी बीमारी से मुक्त होने के लिए आर्त बना हुआ है। ऐसी और कितनी बातें बताएं कि किन-किन भावों से हम आर्त बने हुए हैं। आर्त भाव मन को जीर्ण करता है। इसलिए कहा गया है ‘अद्वे लोए परिजुण्णे’ अर्थात् जिसका मन आर्त भाव में गुजरता है उसका मन परिजीर्ण हो जाता है।

परिजीर्ण मन बोध को प्राप्त नहीं हो पाता है। ऐसे मन वालों के लिए बोध की प्राप्ति होना दुष्कर है।

बात समझ में आ रही है ना ?

(लोग कहते हैं- आ रही है भगवन्)

क्या समझ में आया ?

जिसका मन आर्त भाव से जीर्ण हो चुका है उसको बोध प्राप्त होना दुष्कर है। वह बोध को प्राप्त नहीं कर सकता। वह बोध को संभालकर नहीं रख सकता। उसकी समझ सुंदर नहीं हो सकती।

बात शुरू हुई थी कि ‘पंथडो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे...’ अर्थात् मार्ग देखना चाहता हूँ। हम भी मार्ग देखना चाहते हैं किंतु वह दिख नहीं पाता। जैसे धुंध होने पर आगे का रास्ता दिखाई नहीं पड़ता, वैसे ही हमारे विचारों की धुंध से हमें जिनेश्वर देवों का मार्ग दिख नहीं पाता। हमारे मन में आर्त भावों की धुंध भरी हुई है। हमारे विचारों में धुंध का निर्माण हुआ है। वह धुंध मुझे जिनेश्वर देवों के पथ को देखने नहीं देती।

तीर्थकर देवों का मार्ग है आर्त भावों से हटने का। आर्त भावों से हटोगे तो सुखी हो जाओगे। जीवन का आनंद उठा लोगे। भगवान महावीर घर में रहते हुए भी साधना में ही थे और दीक्षित होते ही। उन्होंने सारे पुराने संस्कारों को अपनी स्मृति से हटा दिया। मेरा और पराया की ओर से उनका ध्यान हट गया। उन्होंने ये विचार तिरोहित कर दिया कि ये मेरे नजदीक के लोग थे, ये मेरे शत्रु रहे थे।

मैं बता रहा था कि दुःख की बात भूलना बहुत कठिन होता है। दुःख की बात बार-बार याद आती रहती है। वह स्मृति में घुलती रहती है। यह हमारा भटकाव है और भटकाव हमें सही दिशा में ले जाने वाला नहीं है। जैसे चुंबक लोहे को आकर्षित करती है, वैसे ही हमारे भीतर भरे दुःख के संस्कार नए दुःख को आमंत्रित करते हैं। दुःख को बुलाते हैं। इसी कारण से हम बार-बार दुःखी होते रहते हैं।

हमने भगवान महावीर के जीवन की घटना सुनी होगी। सूर्योस्त होने को था। भगवान महावीर ध्यान में खड़े हैं। एक ग्वाला अपने बैलों को लेकर

आया और कहा कि स्वामी जी ध्यान रखना, मैं यहाँ पर बैलों को छोड़कर जा रहा हूँ। यह कहकर ग्वाला किसी काम के लिए चला गया।

भगवान महावीर अपनी मस्ती में थे। उन्हें क्या लेना-देना बैलों से।

ग्वाले ने क्या कहा?

मेरे बैलों का ध्यान रखना।

भगवान महावीर के कानों में शब्द गए होंगे, किंतु मन ने उन शब्दों को स्पर्श नहीं किया। इसलिए नहीं किया क्योंकि मन कर्ही और था। वे अपने आप में मस्त बने हुए थे। उनको इससे क्या लेना-देना कि कौन बैल लेकर आया और कौन बैल छोड़कर गया। उनका उस पर कोई ध्यान ही नहीं गया। सुना ही नहीं। तवज्जो ही नहीं दी। शब्द केवल कान से टकराकर रह गए।

थोड़ी देर बाद जब ग्वाला आया और वहाँ बैलों को नहीं देखा तो भगवान महावीर से कहा कि मेरे बैल कहाँ हैं?

भगवान क्या जवाब देते? भगवान ने कोई जवाब नहीं दिया। कोई उत्तर नहीं दिया। वे मौन रहे।

ग्वाला इधर-उधर बैलों को ढूँढ़ने के लिए गया। काफी देर तक उसने मशक्त की, किंतु बैल नहीं मिले। काफी देर के बाद वह लौटकर आया तो बैल भगवान महावीर के ईर्द-गिर्द ही बैठे मिले। यह देखकर उसको गुस्सा आया कि कैसा व्यक्ति है, ढोंग कर रहा है। ग्वाले ने सोचा कि मैं जिस समय पूछ रहा था क्या उस समय बता नहीं सकता था कि बैल यहीं हैं। मैं रातभर परेशान होता रहा। थक कर चूर-चूर हो गया और इस बेईमान ने बैलों को छुपा रखा था। सोचा होगा कि अब बैल मेरे कब्जे में आ गए। उसे गुस्सा आया और वह एक रस्सी लेकर आया भगवान महावीर पर आक्रमण करने के लिए।

संयोग ऐसा बना कि दीक्षा-महोत्सव सम्पन्न करके अपने देवलोक में गये शक्रेंद्र ने विचार किया कि प्रभु का पहला विहार, पहली रात्रि कैसे सुख-साता में बीती, यह जानकारी लूँ। उसने अपने अवधिज्ञान का उपयोग किया। अवधिज्ञान का उपयोग करते ही पूरी घटना उसके सामने आ गयी। उसने देखा कि ग्वाला रस्सी लेकर आक्रमण करने को तैयार है।

वह झटके से प्रभु महावीर के पास आया और ग्वाले के अज्ञान को दूर

कर उसको समझाया कि क्या कर रहे हो। उसके बाद भगवान महावीर से निवेदन करता है कि भगवान ये अनार्य लोग आपका महत्व नहीं समझते, आपकी महिमा नहीं जानते। ये आपको उपसर्ग देते रहेंगे। उसने निवेदन किया कि आप मुझे अनुमति दीजिए कि मैं आपकी चरण सेवा में रहूँ और आने वाले आपके अनिष्ट संयोगों को दूर करता रहूँ ताकि आप पर कोई उपसर्ग नहीं आ पाए।

कौन कह रहा है यह बात ? ऐसी बात कहनी चाहिए या नहीं कहनी चाहिए ?

दो-तीन दिन पहले एक प्रश्न सामने आया था कि बिल्ली ने अपने मुँह में चूहा पकड़ रखा है तो उसको छुड़ाना या नहीं छुड़ाना ?

तर्क था कि उसको छुड़ाएंगे तो बिल्ली भूखी रह जाएगी क्योंकि वह उसका खाना है, इसलिए चूहे को क्यों छुड़ाया जाए ?

इस तर्क को ध्यान में लें तो मेरे खयाल से इंद्र ने बहुत बड़ी गलती की भगवान महावीर को सजा देने जा रहे ग्वाले को समझाकर। भगवान महावीर अपने कर्मों का क्षय करने की तैयारी में थे, कि इंद्र ने आकर अटका दिया। ग्वाले के माध्यम से वे अपने कर्मों का भोग करने वाले थे कि इंद्र ने आकर अटकाव दे दिया। अब उनके कर्म क्षय कब होंगे, कैसे होंगे ? उसने रुकावट पैदा कर दी।

क्या इसको अंतराय मानेंगे ?

मान लो थोड़ी देर के लिए कि सज्जनगढ़ में रहे सिंह का पिंजरा खुला रह जाए। हमारा उधर से निकलना हुआ। वह सिंह हमारे ऊपर हमला करे और उधर दूसरा आदमी खड़ा है, जिसके हाथ में ऐसे साधन हैं कि वह सिंह से बचा सकता है तो हमारा मन क्या चाहेगा ? हम बचना चाहेंगे।

अपने स्वयं के लिए बात बचने की क्यों आई ? मन में बचने की बात क्यों आना ?

हम अपने को बचाना चाहते हैं और चूहा, बिल्ली के मुँह में चला जाए तो उसका खाना हो गया। हमको भी सिंह खा सकता है। वह मांस ही खाता है, खून ही पीता है। हम उसके खाद्य पदार्थ हुए। भक्ष्य पदार्थ हुए। रोकने वाला

अंतरराय लगाने वाला होगा। ऐसी विचित्र बातें दुनिया में चलती हैं। ऐसे विचित्र तर्क होते हैं। इन तर्कों में व्यक्ति उलझ जाता है। यह हमारी नासमझी का खेल है या यूं कहें कि ‘समझ समझ संसार में, समझे वे नर थोड़ा।’

सबकी अपनी-अपनी समझ है। जिसकी जितनी समझ होती है उससे ज्यादा वह कहाँ समझ पाएगा। इंद्र की यदि यह मान्यता होती कि भगवान महावीर अपने कर्मों का कर्जा चुका रहे हैं इसलिए मुझे बीच में नहीं आना चाहिए तो वे देवलोक से दौड़ के नहीं आते।

दौड़ के आते क्या ? नहीं आते

इसका मतलब स्पष्ट है कि इंद्र की ऐसी मान्यता नहीं थी। इंद्र यह मान रहे थे कि जहाँ तक मेरा वश चले, वहाँ तक मैं भगवान की रक्षा करूँ। वहाँ तक भगवान को बचाने का प्रयत्न करूँ। जो कुछ भी हो भगवान महावीर के सामने दोनों दृश्य हैं। उनके सामने इंद्र की भक्ति भी है और ग्वाले की अभक्ति भी।

उन्हें ग्वाले पर कोई रोष नहीं है और इंद्र के आने पर कोई खुशी नहीं है कि देखो मेरी पुण्यवानी कि देवलोक से इंद्र मेरे लिए दौड़ा आता है।

हमारे साथ ऐसी घटना घट जाए तो हम क्या करेंगे ?

हमारे साथ ऐसी घटना तब न घटेगी जब हमारे में वैसा सामर्थ्य हो। हमारे में वैसी क्षमता हो। हमारे में वह पात्रता ही नहीं है तो कैसे घटेगी घटना। घटना तो घटने वालों के साथ ही घटती है। महान् पुण्यवानी का योग होता है तो ऐसे कुछ योग बनते हैं।

खैर, भगवान महावीर अपने हाल में मस्त हैं। वे इंद्र से कहते हैं कि इंद्र, प्रत्येक तीर्थकर अपनी शक्ति से ही साधना करते हैं। वे दूसरों के सहारे से साधना नहीं करते। मैं दूसरों के सहारे से साधना करता रहूँगा तो मेरा शौर्य कब जगेगा ? मैं दूसरों को लेकर चलता रहूँगा तो मेरा शौर्य कैसे विकसित होगा ?

हमें यदि अपना शौर्य जगाना है तो दूसरों की अपेक्षा करना व्यर्थ है। दूसरों की अपेक्षा करना बेकार है। कोई सहयोगी बने तो बहुत अच्छी बात है, किंतु हमारे भीतर यह अभिलाषा नहीं होनी चाहिए कि कोई मेरा सहयोगी बने। अपने कदमों पर विश्वास होना चाहिए। भरोसा होना चाहिए। मेरे कदम ऐसे होने चाहिए कि मेरे पदचिह्नों पर लोग आगे बढ़ें। मेरे पदचिह्नों को देखकर दूसरों

के मन में चलने का मानस हो जाए। जैसे आनंदघन जी ‘पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे’ के माध्यम से जिनेश्वर देवों के मार्ग को देखना चाहते हैं।

तीर्थकर भगवान जिस मार्ग पर गमन करते हुए चले वहाँ उनके पैर मंडे या नहीं?

(लोगों ने कहा - मंडे)

ज्ञान, दर्शन, चारित्र के पगलिए मंड गए। बहने गाती हैं “कंकू रा पगलिया ओ मारासा पधारिया”। “केसर रा पगलिया ओ मारासा पधारिया”।

बोलो कहाँ है केसर? कहाँ है कुमकुम?

ज्ञान-चारित्र का केसर कुमकुम है। उनसे ऐसे पगलिया मंडते हैं कि मेरी गति अपने आप गतिशील हो जाती है।

चारित्र हमारे सामने चल रहा है।

सत्य सदा जयकार भविक जन, सत्य सदा जयकार...

मैंने बताया था कि इस कथा के पात्र शांतिलाल और आशा हैं। यह तो स्वाभाविक है कि जहाँ नायक होता है, वहाँ खलनायक भी होता है। बिना खलनायक के कथा अधूरी होती है। कोई भी कथा तब कथा का रूप ले पाती है, जब उसमें नायक और खलनायक होता है।

रामायण में मुख्य पात्र राम हैं और गौण पात्र रावण है। महाभारत में नायक के रूप में पांडवों का और खलनायक के रूप में कौरवों का वर्णन है। यहाँ खलनायक कौन है यह बात समय के साथ सामने आ सकती है।

शांतिलाल संस्कारी जीव था। माता-पिता के अनुशासन में रहने वाला। स्कूल में भी अनुशासन में पढ़ने वाला। उसने माता-पिता से सत्य की शिक्षा प्राप्त की थी। ध्यान रहे कि सत्य की शिक्षा केवल शब्दों से नहीं मिलती।

पूज्य गुरुदेव एक आख्यान फरमाया करते थे। एक वकील साहब का एक लड़का था। लगभग आठ-नौ वर्ष की उसकी उम्र रही होगी। उसका नाम रमेश था। एक बार एक वृद्ध पुरुष डंडे के सहारे वकील साहब के घर की ओर आ रहा था। ऊपर की मंजिल से वकील साहब की दृष्टि पड़ी कि वृद्ध पुरुष घर की तरफ आ रहा है। उस पुरुष का वकील साहब से कुछ रिलेशन था। वकील

साहब जान रहे थे कि इसका केस कोर्ट में फँसा हुआ है, जरूर यह उसी कारण से आ रहा है। उसे देखकर वकील साहब सोचने लगे कि इसके पास देने को कुछ होगा नहीं। मुझे पैरवी के लिए कह सकता है पर ऐसा केस हाथ में क्यों लेना? व्यापार, व्यापार ही होता है। उसमें रिलेशनशिप का क्या काम है! व्यापार में रिलेशन से पेट नहीं भरेगा, घर नहीं चलेगा। उन्होंने सोचा कि मैं इसका केस हाथ में क्यों लूं, इसका पता पहले ही काट दूं।

वकील साहब ने अपने बेटे रमेश से कहा, बेटा नीचे जा और जो वृद्ध पुरुष आ रहा है उससे बोल देना कि वकील साहब घर में नहीं हैं। ऐसा कह कर वह क्या सिखा रहे हैं?

आपने तो कभी ऐसा काम नहीं किया होगा? आपने तो बच्चों के साथ ऐसा खेल नहीं खेला होगा? शायद आपने ऐसी शिक्षा नहीं दी होगी! आपने कहा होगा कि बेटा सच बोलना और वकील साहब कैसी सीख देना चाहते हैं? प्रैक्टिकल क्या हो रहा है? वह क्या सीख रहा है?

रमेश नीचे गया और दरवाजा खोलकर कहा कि पापा ने कहा है, बोल देना वकील साहब घर में नहीं हैं।

कल मैंने कहा था कि जहाँ निष्कपट भाव होता है वहाँ सत्य टिकता है। जहाँ थोड़ा-सा भी कपट का भाव हो गया, सत्य वहाँ से खिसक जाएगा। सत्य ये नहीं जानता कि छल-कपट, प्रपञ्च क्या होता है। जैसे प्रकाश, अँधेरे को नहीं जानता।

एक किंवदंती है कि अँधेरे ने एक बार ब्रह्मा जी से शिकायत की कि मैं बड़ा परेशान हूँ, प्रकाश मेरा पीछा नहीं छोड़ता। मुझे भटकता रहता है। उसके भय से मैं मारे-मारे फिर रहा हूँ, मुझे मुक्त कीजिए।

ब्रह्मा जी ने प्रकाश को बुलाया और कहा, रे भाई! क्यों बेचारे अँधेरे को परेशान कर रहा है, क्यों हाथ धोकर उसके पीछे पड़ा हुआ है।

यह सुनकर प्रकाश ने आश्चर्य से कहा, भगवन्! आप क्या बात कर रहे हैं, मैं तो जानता तक नहीं कि अँधेरा होता क्या है।

प्रकाश क्या बोला?

आवाज आ रही है ना मेरी पीछे तक?

(लोगों ने कहा- आ रही है)

...तो फिर क्या बोला प्रकाश ने ?

प्रकाश बोला मैं तो अँधेरे को जानता तक नहीं। उससे कभी मेरा आमना-सामना भी नहीं हुआ होगा। कभी मुकाबला भी नहीं हुआ अँधेरे से।

जैसे प्रकाश अँधेरे से अनभिज्ञ है, वैसे ही सत्य यह नहीं जानता कि कपट क्या होता है, छल क्या होता है, लुकाना और छुपाना क्या होता है। अंदर कुछ, बाहर कुछ क्या होता है। यह दाँव-पेच सत्य नहीं चलता।

रमेश ने अभी तक छल-कपट नहीं सीखा था, इसलिए सहज और सरल भाव से उसने कह दिया कि पापा ने कहा है कि बोल देना वकील साहब घर में नहीं हैं। रमेश की बात सुनकर वृद्ध पुरुष लाठी के सहरे ऊपरी मंजिल पर चढ़ गया।

वृद्ध पुरुष को देखते ही वकील साहब ने कहा कि आपको कोई नीचे मिला नहीं!

वृद्ध पुरुष ने कहा, मिला।

वकील साहब ने कहा कि उसने कहा नहीं कुछ आपसे।

वृद्ध पुरुष ने कहा कि वकील साहब आप मेरा केस तें या नहीं लें किंतु छोटे बच्चों को झूठ बोलना मत सिखाएँ। वह यदि आज झूठ बोलना सीख गया तो असत्य की ओर बढ़ जाएगा, फिर आपके लिए भी एक दिन बड़ी कठिनाई की स्थिति बन जाएगी।

वस्तुतः सत्य की सीख व्यक्ति घर से प्राप्त करता है। घर में यदि सत्य का नाम ही नहीं होगा तो वह सत्य कहाँ से जानेगा। शब्दों से किसी को शिक्षित नहीं किया जा सकता। व्यवहार से शिक्षा अपने आप प्राप्त हो जाती है।

किराने के व्यापारी की संतान अपने आप तौलना सीख जाती है। कपड़े का व्यापार करने वाले का बेटा अपने आप मीटर और गज हाथ में ले लेता है। अपने आप ट्रेनिंग हो जाती है।

शांतिलाल की बात चल रही है। उसकी पुण्यवानी का योग था कि उसको शांति का वातावरण मिला। सत्य का वातावरण मिला। सुखी परिवार

का वातावरण मिला। क्लास के हिसाब से वो ज्यादा पढ़ नहीं पाया। एक जमाने में पढ़ाई का उतना महत्व नहीं था।

आप अपने दादा जी के विषय में बताओ कि उन्होंने कितना अध्ययन किया?

जयचंद जी, कितनी क्लास पढ़े?

(जयचंद जी डागा ने कहा— चौदहवीं तक पढ़ा)

आपके दादा जी कहाँ तक पढ़े?

(जयचंद जी ने कहा— दूसरी तक पढ़े)

अजीतदान जी पारख बीकानेर के सुश्रावक थे। पीरदान जी के बे पिताजी थे। वे लाखों का हिसाब अंगुलियों पर कर लेते थे। आज की तरह कैलकुलेटर की आवश्यकता नहीं होती थी। तब दूसरी-तीसरी क्लास बहुत महत्वपूर्ण होती थी। नाना गुरु कहते थे ‘कको केवलियो।’ ऐसे करके वे दूसरी-तीसरी क्लास तक पढ़े हुए थे। अक्षरी ज्ञान महत्वपूर्ण नहीं होता किंतु उसका भी महत्व होता है। महत्व नहीं होने जैसी बात नहीं है। अनुभव का ज्ञान बड़ा महत्वपूर्ण होता है। अनुभव शब्दों से नहीं आता। अनुभव आता है जीने से।

शांतिलाल ने सत्य का जीवन जीया इसलिए उसे सत्य की शिक्षा मिल गई। आर्थिक स्थिति कमजोर होने से वह ज्यादा क्लास पढ़ नहीं पाया। ज्यादा लम्बी छलांग नहीं लगा पाया। एक छोटी-सी दुकान थी और छोटा-सा घर था। लम्बा-चौड़ा व्यापार नहीं था। पिताजी बीमार हो गए और माता वृद्ध हो गई। ऐसे में वह पढ़े या घर चलाए। पढ़ाई करे तो दुकान कौन चलाए! दुकान चलाए बिना मुनाफा नहीं होगा, लाभ नहीं होगा। मुनाफा नहीं होगा तो घर कैसे चलेगा। वह पढ़ाई छोड़कर दुकानदारी में लगा। जो मुनाफा होता उससे परिवार का भरण-पोषण होने लगा। ये उसके जीवन की शुरुआत है।

आगे किस रूप में उसके जीवन में क्या-क्या घटना घटती है, क्या-क्या समस्याएं पैदा होती हैं, कौन सी परिस्थिति आती है, यह हम समय के साथ विचार करेंगे, किंतु इतना अवश्य है कि हमारा अनुभव, हमारा ज्ञान हमें राह दिखाता है।

सत्य की राह दिखाता है या असत्य की राह ? सत्य की राह दिखाता है ।

सत्य की ओर प्रेरित करता है या असत्य की ओर प्रेरित करता है ?

सत्य की ओर प्रेरित करता है ।

हमें किस राह पर आगे बढ़ना है ?

(लोग कहते हैं— सत्य की राह पर आगे बढ़ना है)

अपने मन में विचार करें कि किस राह पर चलना है ।

(सभी मौन रहते हैं)

मौन अच्छी बात है, किंतु यह सोचना है कि हमें मनुष्य जन्म मिला है, वीतराग वाणी मिली है, हमने यदि सत्य का सहारा नहीं लिया, असत्य के भँवर में रह गए तो हम सही राह पर आगे नहीं बढ़ पाएँगे ।

भँवर नदी में आता है । नाव भँवर के बीच आ जाए तो नाव उलटने की आशंका रहती है । झूठ एक भँवर है । इसमें हम फँसते रहेंगे तो जीवन की ऊँचाइयाँ कभी प्राप्त नहीं कर पाएँगे । जीवन का आनंद नहीं ले पाएँगे ।

रोटी के साथ सब्जी कौन-कौन खाता है ?

अधिकांश लोग खाते ही हैं ।

सब्जी का स्वाद कैसा होता है ? रोटी का स्वाद कैसा होता है ? सब्जी में नमक-मिर्च डालने पर सब्जी का मूल स्वाद नहीं आता । खिसक जाता है । वैसे ही हमारी जिंदगी में छल-कपट, प्रपंच रहते हैं तो हमें इनका मिला-जुला स्वाद आता है । जीवन की सच्चाई का स्वाद हम जिस दिन ले पाएँगे, उस दिन मनुष्य जन्म की सार्थकता अपने आप अनुभव कर पाएँगे ।

मैं यह अवश्य कहना चाहूँगा कि महान् पुण्य के योग से हमें तीर्थकर देवों का शासन मिला । इसका यदि सही उपयोग नहीं किया तो हम कोरे के कोरे ही रह जाएँगे । हमारी जिंदगी यूं ही निकल जाएगी । फिर कितना भी बोलते रहें ‘पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे..’ पर मार्ग दिखने वाला नहीं है । फिर उसको केवल शब्दों से ढूँढ़ते रहेंगे । आँखों से ढूँढ़ते रहेंगे । अपना अनुभव, अपना विचार तीर्थकर देवों के मार्ग को निहारने के लिए तत्पर नहीं होगा ।

इसलिए जो अवसर मिला है, मौका मिला है इसको चूँके नहीं। सत्य की राह पर आगे बढ़ें। सत्य की राह पर आगे बढ़ेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

16 जुलाई, 22

5. ये आँखें और वह आँख

पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे अजित अजित गुणधाम।

इस पर विचार करें तो इसमें रहस्य भगा हुआ है। उसके आगे एक बात कही गयी कि ‘चरम नयणे करी मारग जोवतां रे...’ अर्थात् मैं इस चर्म चक्षु से यदि भगवान के मार्ग को देखना चाहूंगा तो कभी नहीं देख पाऊंगा। मार्ग दिखेगा ही नहीं। उस मार्ग को दिव्य विचारों से देख सकता हूँ।

‘जेणे नयणे करी मारग जोइए रे’, ‘नयणा ते दिव्य विचार।’

यतना के नयनों से उस मार्ग को हूँढ़ने पर मार्ग मिलना असंभव नहीं है। तब वह मार्ग मिलेगा। केवल हमारी आँख में यतना हो जाए या हमारी आँख यतना की हो जाए, तो हम सही सलामत सारी चीजें देखने वाले बनेंगे। तब हमें एहसास होगा कि अजितनाथ भगवान का मार्ग अजित धाम है। जहाँ पर किसी का वश नहीं चलता, जहाँ मेरे पर कोई हावी नहीं हो सकता। जहाँ मेरा कोई शत्रु नहीं हो सकता। जहाँ कोई मुझसे वैर नहीं कर सकता। किसी का कोई भी जोर वहाँ मेरे पर नहीं चल सकता।

दिव्य विचारों से ही व्यक्ति स्वयं की खोज करता है। वह विचार करता है तो उसको एहसास होता है कि मैं कहाँ खड़ा हूँ, मेरा सामर्थ्य कितना है! उसे उस समय ज्ञान हो पाता है कि मेरा सामर्थ्य तो नगण्य है।

‘जे तें जीत्या रे ते मुझ जीतियो रे’

फिर वह कहता है कि भगवान मैं आपके मार्ग को देखना चाहता हूँ, किंतु मेरा सामर्थ्य मुझे इसके लिए अनुमति नहीं दे रहा है। जिनको आपने जीता, जिनको आपने पछाड़ा, वे मेरे पर हावी हो गए।

भगवान ने किसको पछाड़ा?

भगवान ने कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष को पछाड़ा। ये सारे भगवान के पास आ रहे थे, किंतु भगवान के पास पहुँचने से पूर्व ही धक्का खाकर वापस चले गए। भगवान के पास उनका जोर नहीं चला।

हम भगवान महावीर की बात लें। माना जाता है कि चौबीस तीर्थकर देवों में सबसे कम आयु भगवान महावीर की थी।

ऋषभ देव की आयु कितनी थी ?

ऋषभ देव की आयु 84 लाख पूर्व थी।

एक पूर्व कितना बड़ा होता है ? 70560000000000 वर्ष का एक पूर्व होता है।

इतने वर्षों का एक पूर्व होता है। ऐसे 84 लाख पूर्व वर्षों की जिनकी आयु थी, उनके सामने भगवान महावीर की आयु एक तिल और सरसों जितनी भी नहीं थी। यूँ कह दें कि एक रेती के कण जितनी आयु थी। भगवान महावीर की लम्बाई सबसे कम थी, पर कर्मों का भोग सबसे अधिक करना पड़ा क्योंकि कर्मों को भोगे बिना मोक्ष नहीं जा सकते।

भगवान महावीर दीक्षित होने के बाद विहार करते हुए एक गाँव में पहुँचे। वहाँ पर एक मंदिर में रुकने के लिए इजाजत लेने लगे।

पुजारी ने कहा कि मैं मंदिर में रुकने के लिए इजाजत नहीं देता, आप गाँव वालों से पूछो।

उन्होंने जब गाँव वालों से पूछा तो गाँव वालों ने कहा, महात्मा ! आप इस मंदिर में रुकने का प्रयत्न मत करो। हम आपको गाँव में दूसरी जगह देने के लिए तैयार हैं, किंतु भगवान महावीर का मन उस एकांत निर्जन मंदिर में रुकने का हुआ।

लोगों ने कहा, आपकी मर्जी है तो आप जानें, हमारी तरफ से मना नहीं है, किंतु एक बात आपको बता देना चाहते हैं, कि यह शूलपाणि यक्ष का मंदिर है। वह बड़ा क्रूर है। जैसा उसका नाम है, उसके हाथ में शूल-त्रिशूल रहता है। लोगों ने कहा कि हमने इसकी यातना भोगी है, त्रासदी भोगी है, इस कारण से आपसे हमारा निवेदन है कि आप इस जगह को छोड़कर दूसरी जगह देख लो।

भगवान ने वहाँ रहना चाहा और उन्हें वहाँ रहने की अनुमति मिल गई। भगवान मंदिर के कोने में रुक गए।

पुजारी पूजा करके लौटने लगा तो उसने फिर एक बार कहा कि आर्य, यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं है। जो भी रात्रि में इस मंदिर में रहता है, सुबह उसका मरा हुआ शरीर मिलता है। वह जिंदा नहीं मिलता। आप नए हो, आगंतुक हो, आपको शायद इस बात की जानकारी नहीं होगी, इसलिए मेरा फिर से आपसे कहना है कि आप इस स्थान को छोड़ दें। किसी दूसरे स्थान पर पधार जाएँ।

भगवान महावीर साधना में लीन हो चुके थे। एकाकार दृष्टि पूर्वक ध्यान में निमग्न हो गए।

ऐसा बताया जाता है कि शूलपाणि यक्ष इस दृश्य को देखकर गुस्सा हो गया कि यह साधु अपने आपको क्या समझ रहा है। अभी थोड़ी देर होने दो फिर मातृम पड़ेगा कि क्या परिणाम होता है। मेरी शक्ति अभी तक इसने पहचानी नहीं है।

पुजारी चला गया और शूलपाणि यक्ष का कार्य चालू हो गया। शूलपाणि यक्ष भयंकर अद्वृहास करता है। ऐसा कि सुनने वालों के कान फट जाएं, हृदय दहल जाए, किंतु भगवान महावीर शांत भाव से खड़े रहे। शूलपाणि यक्ष ने भगवान महावीर को बहुत सारे उपर्याप्त दिए। वह उपर्याप्त देते-देते थक गया, किंतु भगवान महावीर नहीं थके। अन्ततोगत्वा विजय भगवान महावीर की हुई।

शूलपाणि यक्ष भगवान महावीर का भक्त बन गया। वह भक्ति में नृत्य करने लगा। संगीत गाने लगा। स्तुति करने लगा। यह तो एक घटना है, एक प्रसंग है।

वापस आते हैं ‘जे तें जीत्या रे’ पर। उपलक्षण से क्रोध, मान, माया, लोभ ही शूलपाणि हैं। ये ही हमें जीत रहे हैं। ये ही हम पर हावी हो गए हैं। ये इतने भयंकर हैं कि भिन्न-भिन्न रूप से इनकी आकृतियाँ खड़ी हो जाती हैं। यदि शूलपाणि यक्ष में क्रोध नहीं होता, मान नहीं होता तो वह क्यों आक्रमण करता!

उसे यह मान (घमण्ड) हो गया कि यह मुझे क्या समझ रहा है! उसे इस बात पर क्रोध आ गया कि यह अपनी हेकड़ी दिखा रहा है। क्रोध ने उसमें उत्तेजना भर दी।

एक बात निश्चित है कि यदि हमारे भीतर धैर्य है, हमारे भीतर सहनशीलता है तो कितना भी बड़ा आक्रांता हो, कोई कितना भी आक्रमण करे, परास्त वही होगा। क्रोध को ही परास्त होना पड़ेगा। मान को ही परास्त होना पड़ेगा। धैर्यवान व्यक्ति, सहिष्णु व्यक्ति कभी भी क्रोध करने वालों से, मान करने वालों से परास्त नहीं होते। यह जरूर लगेगा कि क्रोध आदि का पलड़ा भारी हो रहा है, किंतु हकीकत में वो विजयी नहीं हो सकते। क्रोधी व्यक्ति का पॉवर धीरे-धीरे घटता जाएगा जबकि धैर्य अविचल रहेगा। अखंडित रहेगा। जिसके जीवन में धैर्य होता है उसको कोई पराजित नहीं कर सकता। उसको कोई हिला नहीं सकता है। धैर्यशाली को हराना नामुमकिन है, असंभव है, किंतु हम विचलित हो जाते हैं। हमारी सहनशीलता जवाब दे देती है। यही कारण है कि क्रोध, मान, माया, लोभ हम पर तीक्ष्ण वार करके हमें चोट पहुँचाते हैं। चोट हमारे भीतर दुःख पैदा करती हैं।

यदि हम मन से संवेदन नहीं करें तो कष्ट होगा पर वह दुःख का रूप नहीं ले पाएगा। किसी ने एक चाँटा लगाया और हमने मन में उसका संवेदन कर लिया, उस समय मन में प्रतिक्रिया चालू हो गई तो वो चाँटा दुख पैदा करने वाला बनेगा। यदि मैंने कोई प्रतिक्रिया नहीं की और दूसरा गाल भी उसके सामने कर दिया, तो चाँटा लगने की पीड़ा तो होगी, कष्ट तो हो सकता है, किंतु दुःख नहीं होगा।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. के आचार्य पद का पहला चातुर्मास अपने यहाँ कराने के लिए अनेक संघ अपनी-अपनी विनियां कर रहे थे। संघ के प्रमुख लोग, परामर्श देने में आगे रहने वाले लोग कहने लगे कि म. सा. आपका चातुर्मास जावद होना ठीक रहेगा। वह शांत क्षेत्र है। रत्लाम वाले कहने लगे कि म.सा. हम विनती तो रत्लाम की कर रहे हैं, किंतु अन्तर भाव से चाहते हैं कि चातुर्मास जावद ही होना चाहिए। हमारे रत्लाम में बखेड़ा बहुत है। वहाँ वातावरण शांत नहीं होने से हम आपका प्रथम चातुर्मास वहाँ

नहीं करना चाहते।

आपको मालूम है कि गुरुदेव ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि सारे आगार रखते हुए वह कहाँ खोल दिया ? कहाँ खोल दिया चातुर्मास ?

रत्नलाम में खोल दिया।

रत्नलाम चातुर्मास खुल गया। युवा टीम दर्शन करने पिपलिया मंडी पहुँची। व्याख्यान सुनने के बाद टीम ने गुरुदेव से निवेदन किया कि उन्हें कुछ मार्गदर्शन दें। गुरुदेव ने कहा कि धैर्य रखना। कोई एक चाँटा भी लगा दे तो उसका प्रतिकार मत करना। प्रतिक्रिया मत करना। हो सके तो अपना दूसरा गाल चाँटा लगाने वाले के सामने कर देना। लगभग इस आशय के भाव गुरुदेव के व्यक्त हुए। बात आई-गई हो गई।

कब की बात कब काम करती है, यह शायद हमें मालूम नहीं होता। कन्हैयालाल जी बोथरा संचालन करने वाले थे। व्याख्यान का संचालन करते हुए उनसे थोड़ी चूक हो गई होगी। जिसको माहौल बिगाड़ना होता है, वह चूक ढूँढ़ लेता है। चूक हो या नहीं हो, वह ढूँढ़ ही लेता है। एक भाई ने खड़े होकर उनको चाँटा लगा दिया। कन्हैयालाल जी को एक बार तो उत्तेजना आई, किंतु उनको गुरुदेव का मार्गदर्शन याद आ गया। उन्होंने हाथ जोड़ लिया। वे भी यदि थोड़ा तेजी में आ जाते तो पंडाल में गरमा-गरमी हो जाती। हाथापाई और मारपीट भी हो सकती थी। परिणाम को पहले नहीं भाँपा जा सकता। धैर्य टूटने पर खतरनाक स्थिति में पहुँच सकते हैं और धैर्य बना रह गया तो खतरनाक स्थिति से बच जाएंगे। खतरनाक स्थिति हमारे सामने खड़ी नहीं होगी।

कन्हैयालाल जी ने धैर्य रखा तो विवाद बढ़ा नहीं। शांत हो गया। बात वहीं खत्म हो गई। किसी ने कहा कि वे प्रतिक्रिया करें। उन्होंने कहा, मुझे कुछ नहीं करना।

देता गाली एक है, पलटे होत अनेक

जो गाली पलटे नहीं, रहे एक की एक।

यदि हम पलटवार नहीं करें तो वह अकेली पड़ी रह जाएगी। यदि पलटवार हुआ तो वार पर वार होता रहेगा। फिर विवाद कितना बढ़ जाएगा

कुछ भी कहना मुश्किल है। एक बार मुँह खुल गया तो कब रुकेगा, कुछ कहना कठिन है। और जब कहीं रुकना ही है, तो मुँह खोलना ही क्यों?

पुरुष कियुँ मुझ नाम। वह साधक कहता है मैं अपने आपको पुरुष मानता हूँ। पर मैं कैसा पुरुष? मैं अपना पौरुष जगा ही नहीं पाया। तभी तो कर्म-कषाय मेरे पर हावी हो रहे हैं। पौरुष जिसमें हो उसे पुरुष कहा जाना चाहिए। यहां आत्मा को ही पुरुष शब्द से अभिव्यक्त किया गया है। हिन्दी व्याकरण में आत्मा को स्त्रीलिंग में गिना गया है, जबकि संस्कृत और प्राकृत व्याकरण में पुलिंग गिना गया है। आत्मा में इतनी शक्ति है कि कषाय उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, किंतु जब आत्मा सोई रह जाती है, जब उसको अपने अस्तित्व का भान नहीं होता, तो कर्म अपने खेल रचाते हैं। फिर आत्मा कठपुतली जैसे नाचने लगती है। जैसे कर्म नचाते हैं, जैसे कषाय नचाते हैं, वैसे वह नाचने लगती है, किंतु यह ध्यान में रखना कि आत्मा की ताकत विशेष है। कर्मों की ताकत विशेष नहीं है, कषाय की ताकत विशेष नहीं है। आत्मा की ताकत विशेष है। जब तक आत्मा धैर्य को स्वीकार नहीं कर लेती, धैर्यवान नहीं बन जाती तब तक कषाय का वार चलता रहता है। तब तक कर्मों का वार चलता है। जिस दिन उसने अपने भीतर से दुख का संवेदन दूर कर दिया उस दिन से आत्मा को कोई दुःखी नहीं बना सकेगा।

भगवान महावीर ने अपने भीतर से दुख का संवेदन दूर कर दिया तो शूलपाणि यक्ष ने उन्हें कितने ही उपर्सर्ग दिये, किंतु वह भगवान महावीर को दुखी नहीं कर पाया।

हम यह कहकर टाल देते हैं कि वे तो भगवान थे। वे अपने आप ही भगवान बन गए क्या? बोलो वे अपने आप ही भगवान बने क्या?

मिट्टी का ढेला थोड़ी घड़ा बन जाएगा। क्या मिट्टी का ढेला अपने आप घड़ा बन जाएगा?

तो फिर कैसे बनेगा? किस-किस ने घड़े बनाए? बोलो। और कौन-कौन घट बना? हमने अपने आपको घड़े के रूप में निर्मित किया या नहीं किया? घड़ा बनाने के लिए पहले मिट्टी को पाँवों से रौंदा जाता है। रौंदकर उसे तैयार किया जाता है। फिर उसको चाक पर चढ़ाया जाता है। चाक पर रखकर

कुम्हार उसको घुमाता है। उसको आकार देता है। इतना होने के बाद भी घड़ा, घड़ा नहीं हो पाता। फिर उसे आग में तपाया जाता है। आग में तपकर पक जाता है तब वह घड़ा बनता है। कितनी कठिनाइयों से जूझने के बाद घड़ा बना और उसका नाम हुआ कुम्भ कलश। कुम्भ कलश पूजा के स्थान पर रखा जाता है। वह पूजा जाने लगता है। वही घड़ा महिलाओं के सिर पर चढ़ता है। मिट्टी का ढेला पूजा का स्थान प्राप्त नहीं कर पाता। महिला के सिर पर नहीं चढ़ पाता किंतु मिट्टी के ढेले से बना घट कहाँ तक पहुँच जाता है। इसलिए पहुँच जाता है क्योंकि वह सहता है। सहनशीलता पूजा के योग्य बना देती है। वैसे ही धैर्य हमें पूजा के योग्य बना देता है।

भगवान महावीर सहनशील बने रहे। वह अपने आप में मस्त रहे। किसी के प्रति उनके भीतर दुराव के भाव नहीं रहे। शत्रुता के भाव नहीं रहे। जिसके भीतर थोड़ा-सा भी शत्रुता का भाव हो जाएगा, थोड़ी भी प्रतिक्रिया पैदा होगी कि वो मेरे साथ ऐसा व्यवहार क्यों कर रहा है तो उसका धैर्य डाउन होता चला जाएगा। हमारे धैर्य की दीवार आर. सी. सी. जैसी होनी चाहिए। आर. सी. सी. की दीवार में कोई कील नहीं गाड़ सकता। कोई कितना हथौड़ा चलाए, कील गड़ेगी नहीं। उसके आगे का भाग टेढ़ा हो जाएगा, किंतु कील अंदर नहीं घुसेगी। धैर्य की दीवार वैसी ही होगी, तो कोई कितनी भी कीलें ठोंकें, आत्मा को चोट नहीं पहुँचेगी। चोट शरीर पर पड़ेगी। उससे आत्मा का कुछ भी बिगाड़ होने वाला नहीं है।

आत्मा का कुछ बिगाड़ होगा क्या ?

आत्मा का बिगाड़ तब होगा, जब हम उसे आत्मा तक पहुँचाएंगे। जब वो चोट आत्मा तक पहुँचेगी तो आत्मा दुखी होगी, आत्मा चोटिल होगी। हम पहले ही धैर्य की ऐसी दीवार खड़ी कर दें कि वो आत्मा तक चोट को पहुँचने ही नहीं दे।

ब्यावर में अनेक समुदाय के सदस्यों ने मिलकर एक मंच बनाया है ‘सद्ग्राव मंच ब्यावर’ के नाम से। उसके अनेक सदस्यों ने ब्यावर में दर्शन किए थे। कल भी दर्शन करने उपस्थित हुए और कहने लगे कि म.सा., ऐसा वातावरण क्यों बन रहा है।

मैंने कहा - जो वातावरण बन रहा है वह आप भी जान रहे हो। हमारी सहिष्णुता जब जवाब देने लगती है तो उन्माद पैदा होता है। उन्माद के कारण वातावरण दूषित होने लगता है।

अर्जुन माली उन्माद में गए। उन्माद में उन्होंने मुद्रपाणि यक्ष का आह्वान किया। उससे वातावरण क्षुब्धि हो गया। रेलवे के कई स्थानों पर लिखा मिलता है कि 'सावधानी हटी दुर्घटना घटी।' बहुत महत्वपूर्ण बात है। हमारी भी थोड़ी सावधानी हटेगी कि दुर्घटना घट जाएगी। यदि हम सावधान बने रहे तो घटना घट सकती है, किंतु दुर्घटना नहीं होगी। घटना एक बात है और दुर्घटना दूसरी बात। दुर्घटना वह है, जिसमें हमारा नुकसान हो जाए। भगवान महावीर के साथ भी दुर्घटना घटी, किंतु वे सावधान थे इसलिए उन्होंने अपना कुछ नुकसान नहीं होने दिया।

एक आदमी के हाथ में घड़ा था, जिसमें चार किलो घी था। एक दूसरे आदमी ने छेड़खानी कर दी। कुछ मजाक कर दिया, कुछ गालियां बक दी तो जिसके हाथ में घी वाला घड़ा था, उसको गुस्सा आया। गुस्से में उसने क्या किया? उसने घी वाला घड़ा उस पर फेंक दिया

इससे नुकसान किसका हुआ?

हम भी घड़ा फेंकने की तैयारी में रहते हैं या बचाने की तैयारी में रहते हैं?

भगवान महावीर ने घी वाला घड़ा नहीं फेंका। उन्होंने घी की रक्षा की, अर्थात् अपनी आत्मा में कोई प्रदूषण पैदा नहीं होने दिया। शूलपाणि को जो करना था उसने कर लिया, जितनी कोशिश करनी थी कर ली। पर भगवान महावीर का कुछ भी नहीं बिगड़ा।

भगवान महावीर ने बताया कि संतों ने कहा है कोई तुम्हारा वध करने लगे, गला काटने लग जाए, माथे पर सोट बरसाए, तो हे मुनि, तू विचार करना कि 'नथि जीवस्स नासु ति' अर्थात् जीव का नाश होने वाला नहीं है। हम बोलते जरूर हैं, किंतु ऐसा करते नहीं हैं। जिस दिन यह धारणा गहरी हो जाएगी, जिस दिन ऐसा प्रैक्टिकल हो जाएगा तब कोई कितना भी कुछ करेगा कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं होगा।

शांतिलाल सत्य की राह पर चलने के लिए तैयार है। सत्य की राह पर चल रहा है। उसने शुरू से संस्कार वैसे ही पाए हैं।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार....

कल या परसों हमने सुना ‘सत्यमेव जयते’ यानी सत्य की विजय होती है। मैंने यह भी कहा था कि घर के वातावरण से बच्चा शिक्षा लेता है। शांतिलाल का भाई सुरेश बौद्धिक बल से समर्थ था। शांतिलाल के मन में विचार था कि मैं नहीं पढ़ पाया, मेरे सामने समस्या थी, किंतु कम से कम मेरा भाई पढ़े। यह जितना पढ़ना चाहता है उतना पढ़ाना है। मैं समस्या झेल लूँगा। परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं होने से जो चाह कर भी नहीं पढ़ पाता उसका मन करता है कि मेरा भाई पढ़े। उसे पढ़ाने के लिए वे सारी सुविधाएं देने के लिए तैयार हो जाते हैं। शांतिलाल ने कठिनाइयाँ झेली होंगी, किंतु उसका विचार बन गया कि भाई को मुझे पढ़ाना है। सुरेश ने उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर ली।

‘एक ही माता रा बेटा च्यार, च्यारा री गति न्यारी न्यारी’ (हरजस)

एक ही माता के चार बेटे होते हैं किंतु सबकी सोच अलग-अलग होती है। सबके विचार अलग-अलग होते हैं। भिन्न-भिन्न विचार होते हैं। आप कहेंगे कि म.सा. कल आपने कहा था कि संस्कार परिवार से मिलते हैं तो एक ही परिवार में भेद कैसे हो गया। इसका समाधान स्पष्ट है— मतिरा और प्याज दोनों एक खेत में पैदा होते हैं पर दोनों में भिन्नता होती है।

भिन्नता होती है या नहीं होती ? होती है

जमीन दोनों की एक होती है। दोनों को पास-पास बोया गया। खाद-पानी समान दिया गया। इसी तरह किसी खेत में अफीम बोया गया और उसी खेत में सांठा (गन्ना) बोया गया फिर भी दोनों में फर्क होता है या नहीं!

एक बार सांठे को जाने दो। सांठे को किनारे कर दो। अफीम के डोडे के भीतर जो रस पैदा होता है जिसको चीरा देकर निकालते हैं वो अफीम होता है और भीतर जो दाने होते हैं उसे खसखस बोलते हैं। दानों में और रस में कितना फर्क होता है। बारीक-बारीक सफेद दाने बुद्धि को फल देने वाले होते हैं और अफीम बुद्धि को ठप करने वाला होता है। एक ही पौधा, एक ही फल। एक ही फल में दो-दो चीजें और दोनों के गुण-दोष में इतना फर्क! इतना

अंतर! यह जानी-सुनी बात है! आपने इसे सुना होगा। देखा होगा। एक ही पौधा, एक ही खेत, किंतु दोनों के स्वभाव में कितना अंतर!

कुछ बातें ईश्वरीय देन होती हैं। ईश्वर की देन से व्यक्ति स्वभाव से ही गुणी होता है। किन्तु जो अकड़ मिजाजी होता है उसमें ईश्वरीय गुण नहीं आते।

सुरेश को बहुत सुविधा मिली। सुविधा, कई बार आदमी को उलटा बना देती है। वह सोचता है कि सभी सुविधा मुझे मिली हुई है, मेरा ठप्पा चल रहा है। कई बार पढ़-लिखकर मन में अहंकार आ जाता है कि इस घर में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा मैं हूँ। इस घर में मेरी पूछ होगी, मेरी चलेगी।

यहाँ उदयपुर में पगारिया जी हैं। वे न्यायिक सेवा में थे। अब तो रिटायर हो गए। जैसा मैंने सुना, उसके अनुसार वे अपना पूरा वेतन अपने भाई के सामने रखते थे। खर्चों के लिए जो उनका भाई देता, वे उतना ही खर्च करते थे। ऐसा उनके भाई द्वारा सुना गया। वे कहते थे कि मेरा कुछ भी नहीं है और सुरेश सोचता है कि सब मेरा है।

ध्यान में रखना, अहंकार न किसी का टिका है, न टिक पाएगा। रावण की गति क्या हुई? कंस और शिशुपाल की गति क्या हुई? उन्हें बहुत गर्व था। वे समझ रहे थे कि मेरे से बढ़कर कोई नहीं। उनका मानना था कि जो मुझसे टकराएगा, वह मिट्टी में मिल जाएगा। कंस ने क्या विचार किया था? उसका विचार था कि जो कोई मेरी राह में बाधा खड़ी करे, उसका कत्लेआम।

बंधुओ! ध्यान रखना। पाप का घड़ा भरता है। घड़े में जितना समा सकता है उतना ही समाएगा। उससे ज्यादा भरेंगे तो घड़ा फूट जाएगा।

ज्यादा भरेंगे तो घड़ा एक दिन अपने आप ही फूट जाएगा। कंस का घड़ा भी फूटा। फूटा या नहीं फूटा? फूटा।

शिशुपाल का घड़ा फूटा या नहीं फूटा?

(लोग कहते हैं- फूटा)

किसी का भी घड़ा भरा नहीं रहा। कितना भी अहंकार रहा होगा, किंतु उनके घड़े का विनाश हुआ। उनके घड़े का विनाश हुआ या पूजनीय बना? विनाश हुआ।

जिसने सहा उसका घड़ा नहीं फूटा। उसका घड़ा पूजनीय बन गया।

शिशुपाल की माता शिशुपाल को लेकर कृष्ण वासुदेव के पास गई। वहाँ जाकर कृष्ण वासुदेव की गोद में उसको रख दिया और कहा बेटा, इसे संभालना। यह तुम्हारा ही भाई है। इसके 99 गुनाह माफ कर देना। 99 अपराध करे तो इसे क्षमा करना।

कृष्ण वासुदेव बोले बुआ, आप यह क्या बोल रही हो। यह मेरा भाई है। मैं 99 क्या, 100 गुनाह माफ करूँगा। पर जब 101 हो तो सीमा पार हो जाएगा। उसका परिणाम आएगा या नहीं आएगा? उसका परिणाम आएगा।

कुदरत में देर हो सकती है, किंतु अंधेरे नहीं हो सकता। यदि इतना विश्वास है तो किसी की प्रतिक्रिया करने का कोई मतलब नहीं है। कुदरत अपने आप देख लेगी। अपने आप समझ लेगी। हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, किंतु हमारा धैर्य इतना ठहरता नहीं है।

शांतिलाल ने अपने कर्तव्य का पालन किया कि मेरे भाई को मुझे पढ़ाना है, पढ़ाना है, और पढ़ाना है। उसने अपने भाई सुरेश को पढ़ाया। सुरेश ने शांतिलाल से उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर ली, किंतु दोनों के गुण में समानता नहीं थी। शिक्षा में सुरेश ने बाजी मारी तो संस्कारों में शांतिलाल ने बाजी मारी। दोनों के संस्कार में जर्मी-आसमां का अंतर था। शांतिलाल शांत स्वभाव का था, निराभिमानी था। अभिमान आ जाए तो शांत रहना मुश्किल है। अभिमान चुप नहीं बैठेगा। वो कसरत करेगा। कसरत का परिणाम होगा मन अशांत बनेगा। जिसका मन अभिमान में चूर रहेगा, उसका शांत बनना मुश्किल है। वह शांत नहीं बनेगा। अभिमान नहीं होगा, निराभिमान होगा तो शांत बना रहेगा। जहाँ शांति और निराभिमानता ये दो चीजें होती हैं, वहाँ बहुत सारे दूसरे सद्गुण विकसित होने लगते हैं। शांत स्वभावी को कुछ कहें, तो वह सहन कर लेगा। अहंकार नहीं होने से उसे चोट नहीं लगती। जिसमें अहंकार होता है उसको चोट लगती है।

शांतिलाल निराभिमानी था, शांत स्वभावी था। यह उसकी पहचान थी। सुरेश की पहचान जिद्दी, अक्खड़मिजाजी रूप थी। उसको कितना भी मान दे दो, कितना भी सम्मान दे दो फिर भी उसका मन राजी नहीं रहता था।

समझ में आई बात!

(लोग कहते हैं- हाँ भगवन्)

जिसमें अहंकार होता है उसको कितना भी मान-सम्मान दे दो वह कभी भी राजी नहीं होता। वह फूटे घड़े के समान होता है। जैसे फूटा घड़ा नहीं भरता वैसे ही उसका मन नहीं भरता। उसका मन राजी नहीं होता है। ये अभिमान की पहचान है। वह कहीं न कहीं नुख्स निकालेगा। वह चाहता है कि बस मेरा ही बोलबाला होना चाहिए। मेरी ही वाह-वाह होनी चाहिए। मेरा ही डंका बजना चाहिए। आपसे थोड़ी-सी चूंक हो गई तो वह नाराज हो जाएगा। कहेगा, यह कौन-सा तमाशा है।

ऐसे परिवार और समाज नहीं चलते। हम स्वयं नहीं चल पाएंगे। जिस दिन ठोकर लगेगी उस दिन नींद खुल जाएगी। आँख खुल जाएगी। तब मालूम पड़ेगा कि मैं क्या कर रहा था।

शूलपाणि यक्ष को भी ठोकर लगी। भगवान महावीर की सेवा में रहने वाले देव ने उससे कहा कि तुम ऐसे भगवान को कष्ट दे रहे हो, जो चक्रवर्तियों के भी चक्रवर्ती हैं और जिनकी सेवा में इंद्र रहने को तैयार रहते हैं।

शूलपाणि यक्ष घबरा गया कि इंद्र जिनके दास हैं, इंद्र जिनकी पूजा करते हैं उन्हें मालूम पड़ गया तो मेरी खबर ले लेंगे। उसने जान लिया कि ये बहुत महान् पुरुष हैं। मेरे इतने कष्ट देने पर भी ये छलके नहीं। इनका धैर्य नहीं दूटा। इनकी सहनशीलता कम नहीं पड़ी। अब मुझे इनसे क्षमा माँग लेना चाहिए। वह क्षमा माँगता है। भगवान की किसी से शत्रुता थी ही नहीं। उनके पास तो क्षमा ही क्षमा है।

बंधुओ! ऐसे तीर्थकर देव प्रभु महावीर का शासन हमें मिला। एक-एक घटना हमारे लिए प्रेरणास्पद है। यदि हम ले सकें तो बहुत कुछ है, किंतु हमारे लेने की तैयारी कितनी है। हम यदि ले सकें तो एक घटना से भी हमें बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है।

हम सोचें, विचार करें कि हमारी यतना की आँख, यतना के नयन कैसे खुलेंगे और कैसे तीर्थकर भगवान अजितनाथ के मार्ग को हम देखेंगे। हमने मार्ग पकड़ लिया, किंतु उसकी पहचान नहीं की। हमें मार्ग की पहचान करनी चाहिए। मार्ग की पहचान चरम चक्षु से नहीं होगी। यतना के नयनों से

उस मार्ग को खोजेंगे तो उस मार्ग की समझ हमारे पढ़े पड़ेगी, नहीं तो ऊपर-ऊपर सारी बातें रह जाएंगी। हम मंदिर के बाहर परिक्रमा करते रह जाएंगे। मंदिर के भीतर पहुँचने में समर्थ नहीं होंगे। हम समझने की कोशिश करें। यतना के नयन उद्घाटित करने का प्रयत्न करें। ऐसा करेंगे तो हम अपने आपको धन्य बनाने में समर्थ बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

17 जुलाई, 22

6. एक वंदना दुःख दूर निवारे

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...

संभवनाथ भगवान की सेवा सभी मिलकर करें। थोड़ी देर के लिए भी सम्यक् रूप से हम आराधना करते हैं तो वह थोड़ा समय हमारी आत्मा के लिए महत्वपूर्ण बन जाता है। बहुत बार देखा यह जाता है कि जब तक सामायिक करते हैं, तब तक हम शांति एवं समाधि भाव में रहते हैं। सामायिक पूरा होते ही हमारी रुचि बदल जाती है। हमारी प्रवृत्ति बदल जाती है। हमारा व्यवहार भी बदल जाता है।

इसका मतलब यह हुआ कि हमने अपने आपको साधा नहीं। हमने परमात्म-भक्ति में स्वयं को लगाया नहीं, अपितु हमने अपने साथ जबरदस्ती की। जबरदस्ती करने का मतलब है कि हमारी रुचि तो इधर नहीं है किंतु हमने उस मन को पकड़ने की कोशिश की। मैंने वैसे जीने का प्रयत्न-अभ्यास नहीं किया बल्कि जबरन मन को लगाने का प्रयत्न किया। उसको पकड़ने की कोशिश की।

एक बात ध्यान रखना, जबरदस्ती से पकड़े जाने वाली चीज जल्दी से हमारे हाथ में नहीं आती है। हम जितना उसको हाथ में लेने का प्रयास करेंगे, उतनी ही वो चीज हमसे दूर होती चली जाएगी।

संभवनाथ भगवान की सेवा योग्य तीन भूमिकाएं बताई गई हैं— अभय, अद्वेष और अखेद। जैसे मजबूत नींव पर महल खड़ा होता है, वैसे ही संभवनाथ भगवान की सेवा करने के लिए, उनकी भक्ति करने के लिए हमारी भूमिका मजबूत होनी चाहिए। भूमिका मजबूत होगी अभय, अद्वेष और अखेद से।

अभय का अर्थ होता है भय रहित अवस्था। अद्वेष का अर्थ होता है द्वेष रहित अवस्था और अखेद का अर्थ होता है खेद रहित अवस्था।

प्रश्न है कि भय, द्वेष और खेद क्या है ?

जिससे हमारा मन चंचल होता है, हमारी एकाग्रता खंडित होती है, हमारी स्थिरता भंग होती है, उसे भय कहा गया है। द्वेष उसे कहा गया है जिसमें हमारी अरुचि होती हो। जिसमें रुचि न हो। अरुचि होना द्वेष का लक्षण है। धार्मिक क्रियाएं करते-करते थक जाने को, थकावट महसूस होने को खेद कहा गया है। परिश्रम करने के बाद कुछ हासिल नहीं हो तो हमारे मन में खिन्नता आती है कि मैंने इतना धर्मानुष्ठान किया, किंतु मुझे क्या मिला ! कहा गया है 'खेद प्रवृत्ति हो करतां थाकीए' अर्थात् धार्मिक क्रिया करते हुए थकान की अनुभूति होना।

व्यापार में आदमी दिन-रात लग सकता है। उसे कभी खाना खाने की फुर्सत नहीं मिले तो भी थकान नहीं आती किंतु एक दिन भी पौष्टि-संवर, सामायिक जैसी धार्मिक क्रियाएं कर ले तो उसे थकान आ जाएगी। थकान उसको आएगी जिसको क्रिया में रुचि नहीं है। रुचिशील व्यक्ति को जल्दी थकान नहीं आएगी।

अतः देखना यह है कि हमारे भीतर ये तीन गुण हैं या नहीं हैं ? अभय, अद्वेष और अखेद, तीन गुण हमारे भीतर होना जरूरी है। ये तीन अवस्थाएं हमारे भीतर होंगी तो हमें भक्ति करने में आनंद आएगा। यदि यह तीन अवस्थाएं नहीं हैं तो भक्ति करने का आनंद हम नहीं ले पाएंगे। भक्ति करने का आनंद हमें नहीं मिलेगा। भक्ति की जड़ें गहरी नहीं हो पाएंगी। भक्ति की जड़ें जितनी गहरी होंगी, उतना ही हमारा आत्म विकास हो पाएगा।

हमारी धार्मिक क्रियाएं शुरू होती हैं, वंदना से। नमस्कार मंत्र से।

'नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं...'

सामायिक या अन्य कोई भी धार्मिक क्रिया करते हुए सबसे पहले हम वंदना करते हैं। 'तिक्खुतो आयाहिणं पयाहिणं' बोलते हैं। हम बोलते जरूर हैं 'तिक्खुतो आयाहिणं-पयाहिणं' किंतु इसमें आये हुए शब्दों के भावों पर हमारा ध्यान केंद्रित कम होता है, ऐसा अनुभव होता है।

मैं जहाँ तक सोचता हूँ, हमारी क्रियाएं औपचारिक होती हैं। उनके साथ जो भावनात्मक सम्बन्ध जुड़ना चाहिए, वह कम जुड़ पाता है। बिना

भावनात्मक सम्बन्धों के वह मिलना मुश्किल है, जो हम चाहते हैं। हमें जो प्राप्त होना चाहिए, वह प्राप्त होना मुश्किल है। इन क्रियाओं में गहराई व प्रगाढ़ता लानी है तो हमें क्रिया के साथ भावनात्मक अवस्था से जुड़ना होगा। किसी के साथ गहरा अटैचमेंट होता है तो हम उससे बहुत खुल जाते हैं और गहरा सम्बन्ध नहीं होता है तो हम उससे खुल नहीं पाते। उस स्थिति में कहीं न कहीं अटकाव आएगा। पर जिससे प्रगाढ़ मित्रता होती है, उसके साथ व्यक्ति को खुलने में देर नहीं लगती है।

‘तिक्खुत्तो, आयाहिणं, पयाहिणं’ का तो सम्बन्ध विधि से है। यह उसका संकेत है कि हमारी वंदना कैसी होनी चाहिए। वंदना करते हुए हम हाथ जोड़ते हैं और आवर्तन देते हैं।

कभी आपने सोचा कि आवर्तन क्यों देना, किसलिए देना? कभी यह विचार आया कि आवर्तन किस प्रकार दिया जाता है, परिक्रमा क्यों दी जाती है? किसलिए दी जाती है?

ऐसा माना जाता है कि पहले वंदना की विधि कुछ और थी। आज हम आवर्तन दे रहे हैं। पहले परिक्रमा की जाती थी। ‘तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं’ यानी तीन बार दक्षिण तरफ से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा देना। वंद्य के चारों तरफ तीन बार घूमना।

एक पुस्तक में यह भी पढ़ने में आया कि अवसर हो तो तीन बार घूमना अन्यथा अपने स्थान पर खड़े रहकर तीन बार घूम लेना। वर्तमान में हमारे आवर्तन की विधि चल रही है, उसमें हम घूमते नहीं हैं। अपने हाथों को तीन बार घुमा लेते हैं। विचार यह करना है कि तीन बार परिक्रमा देने के पीछे कारण क्या है? हाथ जोड़ने का कारण क्या है?

इस पर जब विचार करेंगे या हमारी दृष्टि जाएगी तो हम थोड़े गहरे में उतरेंगे। जितना गहराई में जाएंगे, उतनी ही भावना की विशुद्धि बनेगी। परिक्रमा, परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ने का एक उपक्रम है। किससे सम्बन्ध स्थापित करने का। जोड़ने का उपक्रम है? परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने का।

मोबाइल पर बात करना चालू करते हैं तो क्या बोलते हैं?

मोबाइल पर बात शुरू करते ही आप ‘हेलो’ बोलते हो। हेलो,

सम्बन्ध जोड़ने की प्रक्रिया है। किसलिए हेलो बोलते हो ? सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही बोलते हो ना कि सामने वाला सुनने के लिए तैयार हो जाए ? एक शब्द हमने चुन लिया हेलो। इससे सामने वाला तैयार हो जाता है सुनने के लिए। शादी-विवाह में अग्रि के चारों तरफ परिक्रमा लगाने की प्रक्रिया होती है। वह प्रक्रिया इसलिए होती है कि एक-दूसरे का परस्पर सम्बन्ध जुड़े। वैसे ही यह माना जाता है कि परिक्रमा, परमात्मा से जुड़ने का एक उपक्रम है। परिक्रमा के माध्यम से हम मानसिक रूप से तैयारी कर लेते हैं कि मुझे परमात्मा से सम्पर्क स्थापित करना है। उसके लिए तीन बार परिक्रमा की जाती है। फिर वंदना-नमस्कार किया जाता है। इसके बाद बैठकर पर्युपासना करने की बात आती है।

पर्युपासना का अर्थ होता है मन, वचन, काया से उसमें लीन होना। ‘तिकबुततो आयाहिणं पयाहिणं’ में तीन बार वंदना करने की बात नहीं कही। हमने तीन बार वंदना प्रारम्भ की है। तीन बार परिक्रमा करने की बात है। तीन बार परिक्रमा नहीं दे पाते हैं तो तीन बार आवर्तन देने की परम्परा चालू है। इसलिए आवर्तन देना, उसके बाद तीन बार वंदना करना जरूरी नहीं है पर वर्तमान में यह विधि चल रही है।

जैसे मंदिर के चारों ओर फेरी लगाकर सामने आकर हाथ जोड़कर खड़े होते हैं या बैठकर भक्ति करते हैं, लगभग वैसा ही विधान है तिकबुतो का पाठ। तीन बार आवर्तन देने के बाद हम पर्युपासना करें। पर्युपासना में हाथ जोड़े हुए अपना मन उनमें लीन करते हैं। काया को स्थिर करते हैं और भक्ति में स्वर उच्चरित करते हैं। सक्कारेमि सम्माणेमि अर्थात् मैं सत्कार करता हूँ, सम्मान करता हूँ।

हमारे मन में सामने वाले के प्रति बहुमान का भाव नहीं होगा, भक्ति की भावना नहीं होगी तो हम उनको सम्मान नहीं दे सकते। सम्मान देने का अर्थ है कि मैं उनको अपने से श्रेष्ठ मान रहा हूँ। कोई हमारे से उच्चतर होता है तो हम उसको सम्मान देते हैं।

उच्चता का मापदंड क्या है ?

‘कल्पाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं।

ये चार गुण उच्चता के प्रतीक हैं। ‘कल्प्य’ का अर्थ होता है आनन्द

और ‘कल्पाण’ शब्द का अर्थ होता है आनन्द देने वाला। यानी जिनका सान्निध्य सदा आनन्दकर होता है।

नीति में कहा गया है-‘साधूनां दर्शनं पुण्यम्’ अर्थात् साधुओं के दर्शन पुण्यकारक होते हैं।

पुण्य का उपार्जन कब होता है? कोई पुण्य कर्मों का उपार्जन करना चाहे तो उसे क्या करना होगा?

खाली बात सुनते ही रहोगे या कुछ बोलोगे भी? क्या करना पड़ेगा बोलो?

आचार्य उमास्वाति कहते हैं ‘शुभस्य पुण्यम्’ यानी पुण्य कर्मों का उपार्जन मन, वचन, काया को शुभता में स्थिर करने से होता है। अतः शुभ कार्यों में उनको प्रवृत्त करना होगा। हमने उन्हें शुभ कार्यों में लगा दिया तो उससे पुण्य का बंध होगा। जैसे टूँटी को एक तरफ घुमाने से पानी आने लगता है और दूसरी तरफ घुमाने से पानी आना बंद हो जाता है, वैसे ही शुभ कर्म चालू होता है तो पुण्य का बंध, पुण्य कर्मों का उपार्जन प्रारम्भ हो जाता है।

साधुओं के दर्शन पुण्यकारक इसलिए हैं क्योंकि साधु के दर्शन करते हुए हमारे मन में शुद्ध भाव का प्रवाह प्रवाहित होता है। साधुओं के दर्शन करने से हमारे मन में शुभ भाव जागृत होते हैं।

साधुओं के दर्शन करने से हमारे मन में शुभ भाव जगते हैं या द्वेष की भावना जगती है?

शुभ भाव जगते हैं।

द्वेष भावना भी किसी-किसी की जगती है। नहीं जगने जैसी बात नहीं है, किन्तु मुख्य रूप से साधुओं का दर्शन जीवन को सुकून देने वाला होता है। हमें आहलादित करने वाला होता है। मैं जहाँ तक सोचता हूँ, द्वेष कैसे पैदा होता है यह भी आपने कई बार सुना होगा।

गौतम स्वामी विचरण करते हुए पथार रहे थे। एक किसान भरी दोपहरी में हल चला रहा था। उसने जैसे ही गौतम स्वामी को देखा, हल छोड़कर भागता हुआ उनकी ओर गया। उनके दर्शन किए और हाथ जोड़े। बड़ी भक्ति से उनके दर्शन किए। उसकी शक्ल-सूरत को देखकर गौतम स्वामी ने

संक्षिप्त उद्घोषण दिया। उद्घोषण सुनकर उसने कहा कि मुझे तो बस आपका ही सान्निध्य चाहिए। अब मैं साधु बनना चाहता हूँ। वह साधु बन गया।

गौतम स्वामी पधार रहे थे भगवान महावीर की तरफ। गौतम स्वामी ने उसके सामने अपने गुरु की महिमा का बखान किया। उसको बताया कि मेरे गुरु कैसे हैं। जैसे ही वह समवसरण या भगवान के विराजने के स्थान के नजदीक आया कि उसके मन में हलचल हुई। भगवान को देखते ही उसके मन में द्वेष उत्पन्न हुआ। उसने ओघे-पातरे छोड़े और कहा कि मैं जा रहा हूँ, मुझे यहाँ नहीं ठहरना।

क्यों चला गया वह? उसके मन में द्वेष के भाव जग गए? क्यों जगा द्वेष भाव?

उसके मन में द्वेष आने का भी कारण है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। किसी के पूर्व कर्मों का उदय होता है तो साधु के दर्शन से भी उसके मन में द्वेष पैदा हो जाता है। उसके मन में द्वेष पैदा होने का कारण था कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में भगवान महावीर की आत्मा ने जिस सिंह को चीरा था, उस सिंह का जीव वही किसान था। उसने भगवान महावीर को देखा तो उसके मन में द्वेष जग गया। उस समय जब उसे चीरा था गौतम स्वामी भगवान के सारथी थे। गौतम स्वामी ने उसको सांत्वना दी। इससे उनके प्रति राग हो गया। इसलिए किसान ने जैसे ही गौतम स्वामी को देखा तो उसके मन में प्रेम भाव जग गया और भगवान के प्रति द्वेष। इस तरह किसी के मन में द्वेष जग सकता है, किंतु सामान्यतया साधुओं के दर्शन पुण्यकारक होते हैं। हृदय को आह्लादित करने वाले होते हैं।

‘कल्पाण’ यानी आप कल्याण करने वाले हैं। आनन्द देने वाले हैं।

आनन्द की परिभाषा क्या है? जिसमें राग और द्वेष नहीं है, वह आनन्द है। आनन्द आत्मीय भाव से प्रकट होता है। मन, वचन, काया से शुभ की प्रवृत्ति होती है। आनन्द की प्रवृत्ति आत्मा से होती है। अनन्य भाव जब हमारे भीतर जगता है, उस समय हम आनन्द में होते हैं। अनन्य भाव का मतलब आत्मरमण होता है। इसलिए कहा गया कि आप कल्याणकारी हैं, कल्पाण हैं, कल्याण करने वाले हैं। आनन्द देने वाला कोई होता नहीं है। अपनी

भावना से हम अपने आनन्द को प्रकट करने वाले होते हैं।

साधु ने दिया क्या कभी आनन्द, कि यह ले आनन्द?

साधु कभी देते नहीं आनन्द किंतु उनके दर्शन से सहज ही हममें आनन्द की वर्षा होने लगती है। हम अपने भावों से आनन्दित हो जाते हैं।

मंगल का अर्थ होता है ‘मां पापं गालयति इति मङ्गलम्’ यानी जो मेरे पापों को गला दे। साधु हमारे पापों को कैसे गलाता है? जब हमारे भाव विशुद्ध होते हैं तो हमारे पाप अपने आपसे हमारे से दूर होते हुए भाग जाते हैं। संभवनाथ भगवान की स्तुति में श्री आनन्दघन जी कहते हैं – ‘परिचय पातिक-घातक साधुशुंरे अकुशल अपचय चेत्’ अर्थात् साधु से किया गया परिचय पाप का घात करने वाला होता है।

कैसा पाप?

अनमनस्क होकर, अशुभ मन से, अकुशल चित्त से आवेग में आकर, बुरे ध्यान में जाकर जिन कर्मों का उपार्जन किया गया है, वैसा पाप।

अकुशल अपचय चेत्

अकुशल किसे कहा गया है?

मन के अशुभ होने को, बुरे ध्यान में होने को अकुशल कहा गया है।

अकुशल मन से किये गये पापों का नाश साधु के परिचय से होता है।

साधु को परिचय करना या साधु का परिचय करना?

हम चाहते हैं कि म.सा. हमारा परिचय करें।

हमारी मनोकामना रहती है या नहीं रहती कि मुनिजन हमसे परिचय करें?

(लोग कहते हैं- रहती है)

बहुतों की यह मनोकामना रहती है कि म.सा. हमें पहचान जाएं। हमारे गोत्र का नाम ले लें। गाँव का नाम ले लें तो वे खुश हो जाते हैं कि म.सा. ने हमें पहचान लिया।

म.सा. ने आपको पहचान लिया यह खुश होने की बात नहीं है। बात यह है कि आपने अपने आपको पहचाना या नहीं? म.सा. के पहचानने से

आपका कल्याण नहीं होगा। आपका कल्याण होगा अपने आपको पहचाने से। अपने आपको पहचानेंगे तो हमारी निर्जरा होगी और हमारा कल्याण होगा। यदि हम अपने आपकी पहचान नहीं कर रहे हैं, तो साधु हमारी कितनी भी पहचान कर ले, उससे हमारा कल्याण नहीं होगा। इसलिए कहा गया है कि तुम साधु का परिचय करने का मतलब उसकी जाति या उसका पता पूछना नहीं है।

‘जात न पूछें साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान’

साधु की पहचान किससे होती है ?

आचार्य श्री श्रीलाल जी म.सा. फरमाया करते थे-

ईर्या-भाषा एषणा, ओलखजो आचार

गुणवंत साधु देखने, वन्दजो बारंबार।

साधु की पहचान इससे होगी कि वह ईर्या समिति में कितने लीन हैं। किस प्रकार से चल रहे हैं, उनकी भाषा समिति कैसी है। वे निर्वद्य बोलते हैं या सावद्य बोलते हैं। भाषा से, चाल से आदमी की पहचान हो जाती है। हाव-भाव से आदमी की पहचान हो जाती है। साधु की पहचान ईर्या, भाषा, एषणा से हो जाती है।

आज-कल लोग कहते हैं कि म.सा. उस समुदाय के संत, उस समुदाय के साधु को वंदना-नमस्कार करें या नहीं? पूछ लेते हो ना कभी?

जवाब में मैं तो कहता हूँ प्रतिक्रमण याद है क्या?

बहुतों को याद है, पर बहुतों को याद नहीं होगा। पाँचवीं भाव वंदना में हम क्या बोलते हैं, कितने साधु-संतों को वंदना-नमस्कार करते हैं?

पृथक्त्व हजार करोड़, अर्थात् अनेक हजार करोड़।

महाविदेह में एक-एक तीर्थकर के पीछे एक-एक अरब साधु हैं। हम पृथक्त्व हजार करोड़ साधुओं को उस समय वंदना करते हैं। यहाँ पर किस एक सम्प्रदाय में पृथक्त्व हजार करोड़ साधु हैं?

गुणवान् साधु को देखकर हमारा रोम-रोम पुलकित होना चाहिए। मन हर्ष से विभोर होगा और मन पुलकित होगा तो रोम अपने आप पुलकित हो

जाएंगे। जिस समय हमारे मन में ऐसी पुलकित भावना आती है, उस समय हम बहुत सारे कर्मों की निर्जरा करने वाले होते हैं, किंतु ऐसी अवस्था हर वक्त नहीं आया करती।

‘सदा न कोयल बोलती, सदा न खिलते फूल’

जैसे न सदा कोयल बोलती है और न सदा फूल ही खिलते हैं, वैसे ही इस प्रकार का रसायन भी हर वक्त नहीं आता। कभी-कभी ऐसा रसायन मन में आ जाता है। जिस समय आता है, उस समय आनन्द की अनुभूति होती है।

आनन्द की अनुभूति साध्वी मृगावती को हुई थी। मृगावती, भगवान महावीर के चरणों में पहुँची और खो गई। उसका मन इतना पुलकित हो गया कि उसे समय का भी भान नहीं रहा। मीरा का नाम आपने सुना होगा। उनकी भक्ति बड़ी प्रसिद्ध है। मीरा भक्ति में इतनी डूब जाती थीं कि उसका मन नृत्य करने लगता। ये भक्ति का विशेष रूप है। बहुत कम बार हमें अपने जीवन में ऐसे अवसर प्राप्त होते हैं जब हम भक्ति के भावों में इतने गदगद हो जाते हैं कि उस समय भीतर रही चीज कुछ दिखती ही नहीं है। वे क्षण हमारे बहुत सारे पापों को काटने वाले होते हैं।

अतः ‘मंगल’ यानी आप मंगलकारी हैं। पापों को नष्ट करने वाले हैं। ‘देवयं’ का अर्थ क्या है? दिव्यता। दिव्यता का अर्थ क्या है? दिव्यता का अर्थ होता है चमकने वाला। आप इस काया के दर्शन नहीं कर रहे हैं। शरीर औदारिक है, काला है या गोरा। जरूरी नहीं है कि सभी गोरे हों। जरूरी नहीं कि सभी काले हों। यह शरीर भिन्न-भिन्न वर्ण का हो सकता है। मैं शरीर की पूजा-अर्चा नहीं कर रहा हूँ। मैं ज्ञान-दर्शन-चारित्र की चमक का अनुभव कर रहा हूँ। मैं रत्नत्रय की आराधना से दिव्यता प्राप्त चैतन्यमय काया के दर्शन कर रहा हूँ।

साधुओं के प्रति आकर्षण का कारण क्या है?

ज्ञान-दर्शन और चारित्र ही आकर्षण का कारण है। एक जगह प्रश्न है कि अमुक-अमुक जगह के मंदिरों के प्रति लोगों का आकर्षण उतना क्यों होता है? इसके समाधान के रूप में बताया गया कि मूर्ति की प्रतिष्ठा के समय गर्भ गृह में अनेक प्रकार के रत्न डाले जाते हैं। उन रत्नों का सम्बन्ध व्यक्ति से जुड़ा होता है। ज्योतिष में कई प्रकार के रत्नों की बात बताई गयी है। उन रत्नों

के अनुकूल प्रभाव से आदमी कभी सुखी हो जाता है तो प्रतिकूल प्रभाव में दुखी हो जाता है। गर्भगृह में डाले गए रत्न आकर्षण के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। वे विशेष आकर्षण जगाते हैं। उसी प्रकार साधु के प्रति आकर्षण का कारण उनका ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। आगे शब्द आया है ‘चेइय’ यानी आप ज्ञान रूप हो। ज्ञान रूप का मतलब है ‘तू सो प्रभु प्रभु सो तू है’ अर्थात् आत्मा और परमात्मा का एक रूप है।

ऐसी ज्ञानमय आत्मा बन जाए, भक्ति में लीन हो जाए तो कर्मों की निर्जरा होगी या नहीं होगी ? पुण्य का उपार्जन होगा या नहीं होगा ?

भगवान से पूछा गया, कि भगवान वंदना करने से जीवों को किस फल की प्राप्ति होती है तो भगवान ने बताया कि अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है। और भी बहुत सारे लाभ बताए। संतों का दर्शन करते समय हम हाथ जोड़ते हैं। हाथ जोड़ते हैं तो पीछे का भाग मोटा और आगे का भाग पतला होता है। हाथ जोड़कर आप अनुभव कर लें। ऊपर का पतला भाग हमारे भावों को उद्धर्वगमी बनाता है।

संतों का दर्शन करते हैं तो वे हाथ ऊपर उठाते हैं। वे कुछ देते नहीं, किंतु हम बहुत कुछ पा लेते हैं। कैसे पा लेते हैं ?

हमारी वंदना की तेजस्विता ऊँचाई पा लेती है और संतों के हाथ ऊपर करने से वापस रिवर्स हो जाती है। हाथ जोड़ने से ऊपर की ओर उठी हमारी श्रद्धा, हमारी भक्ति संत के हाथ से टकराकर रिवर्स आती है। रिवर्स से जो हमें शक्ति मिलती है उससे आनन्द की अनुभूति होती है। गुरु के आशीर्वाद से ‘दुःख दोहग दूरे टल्या रे...’ यानी दुख और दुर्भाग्य दोनों दूर हो जाते हैं। एक छोटी-सी वंदना विधि से हमारी साधना प्रारम्भ होती है। उस पर भी यदि हमारा रुझान बनता है तो बहुत बड़ा लाभ हम अर्जित कर सकते हैं।

शांतिलाल की कहानी चल रही थी।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

सुशील और संस्कारी का अर्थ क्या होता है ?

जिसका चारित्र अच्छा होता है, उसको सुशील कहते हैं। शील का अर्थ होता है अनेक प्रकार के नियम-ब्रत धारण करने वाला। सुशील का अर्थ होता

है विशेष प्रकार के नियम और ब्रतों का पालन करने वाला। स्वीकार किये गये ब्रत-नियमों का सम्यक् पालन करने वाले को भी सुशील कहते हैं। आशा, शांतिलाल की पत्नी का नाम था। आशा बहुत सुशील और संस्कारी थी। संस्कार में सारी बातों का समावेश हो जाता है। आशा संस्कार के साथ चल रही थी।

अच्छे संस्कारों के कारण उसके मन में कभी भी निराशा नहीं आती थी। निराश नहीं होना बहुत बड़ी बात है। बहुत अच्छी बात है। घर में साधनों की कमी होती है तो बहुत बार क्लेश हो जाता है। पति-पत्नी, सास-ससुर में झगड़े हो जाते हैं। सम्पन्नता की अपेक्षा विपन्नता में झगड़े जल्दी चालू होते हैं। पत्नी कहने लगती है कि इस घर में आकर मुझे क्या मिला।

‘न कभी ताता खाया और न कभी राता पहना’

ताता खाया तो क्या? न कभी खाया तो क्या? और राता पहना तो क्या और न पहना तो क्या? खाना जीवन निर्वाह के लिए होता है और वस्त्र लज्जा निवारण के लिए, पर ये छोटी-छोटी बातें हैं। ये छोटी-छोटी बातें व्यक्ति को विपन्नता में निराश कर देती हैं। फिर मन में एक प्रकार की ग्रंथि बन जाती है। जब वह ग्रंथि नहीं खुल पाती है तब झगड़े चालू हो जाते हैं।

राजा भोज के समय की बात है। एक ब्राह्मण उनके द्वार पर आया। द्वार पर उसे रोका गया कि कहाँ जा रहे हो, किससे मिलना है?

ब्राह्मण ने कहा, राजा भोज से मिलना है।

उससे कहा गया कि राजा भोज से मिलने के लिए तुम्हारे जैसे बहुत लोग आते हैं।

ब्राह्मण ने कहा, मैं राजा भोज का मौसेरा भाई हूँ। मैं उसकी मौसी का बेटा हूँ।

द्वारपाल ने सोचा, मौसेरा भाई और ऐसा हाल!

फिर भी बात राजा भोज तक पहुँचाई गई।

राजा ने कहा, उनको सम्मान सहित ले आओ।

उसके पहुँचते ही राजा ने कहा, मौसी का क्या हाल है?

उसने कहा अभी तक तो जीवित थी, हाल-चाल ठीक थे किंतु आपके दर्शन होते ही उसकी मौत हो गई।

राजा ने पूछा और क्या चल रहा है?

उसने कहा रोज वर्षा हो रही है।

उसका कथन राजा समझ गए। रोज वर्षा का मतलब था कि घर में रोज लड़ाई-झगड़ा, क्लेश होता है। वचन बाणों की वर्षा होती है। इधर से सास बोलती है तो उधर से बहू बोलती है। रोज वाक् बाणों की वर्षा की बौछार चल रही है। कभी रुकती ही नहीं।

राजा ने कहा कि देखो भाई मेरी मौसी का स्वर्गवास हुआ, उसका दाह संस्कार ठाट-बाट से होना चाहिए। राजा ने मंत्रियों की ओर संकेत करके कहा कि इसको एक हजार सोने की मुद्राएं दे दी जाए।

वह गरीबी की हालत में था। उसने कहा कि अभी तक माँ जीवित थी, आपके दर्शन होते ही मर गई। गरीब और अमीर दो बहनें हैं। राजा, अमीर का बेटा है और ब्राह्मण गरीब का बेटा है। दोनों मौसेरे भाई हो गए या नहीं? हो गए।

कहते हैं कि राजा का दर्शन हो जाए तो भाग खुल जाए। राजा ने कहा कि मेरी मौसी का दाह संस्कार ठाट-बाट से होना चाहिए। उसको सोने की मुद्राएं दे दी गई। कहने का मतलब है कि विपन्नता की स्थिति में द्वेष होता है, किंतु आशा ऐसी संस्कारी थी कि उसके मन में कभी किसी के प्रति द्वेष नहीं आता था। मन में कभी निराशा नहीं आती थी। कभी शांतिलाल का मन उदास होता तो वह उसे उत्साहित करती हुई कहती कि ऊँची-नीची परिस्थितियाँ आती रहती हैं, इनसे क्या घबराना।

यह जीवन है। जीवन में सारी अवस्थाएँ आती हैं। सूर्य को ही देखें। सूर्योदय के समय कुछ अलग आभा रहती है, दोपहर में कुछ अलग आभा रहती है और शाम होते-होते उसकी चमक फीकी पड़ जाती है। यह अवस्था चलती रहती है। बदलती रहती है।

आशा कभी नाराज नहीं होती। सास-ससुर की सेवा करना उसने अपना कर्तव्य मान रखा था। देवर का भी ध्यान रखती थी। कई लोग बड़ों की सेवा तो खूब करेंगे पर छोटों को लताड़ेंगे। यह सच्ची सेवा नहीं होती। यदि आप खाली सास-ससुर का ध्यान रखते हैं, देवर का ध्यान नहीं रखते, तो

सास-ससुर के मन में पीड़ा होगी।

पीड़ा होगी या नहीं होगी ? पीड़ा होगी।

आशा किसी को पीड़ा नहीं होने देती। वह अपने कर्तव्य का पालन करती है। कहते हैं ‘आशा अमर धन है।’ सास-ससुर की सेवा करने के लिए आशा तत्पर रहती है। सास-ससुर की सेवा के लिए बहुत बड़ी आवश्यकता होती है प्रज्ञा की, प्रतिज्ञा की।

इंगियागार संपन्ने, से विणीए ति बुच्छई।

किसी के चित्त को जानकर उसके अनुकूल सेवा करना बहुत बड़ी सेवा है। खिलाना-पिलाना ही सेवा नहीं होती। कोई भी खिला-पिला सकता है, किंतु वचनों से यदि हमने कलेजा पूरा ठंडा नहीं किया तो सेवा क्या होगी ! बहुत कुछ बोलने की बातें हो सकती हैं, किंतु अभी अपने पास इतना समय नहीं है। समय के साथ क्या स्थिति रहती है, आगे की बात है, किंतु इतना अवश्य है कि घर में एक संस्कारी व्यक्ति होता है तो सारे घर को संस्कारी बनाने में प्रयत्नशील होता है और यदि कपूत पैदा हो जाता है तो घर की दशा ही बिगाड़ देता है।

हम प्रेरणा लें। कहानी केवल सुनने के लिए नहीं होती। उससे कुछ न कुछ प्रेरणा लेने की आवश्यकता होती है। हम भी विचार करें। हमारे जीवन में कोई भी चीज असंभव नहीं होनी चाहिए। सब संभव है। हम यदि प्रयत्न करेंगे तो साधु बनना भी संभव है।

किसके लिए संभव है ?

(लोग कहते हैं- हमारे लिए संभव है)

खाली हो-हल्ला करने के लिए या किसके लिए ?

यहाँ कुशती नहीं लड़नी है। अपने आपको शांत भाव से साधना है। साधने का मन बनेगा तो हमारे भीतर भी वह शक्ति है कि हम अपने आपको साध सकते हैं। हमारे भीतर साधने का सामर्थ्य है। हम अपने सामर्थ्य को जगाने का प्रयत्न करें। ऐसा प्रयत्न करेंगे तो धन्य बनेंगे। इतना ही कहकर विराम।

7. विराम नहीं, अर्द्ध विराम

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...

कई बार व्यक्ति सोच लेता है कि यह कार्य तो असंभव है। यह कार्य मैं नहीं कर पाऊंगा। ऐसा सोचने वालों के लिए अमोघ उपाय है कि वे अपनी बुद्धि का ताला बंद ना करें। वे अपनी सोच पर विराम ना लगाएं। अपनी सोच को गतिशील बनाए रखें। बुद्धि का दरवाजा खुला रखें।

सोच गतिशील होगी तो सारे कार्य संभव हैं। असंभव कुछ भी नहीं है। जो व्यक्ति से असंभव है वो तीर्थकर देवों के द्वारा भी असंभव है। जैसे भवी को अभवी बनाना और अभवी को भवी बनाना तीर्थकर देवों के भी वश की बात नहीं है। तीर्थकर देव भी अभवी को भवी नहीं बना सकते।

उदाहरण के रूप में हम बोलते हैं कि कौए को कितना भी रगड़-रगड़ के नहला दें पर काला कौआ कभी सफेद नहीं होगा। शायद वह कभी सफेद हो भी जाए, किसी प्रयत्न से उसको सफेद किया भी जा सके पर अभवी कभी भी भवी नहीं बन सकता। अभवी का भवी बनना असंभव है। यह कभी संभव नहीं होगा। किसी से भी संभव नहीं होगा।

जो कार्य किसी के द्वारा संभव हो सकता है, वह मेरे द्वारा संभव क्यों नहीं हो सकता ? जो कार्य किसी और के द्वारा संभव है और वह मेरे से नहीं हो पा रहा है, तो इसका मतलब है कि मैंने अपनी सोच पर ताला लगा दिया। पूर्णविराम लगा दिया। पूर्णविराम लगाने का मतलब है कि वाक्य पूरा हो गया। अपनी सोच पर हम पूर्णविराम नहीं लगाएं। अर्द्ध विराम लगा सकते हैं। उसका अर्थ होगा कि अभी बाकी है, अभी और श्रेष्ठ सोचना है। ऐसा सोचेंगे तो निश्चित रूप से कोई न कोई परिणाम मिलेगा।

‘संभव देव ते धुर सेवो सवेरे।’ सवेरे का अर्थ होता है कि सभी

अर्थात् संभवनाथ भगवान की सेवा सभी करें।

सेवा का क्या परिणाम होगा ? सेवा से लाभ क्या होगा ?

कोई व्यक्ति तीर्थ यात्रा पर क्यों जाता है, गंगा-यमुना में स्नान क्यों करता है ?

वह ऐसी मान्यता लेकर चलता है कि गंगा में नहाऊंगा तो मेरे पाप धुल जाएंगे। यह व्यक्ति की सोच है, किंतु हम विचार करें कि क्या यह हो सकता है। गंगा का पानी हमारे शरीर को स्वच्छ कर सकता है। यमुना का पानी हमारे शरीर पर लगे हुए मैल को दूर कर सकता है, पर पाप हमारे शरीर ने किए या मेरी आत्मा ने किए ? आत्मा ने किए।

पाप के पुद्रल शरीर पर लगे हुए हैं या आत्मा पर ? आत्मा पर लगे हुए हैं।

गंगा के पानी से आत्मा पर लगे हुए कर्म, पाप हटेंगे क्या ? नहीं हटेंगे।

आत्मा तक गंगा का पानी पहुँचेगा ? नहीं पहुँचेगा।

आत्मा तक गंगा का पानी पहुँचेगा, पर उसके लिए हमें दूसरी गंगा हूँढ़नी पड़ेगी।

पुराने संत व्याख्यान से पहले एक गीत गाया करते थे-

‘वीर हिमाचल से निकसी गुरु गौतम के श्रुत कुण्ड ढरी है’

बहुत भावपूर्ण गीत है- ‘वीर हिमाचल से निकसी ।’

कहाँ से निकली गंगा ?

(लोगों ने कहा- हिमालय से निकली)

जैसे गंगा नदी हिमालय से निकली, वैसे ही श्रुत गंगा वीर हिमालय से निकली। भगवान महावीर से निकली। आप अभी जो शास्त्र सुन रहे हैं, वह किसकी देन है ?

भगवान महावीर की देन है।

हम जो शास्त्र सुन रहे हैं, वह भगवान महावीर की देन है। भगवान महावीर ने अर्थ रूप देशना फरमाई। गणधरों ने उसको शब्दों में बाँधा, शब्दों में गूँथा, ताकि उसको बहुत अच्छी तरह से याद रखा जा सके। उस पर बहुत

अच्छी तरह से विचार कर सकें। आज जो शाब्दिक रचना हमारे सामने है, वह गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की है और भाव रूप श्रुत तीर्थकर देवों की देन है।

‘वीर हिमाचल से निकली, गुरु गौतम के श्रुत कुण्ड ढरी है’

वीर हिमाचल निकली वह श्रुतगंगा गौतम स्वामी के कान रूपी कुण्ड में गिरी, फिर वहाँ से निकली। ऐसा मानते हैं कि गंगा जब हिमालय से निकली, तो बहुत उफनती हुए निकली थी। कहते हैं कि लोगों ने देवों की उपासना की तो शंकर जी आए। शंकर जी ने अपनी जटा खोल दी। अपनी जटा में सारे पानी को समेट लिया और फिर धीरे से उसको निकाला। यह किंवदंती है। वैसे ही यहाँ बताया गया कि भगवान रूपी हिमालय से निकली यह गंगा गौतम स्वामी के कानों में गिरी, गणधरों के कानों में गिरी और वहाँ से मुँह के माध्यम से प्रवाहित हुई और हम तक आ गई है।

‘मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता सब दूर करी है।’ वह गंगा मोह रूपी महाचल को भेद कर चली। वह श्रुत गंगा हमारे पापों का प्रक्षाल करने में समर्थ है। तीर्थ करना इधर-उधर घूमना है। वह मनोरंजन हो सकता है। हो सकता है कि कुछ पुण्यकारक बन जाए, किंतु कर्मों की निर्जरा, आत्मा की सिद्धि श्रुत गंगा से संभव है। द्रव्य गंगा से पापों का प्रक्षाल नहीं होगा, किंतु श्रुत गंगा की आराधना से हमारे पापों का प्रक्षाल होना संभव है। निश्चित है।

भगवान की वाणी को सुनना है तो कैसे सुनना ?

सुनने के भिन्न-भिन्न तरीके होते हैं। कोई जिज्ञासा से सुनता है, कोई श्रद्धा से तो कोई यद्वा-तद्वा सुनता है। उसके लिए श्रीमद् नन्दी सूत्र में तीन प्रकार की परिषद् बताई गई है। जाणिया, अजाणिया और दुव्वियह्वा-दुर्विदाध। एक ज्ञानियों की सभा होती है। उनको समझाना आसान होता है। अज्ञानियों को समझाना भी कठिन नहीं है, किंतु जो अपने आप में ज्ञानी बनकर चल रहा होता है, जो अपने आपको ज्ञानी समझता है, उसको समझाना बहुत दुष्कर है। दुष्कर इसलिए है, क्योंकि वह मानता है कि वही ज्ञानी है, बाकी सब उसके आगे शून्य हैं। उसके आगे कुछ भी नहीं है। ऐसा ज्ञान, वस्तुतः ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के लिए सदा दरवाजा खुला रहना चाहिए, क्योंकि हमारा ज्ञान क्षयोपशमिक है। क्षयोपशमिक ज्ञान और क्षायिक ज्ञान में

क्या फर्क होता है और औदायिक ज्ञान क्या होता है? उदय भाव से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती अपितु अज्ञान अविज्ञान अवस्था होती है।

मेरी आँखों के सामने कोई पर्दा लगा दे, कोई पट्टी बाँध दे तो क्या मुझे बाहर दिखेगा?

कुछ नहीं दिखेगा।

किसी अलमारी के कपाट लकड़ी के हैं और बंद हैं तो उस अलमारी के भीतर क्या है, हम बाहर खड़े-खड़े जान सकते हैं? नहीं जान सकते।

मैंने अलमारी में कोई चीज रखी है तो मुझे मालूम है कि वो वैसी है, किंतु मैंने नहीं रखी तो मुझे क्या मालूम होगा? किसी दूसरे के द्वारा रखी गई और दरवाजा बंद है तो क्या हम जान सकते हैं कि उसके भीतर क्या है?

नहीं जान सकते।

उसको हम नहीं जान सकते। वैसे ही औदयिक भाव काष्ठ निर्मित कपाट के समान होते हैं जिसके कारण से हमें पता नहीं चलता कि भीतर क्या है। क्षयोपशमिक, लाइब्रेरी की अलमारी की तरह होती है। मिठाई के शो-केस की तरह होती है। आभूषणों के शो-केस की तरह होती है। इन सबका कपाट काँच का होता है, जिससे इनमें रखी हुई पुस्तक, मिठाई और आभूषण बाहर से दिखाई देते हैं। किताबों की अलमारी में काँच लगा होने से आप पढ़ सकते हो कि भीतर कौन-कौनसी पुस्तकें हैं। अलमारी खोलने की जरूरत नहीं है। बिना अलमारी खोले पुस्तक का नाम पढ़ सकते हो। जान सकते हो कि कौन-कौनसी पुस्तकें हैं। जिससे हम जान रहे होते हैं, वह होता है क्षयोपशमिक ज्ञान।

क्षायिक ज्ञान का मतलब है कि काँच हट गया। किताब आपके हाथ में आ गई। उस ज्ञान में एकमात्र केवलज्ञान होता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान क्षयोपशमिक ज्ञान होते हैं। 14 पूर्वों का ज्ञान भी क्षयोपशमिक होता है। केवलज्ञान से जो जाना जा सकता है उसका कुछ भाग हम श्रुतज्ञान से जान सकते हैं। कुछ भाग हम अवधि और मनःपर्यय ज्ञान से जान सकते हैं। पदार्थ को सम्पूर्ण रूप से जानने वाला ज्ञान केवलज्ञान होता है। क्षायिक ज्ञान आने के बाद जाता नहीं है। श्रुतज्ञान अभ्यास से सिद्ध होता है। अभ्यास करेंगे तो मौजूद रहेगा। लापरवाही की तो वह चला जाएगा।

आप में से किसी ने छोटी अवस्था में 25 बोल याद किए होंगे किंतु क्या अभी उसी क्रम से सुना देंगे ?

(उत्तर मिलता है- नहीं)

कहाँ चला गया ? उस समय दरवाजा खुला था और हमें याद हुआ था। हमने छोड़ दिया तो वह हमारे मस्तिष्क से उतर गया। जिसको हम बार-बार याद करते रहे, रिवाइज करते रहे वो चीज मौजूद रह गई।

दुकानदार अपने ग्राहकों के नाम अंगुली पर याद रखते हैं किंतु कोई शास्त्रों के नाम पूछ ले, यह पूछ ले कि सुखविपाक में किसके विषय में बताया गया है, आचारांग में कौन-सा विषय बताया गया है तो कहेंगे कि पता नहीं है। क्यों पता नहीं है ? क्या हमें पता नहीं होना चाहिए ?

मैं पहले जब उदयपुर आया था, उस समय डॉक्टर प्रेमसुमन जी जैन ने प्रवचन सभा में बताया था कि मिडिल और उच्चातर कक्षाओं में प्राकृत पढ़ाने की सरकार ने अनुमति दे दी। ऊपर की कक्षाओं में प्राकृत पढ़ाने की अनुमति दे दी, किंतु विद्यार्थी उनके हाथ नहीं लगे। बहुत कम विद्यार्थी प्राकृत भाषा स्वीकार करते हैं। संस्कृत भाषा को स्वीकार करने वाले भी कम लोग होते हैं। प्राकृत भाषा को स्वीकार करने वाले तो और भी कम होते हैं। दिगम्बर समाज में फिर भी लोग प्राकृत भाषा सीखने में रुचिशील हैं, किंतु श्वेताम्बर में बहुत कम लोग मिलेंगे, जबकि हमारा खजाना प्राकृत व अर्धमागधी भाषा में ही है। यदि हम ताले में चाबी लगाना ही नहीं जानेंगे, तो मालूम कैसे पड़ेगा कि भीतर क्या है। चाबी हमारे हाथ में होगी तो हम कभी भी ताला खोलकर देख सकते हैं कि इसमें क्या भरा हुआ है। घर में तिजोरी पड़ी है, किंतु उसमें ताला लगा हुआ है और ताला खोलने नहीं आए, तो तिजोरी में क्या भरा है पता नहीं चलेगा। फिर उस तिजोरी से हमें क्या फायदा ?

प्रतिक्रमण करते समय चौथी भाव बंदना में हम उपाध्याय श्री के गुणों का वर्णन करते हैं। उसमें 32 सूत्रों के नाम बोल देते हैं, किंतु कौन-से सूत्र में क्या रहा हुआ है, बहुत कम लोग जानते हैं।

जानने का मन किस-किसका है ? किस-किसका मन है जानने का ? बोलो।

शायद ही है किसी का मन।

यदि जानने का मन है तो फिर इतना विलंब क्यों किया? जानने की जिज्ञासा है तो विलंब क्यों किया?

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारी उम्र भी पके हुए पान की तरह है, कब खिर जाए पता नहीं। आधात लगाने से कब आयु का धागा टूट जाए पता नहीं। कल पर कोई भी काम नहीं छोड़ना चाहिए। कल आएगा या नहीं आएगा?

‘काल करे सो आज कर, आज करे सो अब’

इसका मतलब है विलंब करने की गुंजाइश नहीं है। करना है तो अभी कर लें। बाद में कुछ हाथ आने वाला नहीं है। कुछ पल्ले पड़ने वाला नहीं है। इसलिए यदि जिज्ञासा है कि मेरी अलमारी में, तिजोरी में क्या-क्या माल भरा हुआ है, तो बिना विलंब किए जल्दी से जान लेना चाहिए।

भाषा ज्ञान वह चाबी है, जिससे आप उसके भीतर गहरे उत्तर सकते हैं। भाषा का ज्ञान नहीं है, तो हम क्या जानेंगे। हिन्दी भाषा किस-किस को आती है? हिन्दी भाषा के जानकार कौन-कौन हैं?

(सभी लोगों ने हाथ खड़े किए)

अपने आपको जानकार मत समझ लेना। हम हिन्दी भाषी हैं। हम बोलचाल की भाषा को जान रहे हैं। व्याकरण की भाषा समझना बहुत टेढ़ी बात है। बहुत से शब्दों का वास्तविक अर्थ हमें ज्ञात नहीं होता। जैसे एक व्यक्ति मार-पीट करने में उस्ताद है। एक व्यक्ति लूट-पाट करने में उस्ताद है। एक व्यक्ति डाका डालने में उस्ताद है। क्या उसको हिम्मती कहेंगे?

नहीं, हम उसको हिम्मती नहीं कहेंगे। जो डाका डाल रहा है, चोरी कर रहा है। वह लुटेरा है, वह साहसी है, किंतु हिम्मती नहीं है। साहसी शब्द उसके लिए प्रयुक्त होता है, जो बुरे कार्यों में अपनी शक्ति लगाता है। जैसे चोरी करना, लूटना, मार-पीट करना। जो व्यक्ति अच्छे कार्यों के लिए बढ़ने को तैयार रहता है और पीछे नहीं खिसकता, वह हिम्मती है।

जम्बू कुमार की हिम्मत थी कि वे शादी करने के दूसरे दिन ही साधु बनने के लिए तैयार हो गए। वे साधु बन भी गए। यह हिम्मत का काम था।

किसी को मारना, पीटना, लूटना हिम्मत का काम नहीं है। ये साहस का काम है।

ये हिम्मत के काम हैं या साहस के?

(लोगों ने कहा - साहस का काम है)

ऐसे बहुत सारे भेद, ऐसी बहुत सारी बातें, भाषा का ज्ञान होने पर हम जान सकते हैं। नहीं जानने से बहुत बार कहते हैं कि इसका साहस बहुत सराहनीय है। साहस सराहनीय होता है क्या? धीरे-धीरे हमने शब्दों के अर्थों को मोढ़ दिया। ऐसे ही विनय शब्द का अर्थ क्या होता है?

(सभा में सब चुप रहते हैं)

मौन कैसे रह गए। वर्तमान में विनय का अर्थ करते हैं बड़ों के सामने झुकना, बड़ों का सम्मान करना, बड़ों को आदर देना, जबकि विनय का अर्थ होता है सदाचार। विनय का शुरुआती अर्थ सदाचार में प्रयुक्त हुआ है। उसको हमने बदलकर आज बड़ों के सामने झुकना कर दिया। खाली झुकना, बड़ों के सामने उठ जाना, विनय कहा जाने लगा जबकि इसको लोकाचार विनय कहा गया है। विनय का सही अर्थ बनता है सदाचार।

खैर, अभी मैं हिन्दी का व्याकरण नहीं पढ़ा रहा हूँ। बात चल गई इसलिए कर ली। यह मुश्किल है कि बिना भाषा के ज्ञान के हम किसी भी विषय की गहराई तक पहुँच पाएँ।

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे...

संभव नाम से मैंने बात चालू की। असंभव कुछ नहीं है। हमारा पुरुषार्थ होगा तो हम किसी भी कार्य को संभव बना सकते हैं। जो हमें असंभव लगता है उसको भी संभव बनाया जा सकता है। संभव कैसे बनाया जा सकता है इसे एक छोटे-से प्रसंग से हम जान सकते हैं। प्रसंग है धारिणी महारानी के गर्भ में शिशु होने का। गर्भ का लगभग तीसरा महीना चल रहा था। उनको दोहद पैदा हुआ।

दोहद का अर्थ होता है, जहाँ दो हद (सीमाएं) लगें। जहाँ दो हद (सीमाएं) लगती हैं उसे दोहद कहते हैं। जैसे पाकिस्तान और भारत की सीमा या चीन और भारत की सीमा। इसी तरह दो विचार जहाँ मिलते हैं, उसे दोहद

कहते हैं। माता और शिशु के विचार जहाँ मिलते हैं उसको कहते हैं दोहद। लगभग तीसरा महीना चल रहा होता है, उस समय दोहद पैदा होता है। सबको एक समान दोहद पैदा नहीं होता। किसी को कुछ पैदा होता है, तो किसी को कुछ। गृहस्थ में था तो मैंने सुना था कि कई गर्भवती बहनों की रुचि सफेद चॉक खाने की होती है। सफेद चॉक नहीं मिले तो वे मुरझा जाती हैं। किसी को कोयला खाने की रुचि होती है, तो किसी को दान-पुण्य करने की रुचि होती है।

दोहद से पहचान हो जाती है कि गर्भस्थ शिशु कैसा है। गर्भवती के मन में साधु-संतों के दर्शन का विचार आए, दान-पुण्य का विचार आए, गरीब को दान देने का विचार आए तो समझ में आता है कि सदाचारी जीव गर्भ में आया है। किसी को मारने-काटने का विचार होता है तो यह ज्ञात होता है कि कोई क्रूर व्यक्ति गर्भ में आया है।

चेलना महारानी के गर्भ में कोणिक था तो उसे दोहद हुआ कि मगध सम्राट के कलेजे का मांस खाऊँ। इस प्रकार के दोहद से चेलना महारानी समझ गई कि यह जीव क्रूर स्वभावी है।

धारिणी महारानी को जो दोहद आया, वह कुछ अलग हटकर था। जेठ (भरी गर्भी) के महीने में उसे दोहद पैदा हुआ कि रिमझिम-रिमझिम वर्षा हो रही हो, मंद-मंद ठंडी हवा चल रही हो, मैं हाथी पर सवार होकर ऐसे बन में विहार करूं, जिसमें हरियाली छाई हो। हाथी पर मेरे पीछे मगध सम्राट बैठे रहें आदि। ग्रीष्म क्रतु में ऐसा संभव नहीं था। आज के युग में शायद यह संभव हो भी जाता कि हेलीकॉप्टर से ऊपर से पानी की रिमझिम वर्षा कर दे, पर उस समय के लिए यह कठिन बात थी। दोहद पूरा न होने से धारिणी महारानी दुर्बल हो गई। उसे खाना-पीना अच्छा नहीं लग रहा था। किसी से बात करना अच्छा नहीं लग रहा था।

दासियों ने राजा श्रेणिक को बताया कि महारानी अन्यमनस्क हो गई हैं। वह स्वस्थ नहीं हैं। महारानी के अस्वस्थता की बात सुनकर मगध सम्राट श्रेणिक महारानी के पास गए और कहा कि ‘प्रिये क्या बात है?’

महारानी ने कहा, नाथ! खास बात नहीं है।

राजा ने कहा, मेरे से बात छुपाओ मत, तो महारानी ने दोहद की बात

बताते हुए कहा कि मैं नहीं चाहती कि आपको खेदित करूँ, क्योंकि बात असंभव है।

सम्राट ने कहा कि तुम चिंता मत करो। यह मेरी जिम्मेदारी रही कि उस काम को कैसे पूरा करना है।

मगध सम्राट श्रेणिक ने यह कह तो दिया किंतु वहाँ से बाहर आकर सिंहासन पर बैठकर सोचने लगे कि महारानी का दोहद कैसे पूरा हो!

उन्होंने काफी दिमाग लगाया किंतु कोई भी उपाय ध्यान में नहीं आया। राजा चिंतामण हो गए कि मैंने महारानी को जुबान दे दी, अब यदि कार्य पूरा नहीं कर पाता हूँ तो उसके साथ धोखा होगा। वे दत्तचित्त हो उपाय सोचने लगे कि कैसे पूरा करूँ। पर उनकी समझ में कोई उपाय आ ही नहीं रहा था।

इतने में अभय कुमार राजा के चरण बंदन करने के लिए आया। अभय कुमार ने नमस्कार किया, किंतु सम्राट को कुछ पता नहीं चला। वे चिंता में डूबे हुए थे। अभय कुमार ने विचार किया कि मैं प्रतिदिन आता हूँ तो पिता जी खुश होते हैं, मेरी पीठ पर आशीर्वाद की थाप लगाते हैं, मुझे सीने से लगाते हैं, सिर पर हाथ फिराते हैं, पर आज ये कुछ भी नहीं कर रहे। जिस तरह से बैठे हुए हैं, लगता है कि किसी बड़ी चिंता में हैं। चिंता का कौन सा विषय आ गया कि इतना सोचना पढ़ रहा है।

अभय कुमार ने आवाज लगाई, पिताजी-पिताजी!

अभय कुमार की आवाज सुनकर राजा चौंके कि मुझे कोई पुकार रहा है। उन्होंने सामने अभय कुमार को देखा।

अभय कुमार ने कहा कि पिता जी ऐसा कौन सा विषय आ गया चिंता का?

सम्राट ने कहा— बेटा, क्या बताऊँ! भारी चिंता का विषय है। तुम्हारी छोटी माता को इस-इस प्रकार का दोहद पैदा हुआ है।

अभय कुमार ने कहा कि पिता जी आप चिंता मुक्त हो जाइए, मैं इस दोहद को पूरा करूँगा।

मगध सम्राट श्रेणिक का अभय कुमार पर इतना विश्वास था कि यह कोई भी जिम्मेदारी लेता है तो उसे पूरा करता है।

बात समझ में आ रही है।

(लोगों ने कहा- आ रही है भगवन्)

समझ में आ रही है तो क्या कहा बताओ ?

राजा को विश्वास था कि अभय जिम्मेदारी लेता है तो उसे पूरा करता है। हमारे पर लोगों का कितना विश्वास है कि यह जिम्मेदारी लेगा तो पूरा करेगा! हमारे घर वाले भी हम पर विश्वास करते या नहीं!

लोग बोल तो देते हैं, किंतु करते-कराते कुछ भी नहीं हैं। बोलने का मतलब है कि वह जिम्मेदारी पूरी होनी चाहिए।

खैर, मगध सप्राट श्रेणिक निश्चिंत हो गए। उन्होंने मन में डाउट नहीं रखा कि अभय ने कह दिया पर करेगा या नहीं करेगा। आदमी बहुत बार फालतू ही चिंता पालता है। कोई अगर जिम्मेदारी ले रहा है तो फिर उसे क्री हो जाना चाहिए। फिर क्यों सोचना! किंतु हम क्री नहीं हो पाते हैं। किसी को जिम्मेदारी दे देते हैं, फिर भी अपना दिमाग लड़ाते रहते हैं। जिम्मेदारी देने के बाद उस पर माथा लड़ाने का मतलब है कि मुझे उस पर भरोसा नहीं है। कल उसने जवाब दे दिया कि मैं नहीं कर पाया तो क्या होगा!

मगध सप्राट श्रेणिक को भरोसा था कि अभय जो भी जिम्मेदारी लेता है, उसे पूरा करता है। राजा निश्चिंत हो गए। उन्होंने यह नहीं सोचा कि कैसे करेगा, क्या करेगा। उनको विश्वास था कि उसकी बुद्धि काम करेगी और वह कार्य को सम्पन्न करेगा।

अभय कुमार घर पर आए। वे विचार में पड़ गए कि मैंने पिता जी को कह तो दिया कि आप निश्चिंत हो जाइए पर अब मैं कौन-सा उपाय करूं कि कार्य सम्पन्न हो सके। उनकी बुद्धि में बात आई कि यह किसी मनुष्य के द्वारा संभव नहीं होगा। बुद्धि लड़ाने से यह काम नहीं होगा। इसका समाधान देव से ही हो सकता है। उन्होंने विचार किया कि मेरा मित्र देव, देवलोक में है, मुझे उसको याद करना चाहिए और उसके द्वारा इस कार्य की सम्पन्नता पर विचार करना चाहिए। अपने पूर्व साथी देव को याद करने के लिए वे तेले तप की आराधना करते हैं। ध्यान रहे कि यह निर्जरा के लिए नहीं था। देवता को याद करने के लिए था। तीन दिनों तक वे देव नाम स्मरण करते रहे।

वे लाइटिंग कॉल लगाते हैं। आज नहीं लगते लाइटिंग कॉल। दूसरी कॉल मिले या नहीं मिले, किंतु लाइटिंग कॉल तत्काल लगता था। लाइटिंग कॉल का मतलब अन्य कॉल रोककर पहले उसको लाइन देना। उसे प्राथमिकता देना। कई बार लाइटिंग कॉल शीघ्र लग जाता था तो कई बार घंटों समय व्यतीत हो जाता। उस समय आदमी खाना-पीना छोड़ कॉल का इंतजार करता था। उस समय लाइटिंग कॉल का चार्ज सामान्य कॉल से आठ गुना लिया जाता था। वर्तमान में वह व्यवस्था नहीं है।

अभय कुमार को लाइटिंग कॉल के रूप में एक बात दिमाग में आई। उन्होंने देव का स्मरण करते हुए आराधना की। तेला पूरा हुआ। देव आकर सामने खड़ा हो गया। कहा, बोलो अभय, क्या चाहते हो तुम, मैं तुम्हारा कौनसा कार्य सम्पन्न करूँ।

अभय कुमार ने अपनी बात बताई कि मेरी छोटी माता को दोहद उत्पन्न हुआ है। दोहद कैसा है, उससे कहा।

देव ने कहा कि तुम निश्चिंत हो जाओ और माता-पिता को बोलो की तैयार हो जाएं। देवता की सहायता से धारिणी महारानी का दोहद पूरा होता है।

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे...

असंभव कार्य भी संभव हो सकते हैं, बशर्ते हमारी बुद्धि पवित्र हो। हमारी बुद्धि उसका उपाय ढूँढ़ने में सक्षम हो। बुद्धि मलिन होगी, उसके ऊपर आवरण आया होगा तो उपाय ध्यान नहीं आएगा। सारी समस्याओं का समाधान होता है, किंतु हमारी बुद्धि यदि सक्रिय नहीं है, पवित्र नहीं है, धूमिल है तो हम समाधान तक नहीं पहुँच पाते हैं।

ऐसा कोई भी प्रश्न नहीं है, ऐसी कोई भी समस्या नहीं है, जिसका समाधान नहीं हो। समाधान ढूँढ़ने वाला ढूँढ़ लेता है और नहीं ढूँढ़ने वाला चिंता में चला जाता है। लेकिन चिंता किसी समस्या का समाधान नहीं है। चिंता करने से कुछ हाथ में नहीं आएगा।

असंभव कुछ भी नहीं है। हम विचार कर लेते हैं कि अमुक आदमी टेढ़ा है, उसको साधना बहुत मुश्किल है, उसको प्रसन्न करना बहुत मुश्किल

है। मुश्किल हो सकता है, किंतु असंभव नहीं है।

चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हुदुरासयं पि।

आगम कहता है कि जिनको साधना बहुत मुश्किल है, जिनके मन में चलने वाली बात का पता लगाना कठिन है, जिनको समझ पाना मुश्किल है, जिनके आशय को न जाना जा सके, ऐसे गुरु को भी उनके चित्त के अनुरूप चलने वाला शिष्य प्रसन्न कर लेता है।

कैसे कर लेता है?

उसके चित्त के अनुरूप काम करके। भले ही कोई आदमी कितना ही टेढ़ा हो, किंतु उसके भीतर भी एक धड़कता हुआ दिल है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जैसे मेरा दिल धड़कता है, वैसे ही उसके भीतर भी एक दिल धड़कता है। उस दिल में कहीं न कहीं तो कोमलता रही हुई होती है। कोई आदमी कैसा भी कठोर हो जाए, कितना भी सख्त हो, किंतु उसके भीतर भी कोमलता रही हुई है। डाका डालने वाले में भी कोमलता होती है। सिंह किसी पर वार करता है, किंतु वह भी अपनी संतान पर वार नहीं करता। उसको पालने के लिए सिंह के भीतर कोमलता है। हर दिल में कोमलता होती है। वह उससे प्यार करता है। उसको साधने का प्रयत्न हमें करना होगा। तुम्हारी दक्षता इसमें है कि तुम उसके चित्त के अनुरूप कार्य करना शुरू कर दो। उसके चित्त को देखते जाओ, देखते जाओ तो धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर यह जानने की शक्ति आ जाएगी कि वह क्या चाह रहा है, क्या तैयारी कर रहा है। जब यह ज्ञान हो जाएगा तो उसके अनुसार काम करके दुष्कर को भी साधा जा सकता है।

एक कहानी है। एक राजा दीवान के साथ बन भ्रमणार्थ गया। वापस लौटते हुए घोड़े ने एक स्थान पर पेशाब किया। उसने जहाँ पर पेशाब किया, वह काफी देर तक सूखा नहीं तो सम्राट के मन में विचार आया कि यहाँ पर एक जलाशय हो जाए तो बढ़िया होगा। सम्राट चला गया। साल भर के बाद वह वहाँ से गुजरा तो तालाब देखा। सम्राट के साथ दीवान भी था। वही दीवान जो साल भर पहले भी सम्राट के साथ था। सम्राट ने दीवान से कहा कि साल भर पहले यहाँ आया था तब तालाब नहीं था, किंतु अब है?

दीवान ने कहा, आपके मनोगत भाव से इस तालाब का निर्माण

हुआ।

राजा ने कहा, मैंने कब आज्ञा दी!

दीवान ने कहा, राजन! आपने अनुमति नहीं दी, किंतु आपके भीतर विचार पैदा हुआ कि यहाँ पर जलाशय होना चाहिए।

राजा ने कहा कि आपने मेरा विचार कैसे जान लिया?

दीवान ने कहा कि आपकी कृपा है। आपके मनोगत भावों के अनुसार काम नहीं हो तो फिर मेरी दीवानगिरी किस काम की!

राजा उस पर प्रसन्न होगा या क्रोधित होगा?

प्रसन्न होगा।

उड़ती हुई मक्खी किधर मुड़ेगी, यह भाँप लेना हर किसी के वश की बात नहीं है। उड़ती हुई मक्खी को देखकर कोई भाँप सकता है क्या कि यह किधर उड़ेगी?

बहुत मुश्किल है। बहुत कठिन है। कठिन है, किंतु असंभव नहीं है। बोलो क्या असंभव है?

जो असंभव है, वह सबके लिए असंभव है। जैसे मैंने कहा कि तीर्थकर देव भी अभवी को भवी नहीं बना सकते। अभवी को कितना ही उपदेश दे दो, वह भवी नहीं हो सकता। जिसको करने में कोई सफल हो सकता है, तो वह मेरे लिए क्या असंभव है? मैंने यदि बुद्धि को ताला नहीं लगाया, सोच को ताला नहीं लगाया, तो हर कार्य संभव है। हर कार्य को सम्पन्न करने में मैं समर्थ हूँ। इसके लिए उपाय ढूँढ़ने होंगे। उपाय मिलेगा निर्मल बुद्धि से। पवित्र बुद्धि से। मलिन बुद्धि हमें समाधान नहीं देगी। वह हमें समस्याओं के समाधान तक नहीं ले जाएगी। इसलिए बुद्धि की पवित्रता रखना बहुत जरूरी है।

उसको पवित्र रखने के लिए श्रुत गंगा की आराधना जरूरी है। उससे ही जग की जड़ता दूर हुई है? हमारी बुद्धि में भी ताजगी होने का कारण है श्रुत गंगा। उसके कारण से हम कुछ पवित्र हो पाए हैं। हम अपनी बुद्धि को पवित्र बनाने की कोशिश करें। उसकी मलिनता को हटाने का प्रयत्न करें।

सरकार गंगा को पवित्र बनाने का प्रयत्न कर रही है। नदियों को शुद्ध बनाने का प्रयत्न कर रही है। वह प्रयत्न सफल होगा या नहीं, अलग बात है।

किंतु हम अपने मन की गंगा को स्वच्छ बनाने का प्रयत्न करें। हमने धार लिया कि अपनी मन गंगा को पवित्र बनाना है तो हम उसे पवित्र बनाने में समर्थ होंगे। सफल होंगे। हमारा ऐसा लक्ष्य होगा, ऐसा विचार होगा तो हम धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

20 जुलाई, 22

8. जीवन में लाभ कमाए जा

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...

असंभव कुछ भी नहीं है। मोक्ष तक की यात्रा भी संभव है। यात्रा के कुछ नियम होते हैं, कानून होते हैं, मर्यादाएँ होती हैं। जैसे सड़क पर चलने वाले व्यक्ति को उसके नियम, मर्यादा का ध्यान रखना होता है, वैसे ही मोक्ष की यात्रा जो करना चाहेगा, उसको कुछ मर्यादाओं का ध्यान रखना होगा। यदि वह मर्यादाओं का ध्यान रखेगा, तो उसकी यात्रा सुगम होगी। ध्यान नहीं रखेगा, तो एक्सीडेंट होना संभव है। कठिनाई आना स्वाभाविक है।

हम मोक्ष मार्ग की आराधना में जुड़े हुए हैं। हमारा लक्ष्य मोक्ष है, पर विचार करना है कि हमारी यात्रा सुगम हो रही है या नहीं! मैंने सुना है कि गाड़ी चलाते हुए मोबाइल नहीं चलाना। ऐसा नियम होगा। गाड़ी चलाते हुए मोबाइल इसलिए नहीं चलाना होता है क्योंकि मोबाइल की तरफ ध्यान जाने से गाड़ी से ध्यान हट जाएगा। फिर सामने से अकस्मात् कोई गाड़ी आ गई तो टक्कर लगेगी। एक्सीडेंट होगा। दुर्घटना घटेगी।

इसका मतलब है कि ड्राइवर को ध्यान एकाग्र रखना जरूरी है। ध्यान सामने रखना जरूरी है। ड्राइवर की सीट के पास साइड में बाहर की तरफ भी एक दर्पण होता है जिससे उसे पीछे की चीजें दिखती हैं। इससे पीछे से आने वाले वाहनों से वह अपने आपको सुरक्षित करता है, किंतु मुख्य रूप से उसका ध्यान सामने की ओर होता है। सामने की ओर ध्यान रखकर वह गतिशील रहता है।

व्यापारी वर्ग व्यापार करता है। व्यापार वह कुछ लाभ कमाने के लिए करता है। मुनाफा कमाने के लिए प्रयत्न करता है। शहर से चीजें खरीदकर लाता है और गाँव में बेचता है। गाँव में लाकर बेचने वाला सस्ते मूल्य में

बेचता है या ज्यादा मूल्य में? ज्यादा मूल्य में।

यह आप जानते हैं कि ज्यादा पैसों में बेचेंगे तो लाभ होगा और कम पैसों में बेचेंगे तो घाटा होगा। मेरे खयाल से यह व्यापार का नियम है। व्यापारी बहुत जल्दी समझ लेता है कि व्यापार करना है तो मुझे पाँच पैसों की कमाई करनी है। मुझे कुछ धन बढ़ाना है। मेरा धन घटना नहीं चाहिए। माल जितने में लाया उससे ज्यादा पैसे लूँगा। कम पैसों में बेचूंगा तो घाटा होगा। ज्यादा पैसों में बेचूंगा तो मुनाफा होगा। लाभ होगा। कुछ पैसे बचेंगे।

मैंने गुरु नानक के जीवन का एक किस्सा पढ़ा। गुरु नानक के पिता ने 20 रुपए उनको दिए और कहा, बेटा शहर से चीजें खरीदकर लाना और गाँव में मुनाफे के साथ बेचना। लाभ कमाना। जीवन में कुछ लाभ होना जरूरी है। नानक देव गए शहर, चीजें खरीदी। वह वापस लौट रहे थे कि रास्ते में एक जगह पाँच संत भूखे बैठे हुए नजर आए।

नानक देव ने कहा तुम बैठे क्यों हो? उठो कुछ कार्य करो, पुरुषार्थ करो, प्रयत्न करो।

उन्होंने कहा कि हमने यह विचार कर लिया कि देने वाला देगा तो खा लेंगे, नहीं तो बैठ रहेंगे।

कुछ लोग अभिग्रहधारी होते हैं। अभिग्रहधारी यानी ऐसा होगा तो ही पारणा करेंगे, नहीं तो भोजन नहीं करेंगे।

एक संत ने तपस्या के बाद अभिग्रह धारण कर लिया। लोग आते और कहते म.सा. पारणा, म.सा. पारणा। संत का अभिग्रह फलता ही नहीं। कोई पच्चक्खाण की बात कहता है, कोई कुछ कहता है किंतु अभिग्रह नहीं फल रहा है। स्थानक के नीचे बैंक था। बैंक मैनेजर ने सोचा कि इतनी चहल-पहल क्यों बढ़ गई! इतने लोग क्यों आते-जाते हैं!

एक दिन मैनेजर ने आने-जाने वालों में से एक व्यक्ति से पूछा कि क्या बात है, आजकल लोग बहुत आते हैं?

उसने कहा हमारे गुरुदेव ने प्रतिज्ञा ले रखी है। वे खाना नहीं खा रहे हैं।

मैनेजर ने पूछा कि ऐसी क्या बात हुई जो गुरु जी खाना नहीं खा रहे

हैं!

मैनेजर भी उस व्यक्ति के साथ ऊपर गया। मैनेजर ने कहा कि “महाराज क्यों भूखे मर रहे हो, खाना खा लो।” मैनेजर का इतना कहना हुआ कि उनका अभिग्रह फल गया।

किसी-किसी का अभिग्रह होता है। वैसे ही उन पाँचों संतों की कुछ बात रही होगी कि अपने आप मिलेगा तो खा लेंगे, नहीं तो भूखे बैठे रहेंगे।

नानक देव ने विचार किया मैं ये चीजें लाया हूँ, पिता जी ने कहा है कि बेटा लाभ कमाना है, मैं यदि अपने पास की सामग्री इन भूखे संतों को दे देता हूँ, इनको तृप्ति मिलेगी तो बहुत बड़ा लाभ होगा। फिर इससे बड़ा क्या लाभ होगा! उन्होंने संतों को वे चीजें दे दी। वितरित कर दी।

नानक के साथ उनका एक मित्र था। मित्र ने कहा कि क्या कर रहे हो! व्यापार ऐसे होता है क्या!

नानक देव ने कहा कि पिता जी ने कहा है लाभ कमाना।

नानक देव ने लाभ कमाया या नहीं कमाया?

(लोगों ने कहा - कमाया)

आपकी संतान ऐसा कुछ काम करे तो? जो पैसे आपने उसे दिया, उसे वह रास्ते में वितरित कर दे तो आपको मंजूर है ना? एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन ऐसा ही करता रहे तो मंजूर है ना?

(सभा में चुप्पी छा जाती है)

क्या हुआ, अब मौन क्यों हो गए?

विचार करें कि हम कौन-सा धंधा कर रहे हैं!

हम चीज घाटे में बेच रहे हैं या मुनाफे में बेच रहे हैं?

कोई चीज कम मूल्य में बेच रहे हैं या लाभ कमा रहे हैं?

क्या हुआ बोलो तो!

(लोग चुप हैं)

बोलते क्यों नहीं!

मौन क्यों हो गए?

मौन रहने से काम नहीं चलेगा।

हमें विचार करना पड़ेगा कि हमारा कार्य कैसा है ?

हम लाभ कमाने का काम कर रहे हैं या नुकसान उठाने का ?

(लोग कहते हैं- लाभ उठाने का काम कर रहे हैं)

क्या लाभ उठाया, क्या लाभ कमाया, उत्तर दीजिए।

जितनी पुण्यवानी कमा कर लाए थे, उसकी बदौलत हमने मनुष्य जन्म पाया। क्या वापस मनुष्य जन्म मिल जाएगा ?

ध्यान में लेना बात, हमारी पुण्यवानी है जो मनुष्य जन्म मिला है।

हमारी पुण्यवानी खर्च हुई या नहीं हुई ?

(लोगों ने कहा- खर्च हुई)

जितनी पुण्यवानी खर्च हुई, उतनी का संचय कर लिया या नहीं किया ?

(कुछ लोग कहते हैं- कर लिया)

पक्का है ना कर लिया ! फाइनल है ना कर लिया ! निश्चित है ना कर लिया !

हमने यहाँ आने के बाद पाप ज्यादा कमाया या पुण्य ?

(लोगों की तरफ से आवाज आती है- पाप ज्यादा कमाया)

पाप ज्यादा कमाया ! फिर आप कह रहे हैं कि हमने पुण्य की कमाई कर ली।

शक्ति भरकर ट्रक लाए और सोचा कि अच्छी कीमत पर बेचेंगे पर रात को वर्षा हुई और शक्ति गल गई। शक्ति गलकर शरबत बन गई। बह गई पानी में। क्या काम आई शक्ति ! अब खाली हाथ जाना पड़ेगा ! लाभ कमाना तो तब होगा जब जैसे मुट्ठी बाँधे आए और जाते हुए भी मुट्ठी बंद हो जाए !

सिंकंदर ने अपने जीवन के अंतिम समय में कहा था कि मरने के बाद मेरे हाथ जनाजे से बाहर रखना, ताकि दुनिया को मालूम पड़े कि मैंने इतना बटोरा, किंतु साथ कुछ नहीं ले जा रहा हूँ। क्या लेकर गया साथ में ? उसके मरने से कितने लोगों को राहत मिली होगी ! कितने लोगों ने लम्बी श्वास ली

होगी!

उसको भी यह ज्ञान तब हुआ, जब मरने का समय नजदीक आया। मरने के समय उसको बोध हुआ कि मैंने इतना इकट्ठा किया, किंतु साथ कुछ जाने वाला नहीं है।

हमें यह कब ज्ञात होगा, मैं नहीं कह सकता। अभी तो हमारा मन बटोरने में लगा है। हम चाहते हैं कि और मिल जाए, और मिल जाए।

जैसे-जैसे लाभ बढ़ता है वैसे-वैसे हमारा लोभ बढ़ता है। और मिलता रहे... और मिलता रहे... और मिलता रहे... और मिलने की हमारी तृष्णा कब शांत होगी!

उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्ययन में कपिल ब्राह्मण की कहानी है। दो मासा सोना लेने के लिए वह सेठ के पास गया। एक कहानी में सेठ के पास जाना बताया गया है जबकि एक कहानी में राजा के पास जाना बताया गया है। दो माला सोना प्राप्त करने के लिए वह अर्धरात्रि में निकल पड़ा। वह आरक्षक के हाथ पकड़ा गया। उसे राजा के सामने खड़ा किया गया। राजा ने देखा उसको। हुलिया से, चेहरे से लगा नहीं कि वह खानदानी लुटेरा है। राजा को उसकी बात पर विश्वास हो गया कि वह वस्तुतः दो मासा सोना लेने के लिए निकला था। गरीबी की हालत थी। राजा ने कहा कि माँग लो तुम जो माँगना चाहते हो।

माँगने के लिए छूट मिली तो उसने क्या माँगा! उसने सोचा कि दो मासा नहीं, चार मासा माँग लूं। चार मासा से आठ मासा का विचार हो गया। फिर सोलह मासा माँगने के लिए सोचने लगा। विचार यहीं नहीं रुका। सोलह से बत्तीस मासा पर पहुँच गया। अभी माँगा कुछ भी नहीं। उसके विचार बदलते जा रहे हैं। विचारों में स्थिरता नहीं आ रही है। उसने विचार किया कि मैं राजा से उसका राज्य ही माँग लूं।

क्या विचार आया?

राजा से राज्य माँगने का विचार आया।

शायद हमारी हिम्मत नहीं होगी कि राजा से उसका राज्य माँग लें। मन में इच्छा होगी, किंतु बोलने की हिम्मत नहीं होगी।

कहानी में बताया गया है कि उसे इससे भी संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि मुझे तो राज्य का संचालन करना आता नहीं। राजा कोई राजनीति खेल सकता है और जिंदा रहेगा तो मुझसे राज्य छीन सकता है, इसलिए अच्छा है कि राजा की मृत्यु भी चाह लूँ। साथ में उसकी फाँसी की सजा माँग लूँ।

हवा एक तरफ चली, विचार एक तरफ चले गए, लेकिन उसे एक झटका लगा कि तुम क्या कर रहे हो! तुम ब्राह्मण होकर राजा की धात करने की सोच रहे हो। ब्राह्मण को संतोषी होना चाहिए और तुम कहाँ से कहाँ तक चले गए! तुम्हारे असंतोष ने, तुम्हारी तृष्णा ने तुम्हें पाप से कितना भारी बना दिया! जो राजा तुम्हारा उपकारी बना, तुम उसको मारने की फिराक में आ गए।

उसके विचार फिर बदले और बदलते चले गए। बताया जाता है कि वह साधु की पोशाक में आ गया। वह साधु बनकर बैठ गया। काफी देर तक नहीं पहुँचा तो राजा ने कर्मचारियों से कहा कि उसको भेजा जाए।

कर्मचारी उसके पास आए और कहा कि राजा तुम्हें याद कर रहे हैं, तुम क्या कर रहे हो?

उसने कहा, अब मुझे राजा की आवश्यकता नहीं रही। मुझे जो मिल गया, वह राजा भी नहीं दे सकता।

दे सकता है क्या राजा?

नहीं दे सकता।

राजा धन दे सकता है। आपको सुविधाएँ दे सकता है, किंतु संतोष देना राजा के हाथ की बात नहीं है।

कपिल को संतोष मिल गया।

संतोष मिल गया तो लाभ हुआ या नुकसान?

(लोग कहते हैं- लाभ हुआ)

दो मासा सोना लेने के लिए गया। राजा ने कहा कि जो माँगना है, वह माँग लो, मैं दूँगा।

हो सकता है वह माँगता तो धन मिल जाता, किंतु जो उसको मिला

वह मूल्यवान है या जो मिलता वह मूल्यवान होता ?

(लोग कहते हैं- जो मिला वह मूल्यवान था)

यही हमें सोचना है कि हमने क्या खोया, क्या पाया !

बात गुरुनानक की चल रही थी। गुरुनानक घर पहुँचे। उनके पिता जी को बात मालूम पड़ी तो उन्होंने कहा कि तू भूखा मरेगा। ऐसे कोई व्यापार होता है क्या !

नानक जी ने अपने पिता जी से कहा कि आपने ही तो कहा कि लाभ कमाना है तो मैंने लाभ कमाया।

शालिभद्र का जीव संगम के भव में था, तो उसने कितनी खीर दान में दी थी ?

(लोग बताते हैं- सारी खीर दान में दी)

सारी का क्या मतलब हुआ ? दो लीटर, तीन लीटर, कितनी थी ? थाली में भरी हुई खीर कितनी होगी उतनी-सी खीर का दान दिया और कमाई कितनी हुई ?

रोज 32-32 एटियाँ घर में उतरती रही। किसके परिणामस्वरूप ?

(लोग कहते हैं- दान के परिणामस्वरूप)

केवल दान ही नहीं दिया। दान तो ममण सेठ ने भी दिया था। दान की बात नहीं है। दान के साथ में भावों का उल्लास होना चाहिए और हृदय प्रफुल्लित होना चाहिए। शालिभद्र के जीव ने जब खीर का दान किया तो उसका हृदय प्रफुल्लित था। हृदय प्रफुल्लित होने से लाभ बढ़ता हुआ चला गया। जैसे शेयर के भाव बढ़ते हैं।

लाभ हमारे विचारों से बढ़ेगा, पैसों से नहीं। लोग बड़ी मेहनत से पैसे कमाते हैं। खून-पसीना एक करते हैं। चोटी का पसीना एड़ी पर आता है, तब पैसा आता है।

बहुत पुरुषार्थ से धन कमाया और उससे लाभ क्या कमाया ? एक नेम प्लेट (नाम की पट्टिका) लगाने के लिए लाखों-करोड़ों रुपए दिए। नाम की पट्टिका लगाने के लिए लाखों-करोड़ों रुपए दान दे दिए। करोड़ रुपए कमाने में

कितना समय लगा होगा ! कितना जोर लगा होगा ! और बेचा किन भावों में ?

लाभ कमाया या नुकसान ?

(लोग कहते हैं – नुकसान)

यहाँ कुछ भी लाभ नहीं हुआ। मैंने अपने नाम के बदले उसको बेच दिया। मैंने उसको दान नहीं दिया।

दान उसको कहा गया है जो देने के बाद स्मृति में नहीं रहे कि मैंने दिया। याद ही नहीं रहना चाहिए। यदि व्यक्ति कहे कि मैंने वहाँ इतना दिया, वहाँ इतना दिया, यह किया, वह किया तो वह दान नहीं होगा।

कहते हैं कि आदमी खाए बिना रह जाता है, किंतु बोले बिना नहीं रहता और खाने के पीछे जितना बिगड़ नहीं होता, उतना बिगड़ बोलने से होता है।

किससे ज्यादा बिगड़ होता है ?

बोलने से ज्यादा बिगड़ होता है।

हमें एक सूत्र ध्यान में लेना है कि मुझे लाभ कमाना है, नुकसान नहीं। आप व्यापारी कुल में जन्मे हो यह तो आप जानते ही हो कि मुझे लाभ कमाना है। आपने मनुष्य जन्म प्राप्त किया, मनुष्य भव प्राप्त किया, मनुष्य का चोला प्राप्त किया, इससे अधिक लाभ क्या होगा ?

यदि मैंने देव भव को प्राप्त कर लिया, मोक्ष को प्राप्त कर लिया तो लाभ कमा लिया। मैंने यदि आने वाले समय में मनुष्य जन्म की प्राप्ति कर ली, तो जहाँ का तहाँ रह गया, अर्थात् मूल पूँजी सुरक्षित रख ली। यदि तिर्यन्च और नरक में चला गया तो मूल पूँजी को भी सुरक्षित नहीं रख पाया। दूसरी बात, कीचड़ में जन्म लेने वाला कमल कीचड़ से निर्लिप्त हो जाता है। हमने क्रोध, मान, माया, लोभ में आँखें खोली। संसार क्रोध, मान, माया, लोभ रूप ही है। उस संसार में हमने आँखें खोलीं। हम क्रोध, मान, माया, लोभ में जन्में। ज्यों-ज्यों हम बड़े हुए, हमारा संतुलन सही रहा या बिगड़ गया, यह सोचने की बात है। मेरा संतुलन सही है या बिगड़ गया ! मेरे विचार स्थिर हैं या अस्थिर हैं !

यदि मेरे जीवन में स्थिरता आ गई, ठहराव आ गया तो लाभ है। यदि

जीवन में ठहराव नहीं आ सका, उतार-चढ़ाव होते जा रहे हैं तो सोचो कि मैंने क्या कमाया! एक सूत्र दे दिया गया कि व्यापारी कुल में जन्म लिया तो लाभ कमाना है, पर हम लाभ कमाने की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं या दिनोंदिन हमारा जीवन उथल-पुथल में जा रहा है! विचारों की स्थिरता नहीं बन पा रही है, विचार उट्टिप्पा हो रहे हैं, विचारों में ऊहापोह हो रही है तो हम कैसा लाभ कमा रहे हैं!

सोचो, हानि हो रही है या लाभ हो रहा है?

(लोग कहते हैं- हानि हो रही है)

जिस समय जन्म हुआ उस समय बड़ी प्रसन्नता थी कि मैंने मनुष्य जन्म पा लिया। अब 50 पार कर रहा हूँ तो बचपन जैसी खुशहाली मौजूद है या लापता हो गई?

(लोगों ने कहा- लापता हो गई)

खुशहाली लुम हो गई फिर क्या लाभ कमाया! 50 वर्ष, 60 वर्ष की उम्र पाकर क्या लाभ कमाया! हमने लाभ का सौदा किया ही कहाँ!

(लोग कहते हैं- नुकसान का सौदा किया)

इतने वर्ष खो ही दिए हैं तो अब क्या करना!

धर्मराज का नाम आपने सुना होगा! उनका दूसरा नाथ था युधिष्ठिर। उनको जुआ के लिए निमंत्रित कर कौरवों ने एक दाँव खेला। उसमें षड्यंत्र भी रचा गया। धर्मराज बाजी हारते चले गए। हारा हुआ सबकुछ एक बार कौरवों ने वापस लौटा दिया। वापस दाँव चालू किया गया। युधिष्ठिर फिर हारते गए। हारते-हारते अपना पूरा राज्य हार गए। उसके बाद स्वयं को और फिर द्वौपदी को भी दाँव पर लगा दिया।

जब धर्मराज दाँव पर लगाने में नहीं चूके तो हम क्यों चूकें! 50-60 की उम्र लगा दी तो अब बाकी बचे हुए को भी लगा दें। क्या यह ठीक है?

(कहीं से आवाज नहीं आई)

अब आवाज नहीं आ रही। क्या हुआ?

आदित्य मुनि जी म.सा. कह रहे थे कि सीनियर सिटिजन बोलो मत,

तब तो बोल रहे थे, किंतु अब बोलना बंद हो गया। जब बात अपने पर आती है तो आवाज आनी बंद हो जाती है। जब युवाओं पर बात आती है तो सोचते हैं ठीक है।

सोचिए कि हमने 50-60 की उम्र में क्या कमाया ?

एक भजन का मुखड़ा है— नहीं प्रभु से प्यार फिर क्या पाएगा, रोना है बेकार छूट सब जाएगा...

प्रश्न वापस वहीं खड़ा है। 50-60 की उम्र हमने खो दी, क्या किया बताओ?

जवाब दीजिए, क्या किया ? किसको जवाब देंगे ?

(कुछ लोग कहते हैं— जब मरेंगे और यमदूत यम के पास खड़ा करेगा तब)

जवाब दोगे कि हमने क्या किया ? याद रहेगा क्या कि किस-किस के साथ, क्या-क्या व्यवहार किया ? अच्छा व्यवहार ज्यादा किया या बुरा व्यवहार ?

अच्छा व्यवहार किए होंगे तो भी भीतर कुछ न कुछ चालबाजी रही होगी कि ऐसा करूँगा तो मुझे लाभ हो जाएगा। ऐसी नीति हमने खेली होगी। ऐसी नीति खेलकर कुछ अच्छा भी किया हो, तो वह अच्छा नहीं होगा। यदि कहेंगे कि मैंने एक करोड़ का दान दिया तो वह वहाँ कम्प्यूटर में ऐड ही नहीं है। कम्प्यूटर में लिखा ही नहीं है कि इतने करोड़ का दान दिया, क्योंकि तुमने तो दान किया ही नहीं। तुमने तो व्यापार किया। सौदा किया। मैंने यह किया, वो किया किंतु तुम्हारी फलांपी में कुछ नहीं लिखा। वो सारा का सारा दान तुम्हारा विनिमय हुआ, दान नहीं। मेरे ख्याल से पूरी गणित लगा दोगे तो भी कम चांस हैं लाभ के।

मैं गलत तो नहीं कह रहा हूँ ?

(लोग कहते हैं— आप सही कह रहे हैं)

बहुत कम क्षण मिले होंगे जिसमें हमने कुछ लाभ कमाया होगा। जिसमें मन को ठहराव दिया होगा। बहुत कम समय ऐसा मिला होगा जब हमारा मन आश्वस्त हुआ होगा। मन में उछाल खूब होती रहती है।

होती रहती है या नहीं ?

प्रायः लोगों की यह शिकायत रहती है कि म.सा. मन स्थिर नहीं रहता। अरे, तुम्हारा जीवन ही स्थिर नहीं है, तो मन कैसे स्थिर होगा ! तुम्हारी इच्छाएं स्थिर नहीं हैं तो मन कैसे स्थिर होगा ! मन को स्थिर करना है तो पहले अपनी इच्छाओं को स्थिर करो। अपनी इच्छाओं को रोको। इच्छाएं रुक गई तो मन ठहरा हुआ ही है। यह पाटा यदि हिलता-डुलता रहेगा तो ऊपर बैठा हुआ मैं भी हिलता रहूँगा।

टेंट का पर्दा क्यों हिलता-डुलता है ?

हवा चलेगी तो पर्दा हिलेगा। हवा चलना बंद हो जाए तो टेंट का पर्दा भी नहीं हिलेगा। जैसे हवा चलती है, वैसे ही हमारी इच्छाएं, हमारी अपेक्षाएं, हमारी आकांक्षाएं, हमारी लालसाएं, हमारी अभिलाषाएं चलती रहती हैं। एक इच्छा पूरी होने के बाद दूसरी नई इच्छा पैदा हो जाती है। एक फैक्ट्री अच्छी रफ्तार पकड़ लती है तो मन में आता है कि दूसरी फैक्ट्री चालू कर दूँ। दूसरी फैक्ट्री के रफ्तार पकड़ने पर मन में आता है कि तीसरी फैक्ट्री चालू कर दूँ। इच्छाओं का अंत नहीं है। और का कोई छोर नहीं है। कोई किनारा नहीं है। ऐसी स्थिति में मन कैसे ठहरेगा ? संतोष में ठहरना है। संतोष का छोर है।

दो मासा सोना लेने के लिए गये कपिल को बोध हो गया। उसे संतोष हो गया और विचार बदल गये। अब उसे कुछ भी नहीं चाहिए। जिस दिन हमें भी संतोष हो जाएगा, हमें बोध हो जाएगा, उस दिन हमें भी यहाँ रहना पसंद नहीं होगा। लग जाएगा कि मुझे कीचड़ में नहीं रहना है। जिसने कीचड़ को जान लिया, वह कैसे रहेगा कीचड़ में। वह कमल की तरह निर्लिप्त हो जाना चाहेगा।

वस्तुतः हमको लाभ का कार्य करना है। लाभ केवल ऊपरी दिखने वाला नहीं हो कि मैंने 50 लगाए और सौ मिल गए। मैंने सौ लगा दिए तो दो सौ मिल गए। 50 हजार लगा दिए तो एक लाख मिल गए। ज्यादा कमा लिया तो साथ क्या ले जाओगे ? साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है। साथ जाने वाला कुछ नहीं है तो धन कमाने से क्या फायदा हुआ ? विचार करें कि हमारा कितना समय व्यर्थ में गया व जा रहा है, हम कितने समय को गवाँ चुके हैं।

बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेह...

जो बीत गया उसको रोने से फायदा नहीं है कि मेरे इतने साल चले गए। रो-रोकर जो समय हाथ में है, उसे भी गवाँ रहे हो, अब तो कुछ करने का विचार कर लो। सरदी थी तो रजाई ओढ़ रखी थी, किंतु अब तो सरदी निकल गई। सरदी निकलने के बाद भी रजाई ओढ़े रहने से कैसे काम चलेगा! समझ नहीं होने से अब तक अज्ञान की रजाई ओढ़ रखी थी। अब मुझे ज्ञान हो गया तो मैं उस रजाई को क्यों ओढ़े रखूँ!

हम शांतिलाल-आशा को सुन रहे हैं। उनके जीवन के प्रसंगों पर भी हम विचार करेंगे।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

एक होता है अधिकार और एक होता है कर्तव्य। जब दिमाग में अधिकार की बात आती है तो सब मुझे गुणहीन लगते हैं। तुच्छ लगते हैं। सभी में हीनता के दर्शन होते हैं। जब मेरी दृष्टि कर्तव्य पर जम जाएगी तो ज्ञात होगा कि मुझे क्या करना चाहिए। उस समय अमीरी और गरीबी बाधक नहीं बनेगी।

कोरोना काल चला। बहुत-से लोगों ने उपकार किए। उन्होंने घर से ही पैसे लगाए हों यह जरूरी नहीं है, किंतु वे काम करते रहे। काम करते रहे तो पैसे भी आते रहे।

पैसे आते रहे या नहीं? आते रहे

मैंने सुना है यहाँ मेवाड़ में श्रीनाथ जी हैं। कहाँ पर हैं?

नाथद्वारा मैं हूँ।

वहाँ देने वाले भी श्रीनाथ जी और लेने वाले भी श्रीनाथ जी।

किसके नाम से आता है और कौन देता है?

(लोग बताते हैं- श्रीनाथ जी के नाम से आता-जाता है)

देने वाले भी श्रीनाथ जी और लेने वाले भी श्रीनाथ जी। यहाँ एक भाव आया कि मैंने जो कमाया श्रीनाथ जी के प्रताप से कमाया।

किसके प्रताप से कमाया? श्रीनाथ जी के प्रताप से कमाया

अब मैं दे रहा हूँ तो देने वाला कौन है? श्रीनाथ जी देने वाले हैं।

आशा-शांतिलाल के पास विशेष धन नहीं था। रोज कुआं खोदने और पानी पीने जैसी स्थिति थी। पानी संग्रह करने की टंकी नहीं थी उनके पास। उनके जीवन की दशा ऐसी थी कि जिस समय जरूरत पड़ती उसी समय कुएं से पानी खींचो और पीयो। यह जरूर था कि दोनों प्रसन्न रहते थे। कुंठित नहीं थे। उनके जीवन में सदाबहार प्रसन्नता बनी रहती थी। सास-ससुर की सेवा करने से आशा को प्रसन्न रहने का आशीर्वाद मिला था।

लोग कहते हैं कि बाबजी, आपका आशीर्वाद चाहिए।

संत किसी को क्या आशीर्वाद देंगे! और संतों का आशीर्वाद किसलिए चाहते हो! पाप बढ़ाने के लिए चाहते हो या धर्म बढ़ाने के लिए!

(लोग कहते हैं- धर्म बढ़ाने के लिए चाहते हैं)

झूठ मत बोलना! सामायिक में बैठे हो।

किसलिए चाहते हो?

कोटि में एक केस अटका हुआ है। केस सच है कि झूठा है!

कुछ वर्षों पहले रतलाम चातुर्मास कर रहा था। एक भाई आया और बोला, लड़की की शादी की थी, वहाँ सही जम नहीं रहा है। परिस्थिति बड़ी विचित्र बनी हुई है। समझौता करने का उपाय कर रहे हैं। उसने कहा कि हम चाहते हैं हमारा पैसा हमको वापस मिल जाए, वह भी नहीं मिल रहा है।

मैंने कहा, इसमें हम क्या करें! हम लेना-देना में भाग नहीं लेते।

उन्होंने कहा कि बकील के पास गया तो उसने कहा कि ऐसा लिख दो कि हमें बहुत हैरान किया, बहुत परेशान किया। मैं ऐसा झूठ कैसे लिखूँ। झूठ लिखने का मन नहीं हो रहा है।

केस का मतलब है कि कुछ बातें झूठी लिखी जाएंगी। झूठी लिखी जाएंगी या नहीं?

(लोग कहते हैं- लिखी जाएंगी)

एकदम झूठ नहीं। नमक की रोटी नहीं चलती। गेहूँ की रोटी में नमक चल जाएगा, किंतु कोई नमक की रोटी बनाना चाहे तो नहीं बनेगी। कोई नमक की रोटी खाना चाहे तो नहीं बना पाएगा। नमक की रोटी बनेगी ही नहीं तो

खाएगा कैसे। वैसा ही है, एकदम झूठ नहीं चलता है। झूठ को भी किसी न किसी का सहारा चाहिए। झूठ को भी सत्य का सहारा चाहिए। झूठ भी सत्य की आड़ में चलता है। मुँह छुपाकर चलता है।

मैंने उनसे कहा कि हम इसमें कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। जो लोग समाज में मुख्य हैं, उनसे आप बातचीत करें। हम लेने-देने की बात नहीं करते। हम यह बात नहीं करते कि उसका रहा हुआ उसको दे दो।

पैसे बढ़ाने के लिए आशीर्वाद लेते हो या दान बढ़ाने के लिए आशीर्वाद लेते हो कि म.सा. ऐसा आशीर्वाद दो कि मेरा सारा पैसा निकल जाए।

ऐसा आशीर्वाद लो कि एक भी पैसा मेरे पास नहीं रहे, आरंभ-परिग्रह छूट जाए। ऐसा आशीर्वाद शायद आपको नहीं चाहिए।

ऐसा आशीर्वाद मिलने लगे तो म.सा. के पास आना बंद हो जाएगा।

ऐसा आशीर्वाद किस-किस को चाहिए?

ऐसा आशीर्वाद चाहिए क्या कि फैकट्री एक की दो लगा दो!

आरंभ-परिग्रह बढ़ाने के लिए म.सा. आशीर्वाद देंगे क्या? यदि दे दिया तो दोष का भागी कौन बनेगा?

दोष का भागी म.सा. ही बनेंगे। कई बार लोग बोलते हैं, मैं चुप-चाप बैठ जाता हूँ। हालांकि सुनना भी नहीं चाहिए, किंतु सुनना पड़ जाता है। हम जवाब क्या दें!

एक भाई डब्बा खेलता था। उसमें नुकसान हो गया। अब मुझसे उपाय पूछता है। अरे, जब खेला तब मुझसे पूछा क्या कि मैं जा रहा हूँ खेलने के लिए। खेलने से पहले मुझसे इजाजत ली क्या! अब कहता है कि मैं कुछ करूँ। पहले पूछना चाहिए था था! इतनी श्रद्धा-भक्ति थी तो पहले ही पूछना था कि मैं डब्बा खेलने जा रहा हूँ, पैसे लगाने जा रहा हूँ।

नाना गुरु एक संत के पास दर्शन करने के लिए गए। संत ने कहा, भोलिया कहाँ जा रहा है, क्या मिलेगा साधु बनने से! पुण्यवान जीव है, ले मैं यह नम्बर देता हूँ, चला जा मुम्बई, धन की वर्षा हो जाएगी। बात उन्होंने किस आशय से कही, मैं नहीं जानता। उन्होंने परीक्षा के लिए कहा या हकीकत में

कहा, यह मैं नहीं कह सकता हूँ। समीक्षा करने का मुझे अधिकार नहीं है।

साधु ऐसा कहे तो पाप का काम है या पुण्य का काम ?

(लोग कहते हैं – पाप का काम है)

साधु ऐसा आशीर्वाद देगा तो क्या होगा ? पानी में आग लगाने जैसा होगा।

खैर, आशा ने सास-ससुर की सेवा दिल से की। सास-ससुर के आशीर्वाद से आशा-शांतिलाल का जीवन खुशहाल था।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. अपने जीवन के अंतिम समय में उदयपुर में विराज रहे थे। स्वास्थ्य की अनुकूलता नहीं थी। शासन की व्यवस्था का सूत्रपात भी करना था। श्रमण संघ से अलग हुए थोड़ा समय ही हुआ था। वृद्ध साधु-साध्वी रत्नों के सेवा की व्यवस्था करनी थी। बीकानेर में वृद्ध सतियों की सेवा जमानी थी। किन्हीं से कहा तो उन्होंने कहा कि म.सा. अभी हम सेवा में रहना चाहते हैं। जैसा मैंने भायवान महासती पेपकंवर जी म.सा. से सुना-जाना। वे बता रही थीं कि आचार्य श्रीजी ने मुझसे कहा कि पेप जी आप क्या कहते हो ? गुरुदेव आप ने कह दिया आप क्या कहते हो, मैं क्या कहूँ आप जो कहो वही सही है।

अभी कुछ दिन पहले अनुराग श्री जी म.सा. बता गए कि छोटी-छोटी सतियां सेवा में पधारी थीं। एकसीडेंट होने से श्री जयन्त श्री जी म.सा. का चलना-फिरना कठिन हो गया। मुक्ता श्री जी के भी शारीरिक तकलीफ है, फिर भी साध्वियों को संभालने के लिए तत्पर रहती हैं। किसी भी साध्वी को थोड़ी-सी भी तकलीफ हो जाए तो वे तत्पर खड़ी मिलेंगी। श्रीकांता श्री जी म.सा., रंजना श्री जी म.सा. आदि ने लम्बे समय तक शासन की सेवा की है। उनकी सेवार्थ पधारने वाली साध्वी रत्नों को उन्हें साता पहुँचाने की भावना होनी ही चाहिए। जो भी महासतियां जी सेवा में जाती हैं, मनोभाव से सेवा करती हैं। बीकानेर में विराजित सतिवर्याओं की सेवा व्यवस्था भी लम्बे समय से चलती रही है।

बड़ी-बड़ी साध्वियां सेवा में पधारती रही। सबने अपने कर्तव्य का पालन किया। सेवा व्यवस्था होती है तो किसी को भी आगे बढ़ने की दुविधा

नहीं होती। आगे बढ़ने का भाव रखने वाले सोचते हैं कि हम दीक्षा लेंगे तो आगे व्यवस्था तैयार है। इसीलिए गुरुदेव के शासन में लम्बी आयु वाले भी दीक्षित हुए। उनमें निश्चिंतता थी कि हमारी सेवा हो जाएगी। श्री प्रमोद मुनिजी म.सा. पहले पंजाब में दीक्षित हुए थे। 50 वर्षों तक संयम पाला। वार्धक्य में शरीर स्थूल हो गया। सेवा की समस्या थी। एक शिष्य बना भी पर टिका नहीं, चला गया। शारीरिक सामर्थ्य इतना नहीं था कि वे कुछ पुरुषार्थ कर सके। उन्होंने अपने भाई को सूचना दी। वे उनको बीकानेर लेकर आ गए। घर में खाने के लिए जब उनको थाली परोसी गई तो उन्होंने कहा कि मैं साधु हूँ, मैं पातरे में जीमता हूँ। मुझे साधु जीवन पालना है।

उनके भाई ने कहा, मेरे पास रहो तो मैं सेवा करता हूँ, मैं साधु तो बन नहीं सकता।

उनके भाई गुरुदेव के पास आए और कहा कि ऐसी-ऐसी स्थिति है। उनको दस कदम चलना भी भारी लगता है।

गुरुदेव ने कहा, मैं तो विहार करता हूँ। मेरे गुरुभाई इंद्रचन्द जी म.सा. बीकानेर विराज रहे हैं। यदि आपके भाई को संयम की ललक होगी, तो यथा योग्य सोचा जा सकता है। उनको इंद्र चंद जी म.सा. के पास रखा गया। कुछ समय बाद उनको दीक्षा दी गई। यहाँ आकर वे निश्चिंत हो गए और अपने आपको तप में लगा दिया। 108 आयंबिल और कई तपस्याओं में लीन हो गए। जिनको दस कदम चलने में तकलीफ होती थी वे तीन-चार किलोमीटर चलकर गोचरी लाने में समर्थ हो गए।

सेवा भाव बहुत महत्वपूर्ण है। सेवा करने वाला निष्काम भाव से सेवा करता है, तो जिसकी सेवा करता है, उससे आशीर्वाद मिलेगा। आशीर्वाद देने वाला मुँह से बोले या नहीं किंतु आशीर्वाद प्राप्त होगा।

वही आशीर्वाद आशा और शांतिलाल को प्राप्त हुआ। चाहे घर में अभाव है, किंतु उनके जीवन में सदैव प्रसन्नता है। वस्तुतः प्रसन्नता ही जीवन की आधा है। जीवन का मूल्य है। और प्रसन्नता ही जीवन की कमाई है। हमने प्रसन्नता प्राप्त कर ली, तो चाहे कैसी भी स्थिति हो प्रसन्नता सदाबहार रहेगी।

चाहे सुख में हों या दुख में, शत्रु के बीच में हों या भाई के बीच, योग

हो या वियोग हम समाधि में रहेंगे। जिसने सदाबहार प्रसन्नता प्राप्त कर ली, समझ लो उसने मनुष्य जीवन का लाभ उठा लिया। जो अपने जीवन में सदाबहार प्रसन्नता प्राप्त कर लेता है, उसका जीवन धन्य-धन्य बन जाता है। हम भी अपना लक्ष्य बनाएं कि हम सदाबहार प्रसन्नता से जीएंगे।

मनुष्य जीवन मिला है तो लाभ का काम करना है या नुकसान का ?

(लोग कहते हैं- लाभ का काम करना)

परम लाभ है मोक्ष। उसकी प्राप्ति के लिए हमारा पुरुषार्थ होना चाहिए। ऐसा यदि हमारा पुरुषार्थ बनेगा तो हम धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

21 जुलाई, 22

9. तन्मय याजा की साधना

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...

संभव नाथ भगवान की सेवा मतलब पर्युपासना सभी करें। पर्युपासना का तरीका भी हमें पता होना चाहिए।

उपासना की विधि क्या है ?

अभी एक शिविर लगेगा धार्मिक क्रिया विशुद्धि शिविर। हमने अपनी धार्मिक क्रिया में न जाने क्या-क्या मिला दिया। कई बार अपने मन से ही कुछ न कुछ बात मिला देते हैं। कोई बात जोड़ देते हैं। उदाहरण के रूप में संवत्सरी का प्रतिक्रमण चल रहा है। बीस लोगस्स का ध्यान करना है। लोग कहते हैं कि सबको लोगस्स नहीं आता है, इसलिए एक आदमी लोगस्स सुना दे तो सबका ध्यान हो जाएगा। सबका ध्यान तो हो जाएगा पर जो लोगस्स बोलेगा उसका ध्यान होगा क्या ?

नहीं होगा।

फिर यह परम्परा क्यों चालू की गई। कई जगह पर चालू की गई है। देखा-देखी हम भी करने लगे। इससे क्या होगा ?

‘देखा-देखी साधे जोग छीजे काया बधे रोग’

कई लोग देखा-देखी कुछ भी अपना लेते हैं। वे सोचते नहीं कि इसके पीछे क्या रीजन है। ऐसा करना चाहिए या नहीं! एक समय तपस्या की बोलियाँ लगने लग गई थीं। मासखमण की तपस्या का सम्मान करना है लगाओ बोलियाँ, कौन ज्यादा बोली लगाता है। बेला, तेला, पंचोला, अठाई, पंद्रह की बोलियाँ लगती थी। इस बात को 20-25 वर्ष से ज्यादा हो गए। अभी भी कई जगहों पर बोलियाँ लगती होंगी। इसके पीछे लोगों की सोच थी कि तपस्या बहुत ज्यादा हो जाएगी।

ऐसे तपस्या बढ़ जाएगी ?

खेत में घास तो बहुत ऊग जाएगी, किंतु उसका परिणाम होगा कि फसल नहीं होगी। फसल नहीं हुई तो मेहनत सार्थक गई या व्यर्थ ? व्यर्थ गई।

पौधे देख-देखकर खुश हो रहे हैं कि पौधे बहुत ऊँचे हो गए, किंतु उनमें दाने नहीं पड़े। वैसे ही तपस्या देख-देखकर खुश हो रहे हैं।

बताओ, तपस्या का उद्देश्य क्या होता है ?

तपस्या का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए कि मेरे कर्मों की निर्जरा हो। मेरी आत्मा की शुद्धि हो। कर्मों की निर्जरा का मतलब ही है आत्मा की शुद्धि। कपड़ों पर लगे मैल को धोने के लिए पानी और साबुन का प्रयोग किया जाता है। कपड़ा जितना मैला होगा, साबुन का प्रयोग उतना ही ज्यादा करना पड़ेगा। साबुन लगाने से कपड़ा साफ हो जाता है। वैसे ही आत्मा पर लगे कर्मों के मैल को हटाने के लिए तपस्या की आवश्यकता होती है।

‘तवसा निजरिज्जई’

तपस्या करने से कर्मों की निर्जरा होती है। तपस्या, समभाव से होनी चाहिए। उसके पीछे कोई आकांक्षा, अभिलाषा नहीं होनी चाहिए।

श्रीमद् भगवती सूत्र में एक चर्चा आई है कि एक मुनि आहार कर रहा है। वह प्रतिदिन आहार कर रहा है। निष्काम भाव से आहार कर रहा है। जैसा आहार आया, वैसा खा लिया। कोई क्रिया नहीं, कोई प्रतिक्रिया नहीं।

भगवान से पूछा गया, भगवन् वे मुनि उस प्रकार का आहार करते हुए जितने कर्मों की निर्जरा करते हैं, क्या उतनी कर्म निर्जरा एक नारकी का जीव एक वर्ष में कर सकता है, अनेक वर्षों में कर सकता है अथवा सौ वर्षों में कर सकता है ?

भगवान ने कहा, ‘णो इण्टु समटु’

अर्थात् ये अर्थ समर्थ नहीं है। उसी प्रकार उपवास की बात पूछ ली कि भगवन् ! श्रमण निर्ग्रंथ चतुर्थ भव में जितने कर्मों की निर्जरा करता है एक नैरयिक जीव उतने कर्मों की निर्जरा एक सौ वर्षों में, अनेक सौ वर्षों में या एक हजार वर्षों में कर सकता है ?

भगवान ने कहा ‘नो इण्डे समडे’ यानी कि ये अर्थ समर्थ नहीं है।

कर्मों की निर्जरा तब होगी जब निष्काम भाव होगा। कोई किसी आकांक्षा से तपस्या करेगा तो उसे उसका वैसा फल नहीं मिलेगा। कोई इसलिए तपस्या कर रहा है कि तपस्या करने से देवलोक का सुख मिलेगा, तो उस तप का जो यथार्थ फल मिलता है वैसा फल नहीं मिलेगा। वैसा लाभ नहीं मिलने का मतलब है कि उपवास का जैसा लाभ एक मुनि पाता है, वैसा लाभ उसको नहीं होगा।

हमने बहुत बार सुना है मगध सप्राट श्रेणिक की वंदना के विषय में। उसने भगवान महावीर सहित उनके सभी साधुओं को वंदना की, जिससे उनके छह नारकी के बंधन टूट गए। यह मालूम होने पर मगध सप्राट श्रेणिक ने सोचा कि एक नारकी भी क्यों बाकी रहे, एक बार और कर लेता हूँ। यह सोचकर जो वंदना की जाएगी, उसका वैसा लाभ क्या मिलेगा ?

उसका लाभ नहीं मिलेगा।

‘रायां रा भाव राते ही गया’

वो चीज चली गई। जो भाव पहले थे, जो उद्घास पहले था, वह चला गया। पहले किसी प्रकार की कामना नहीं थी। अब उसमें कामना घुस गई। कामना घुस गई तो वह क्रिया सही नहीं रह पाई।

गुरु नानक जी के विषय में बताया जाता है कि एक बार वह किसी नवाब के घर मेहमान बनकर गए। शुक्रवार का दिन था। नवाब का नमाज का समय हुआ। नवाब ने नानक से कहा— मैं नमाज पढ़कर वापस आता हूँ।

नानक जी ने कहा मैं चलता हूँ नमाज पढ़ने।

नवाब ने कहा आप ?

नानक जी ने कहा आप पढ़ोगे तो मैं भी पढ़ूँगा।

जब नानक जी नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद जाने लगे तो लोगों में खुसर-फुसर होने लगी कि नानक जी मुसलमान बनने जा रहे हैं। चर्चाएं तो बहुत हो ही जाती हैं। उसका परिणाम हम जानें या नहीं जानें, रीजन जानें या न जानें किंतु चर्चाएं चालू हो जाएंगी। चर्चा होने लगी कि नानक जी मुसलमान हो

रहे हैं, नानक जी मुसलमान हो गए। वे नमाज पढ़ने के लिए मस्जिद चले जा रहे हैं। नमाज पढ़ी जा रही थी। नानक जी खड़े के खड़े रह गए। ना झुके, ना बैठे, ना कुछ किया।

नवाब को बड़ा गुस्सा आया कि अपने आपको संत कहता है। मेरे साथ शर्त की थी कि तुम नमाज पढ़ोगे तो मैं भी नमाज पढ़ूँगा, किंतु आखिर काफिर का काफिर ही है। नवाब की नमाज पूरी हुई तो वे बड़े तैश में बात करने लगे कि तुम अजीब आदमी हो। तुमने जो वचन दिया उसका पालन नहीं किया।

नानक जी ने कहा, किस वचन का पालन नहीं किया ?

नवाब ने कहा, तुमने कहा था कि तुम नमाज पढ़ोगे तो मैं भी नमाज पढ़ूँगा। मैंने नमाज पढ़ ली, किंतु तुमने नहीं पढ़ी।

नानक देव कहने लगे कि गलत, तुमने नमाज पढ़ी ही नहीं। तुमने यदि नमाज पढ़ी होती और मैं नहीं पढ़ता तो तुम्हारा कहना सही होता कि मैंने नमाज पढ़ी और आपने नहीं पढ़ी।

नवाब ने कहा, तुम कैसी बात कर रहे हो ! इतने लोग साक्षी हैं, गवाह हैं कि मैंने नमाज पढ़ी थी। मैं नमाज पढ़ रहा था। ये इतने गवाह हैं, इनसे पूछ लो मैं नमाज पढ़ रहा था कि नहीं !

नानक जी ने कहा, मैं इनकी गवाही नहीं मानता। मैं देख रहा था कि आपका मन तो कंबोज के घोड़े खरीद रहा था।

उसी दिन सुबह नवाब का घोड़ा मर गया था। घोड़े से नवाब की पहचान थी। लोग उसे निकलते हुए देखते तो कहते, क्या नवाब साहब है। इस प्रकार की प्रशंसा सुनने के लिए नवाब को घोड़ा रखना जरूरी था। नानक देव ने आगे कहा कि तुमको लग रहा कि था कि मौलवी तुम लोगों को नमाज पढ़ा रहा था जिसको तुम साक्षी बनाना चाह रहे थे, किंतु वह मन से तो खेत की कटाई कर रहा था। वह सोच रहा था कि खड़ा खेत है, कहीं मजदूर नहीं मिल रहे। वर्षा हो गई तो बहुत बड़ा नुकसान हो जाएगा। वह खेत-खलिहान में लगा था और ऊपर से तुमको कह रहा था कि नमाज पढ़ो। ऐसे में सचमुच नमाज पढ़ी जा रही थी ? तुम स्वयं नमाज में नहीं थे। तुम्हारा मौलवी भी नमाज में नहीं

था।

खैर, ‘धार्मिक क्रिया विशुद्धि शिविर’ लगने वाला है। उसमें क्या बताया जाएगा ?

हम सब जितने भी सामायिक में बैठने वाले हैं, व्याख्यान में बैठने वाले हैं, हम बैठे कहाँ पर हैं और हमारा मन कहाँ पर है ?

व्याख्यान में अनुकूल विषय आता है, समझने का विषय आता है, तब तो हमारा मन लीन हो जाता है और कभी कठिन विषय आ जाता है, शास्त्रों की व्याख्या का विषय आ जाता है तो बार-बार नींद की झपकी आती है। पास वाला घुदा लगाता है कि अरे, नींद मत ले। उस समय विचार होगा कि कहाँ आ गए। यहाँ कहाँ फँस गए। यह शिकायत हो जाती है। हम भी बैठे हुए हैं सामायिक में, धर्म क्रिया में, उपासरे में, व्याख्यान में किंतु हमारा मन कहाँ है ? हमारा मन कहीं दुकान में चला जाता है, तो कभी किसी रिलेशन को निभाने चला जाता है। ऐसा होता है कि हमारा मस्तिष्क कहीं चला जाता है, मन कहीं घूमता है और हम यहाँ बैठे रह जाते हैं।

ऐसी क्रिया शुद्ध हो पाएगी क्या ? नहीं हो पाएगी

वह क्रिया शुद्ध कैसे होगी ? क्रिया को यदि शुद्ध करना है तो उसके साथ अपने भावों को जोड़ना होगा। तिक्खुतो के पाठ से बंदना की जाती है। उस समय हाथ किधर से घुमाना है ? जैसे घड़ी का काँटा घूमता है, वैसे घुमाना है या कैसे घुमाना है ? अपना-अपना देखना कि मैं हाथ किधर घुमा रहा हूँ। हाथ घुमा भी रहा हूँ या नहीं घुमा रहा हूँ। कुछ लोग हाथ घुमाना चालू करते हैं तो मत्थण्ण बंदामि तक हाथ घुमाते ही चले जाते हैं।

माथा हिलाने की बात नहीं कर रहा हूँ। हाथ हिलाने की बात कह रहा हूँ। मैं यहाँ आपकी गवाही नहीं लेना चाहता। सर्टिफिकेट नहीं लेना चाहता हूँ। जो हाथ घुमाते हैं वे अपनी परीक्षा स्वयं करें। दूसरे किसी को परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है। दूसरा कोई सर्टिफिकेट देता है तो उसके देने से मोक्ष नहीं हो जाएँगे। चले जाएँगे क्या ?

(लोगों ने कहा - नहीं जाएँगे)

हैदराबाद के कांकरिया परिवार के एक श्रावक ने डॉक्टर से चेकअप

कराया। डॉक्टर ने कहा कि कोई बीमारी नहीं है, आप स्वस्थ हैं। सुगर, हार्ट, बी.पी. सब ठीक है। कुछ ही दिनों में उनका देहांत हो गया। डॉक्टर की जाँच किस काम आई!

डॉक्टर से कोई जाँच कराए और डॉक्टर कहे कि सब ठीक है, नॉर्मल है और अगले दिन रोगी का राम नाम सत हो गया तो जाँच का क्या मतलब! इसलिए सर्टिफिकेट देने मात्र से हमारा कल्याण नहीं हो जाएगा। कोई सर्टिफिकेट देता है कि तुम बड़े धर्मात्मा हो, तो हम धर्मात्मा बन जाएं, यह जरूरी नहीं है। हमारा मन यदि हमें सर्टिफिकेट देता है तो समझ लेना कि सही सर्टिफिकेट है।

‘मन छाने चोरी नहीं’

यदि कोई आदमी चोरी कर रहा है तो उसका मन जानता है या नहीं?
(लोगों ने कहा - जानता है)

कोई आदमी बेर्इमानी कर रहा है तो उसका मन जानता है या नहीं?
(लोगों ने कहा - जानता है)

उसका मन जानता है कि मैं बेर्इमानी कर रहा हूँ। मन की जानकारी में होता है। कोई भी अपने मन से छुपाकर कोई काम कर सकता है क्या?

(लोगों ने कहा - नहीं कर सकता)

संभव ही नहीं है कि मन से छुपाकर कोई काम कर पाएँ। सपना देखा जा सकता है, किंतु वह भी मन के माध्यम से होता है। उसमें भी मन लगा होता है। यदि मन लगा नहीं होता तो उठने के बाद सपना लापता हो जाता। उसमें भी हमारा मन लगा होता है। चाहे हम सोए हुए होते हैं, किंतु मन जगा रहता है। वह जल्दी से देख लेता है।

आते हैं नवाब की बात पर। नवाब सोचने लगा कि मैंने मन में सोचा था कि कंबोज घोड़ा खरीदने जाऊँ। विचार तो ऐसा ही चल रहा था। मौलवी भी कहने लगा कि मेरे विचार तो ऐसे ही चल रहे थे।

नानक देव ने कहा कि अब देख लो तुम स्वयं ही नमाज नहीं पढ़ रहे थे, मैंने तो यह शर्त रखी थी कि तुम नमाज पढ़ोगे तो मैं भी पढ़ूँगा। जब तुम ही

नमाज नहीं पढ़ रहे थे तो मैं क्या पढ़ता! इसलिए मैं खड़ा ही रह गया।

आपका बेटा कहता कि आप सामायिक करो तो मैं भी करूँगा। आपने कहा कि मैं सामायिक करता हूँ, तुम भी आ जाओ। आप सामायिक करने बैठ गए, किंतु आपका बेटा नहीं बैठ रहा है। बेटा सामायिक करने नहीं बैठा तो आपका ध्यान उसकी तरफ चला गया कि इसने कहा था कि आप सामायिक करो तो मैं करूँ। इसके कहने से मैंने तो सामायिक कर ली। भले ही उसको सामायिक करवाने के लिए आप सामायिक करने बैठ गये पर सामायिक हो तो रही है ना? उस सामायिक का मूल्य क्या मिलेगा?

थोड़ी देर मन में सोचते रहेंगे फिर हो सकता है इशारे से कहेंगे कि क्या हुआ तुम सामायिक नहीं ले रहे हो!

जब आप सामायिक में चल गए तो ये विचार ही नहीं उठने चाहिए कि वह सामायिक क्यों नहीं कर रहा है किंतु हमारे विचार चले जाते हैं। जाते हैं या नहीं?

(लोगों ने कहा- चले जाते हैं)

कई लोग प्रश्न करते हैं म.सा. सामायिक लेकर बैठते हैं और नल आ गया पानी का। नल खुला रह जाने से पानी बहता जा रहा है तो क्या करें? क्या करना चाहिए? पानी बहता रहेगा तो बहुत जीवों की हिंसा होगी। बंद करूँगा तो हिंसा रुक जाएगी। कइयों के मन में यह बात चलती है। इसी प्रकार दूध वाला आकर भोंपू बजा रहा है। घर वाले नहीं उठ रहे हैं तो आपका मन क्या कह रहा होता है?

सोचो, कहाँ है सामायिक ?

इसका मतलब यह नहीं है कि सामायिक करना ही नहीं। सामायिक करना किंतु शुद्ध सामायिक करना। शुद्ध सामायिक का प्रयत्न करना, अभ्यास करना। एक दिन में सारा अभ्यास सिद्ध नहीं हुआ करता। हम अभ्यास नहीं करें और मुहपत्ती बाँधकर बैठ जाएँ तो वह मजे की बात नहीं है। मेरे भीतर जागृति रहनी चाहिए कि मैं सामायिक में हूँ। सामायिक के कितने अतिचार बताए गये हैं?

सामायिक के पाँच अतिचार बताए गये हैं।

कौन बताएगा पाँच अतिचार ?

मन, वचन, काया की अशुभ प्रवृत्ति की हो। सामायिक की स्मृति न रखी हो। समय पूर्ण हुए बिना सामायिक पारी हो।

पाँच अतिचारों में एक अतिचार है कि सामायिक की स्मृति नहीं रही हो। अतिचार है कि नहीं ?

हमें यह स्मृति रहनी चाहिए कि मैं सामायिक में हूँ। दूसरी बात ध्यान में ही नहीं आना। दूसरी तरफ ध्यान जाने का मतलब हुआ कि मैं सामायिक से बाहर आ गया। हमारा अभ्यास शुद्ध सामायिक का होना चाहिए। शुद्ध सामायिक एक दिन में ही हो जाएगी, यह जरूरी नहीं है, किंतु निरंतर हम साधने का प्रयत्न करेंगे तो मन, वचन, काया निश्चित सधेंगे। कोई कारण ही नहीं कि मन, वचन, काया नहीं सधे।

पूणिया श्रावक की सामायिक भी पहले दिन ही वैसी हो गई थी क्या ?

पहले दिन ही वैसी सामायिक नहीं हुई। अभ्यास करते-करते वैसी सामायिक हो पाई। कोई साधु बन गया तो एक महीने में उसका कितना विकास हुआ, दो महीनों में कितना विकास हुआ, तीन महीनों में कितना विकास हुआ ? यह बताया गया है कि कोई 12 महीनों तक यदि विशुद्ध साधुत्व का पालन करता रहे तो उसकी लेश्या विशुद्ध हो जाती है। उसकी लेश्या अनुत्तर विमान से भी शुद्ध हो जाती है। यह विकास पहले ही दिन नहीं हो गया।

मुनि गजसुकुमाल जिस दिन दीक्षित हुए उसी दिन उन्हें मोक्ष हो गया। उनको 12 महीनों तक इंतजार नहीं करना पड़ा।

क्यों नहीं करना पड़ा ?

उनके भावों का इतना वेग बना कि उनकी लेश्याएँ विशुद्ध होती गईं और उन्हें अलेश्य अवस्था तक पहुँचा दिया। यह विशेष अवस्था है। यह अपवाद थे। यह विशेष अवस्था सबके लिए घटित नहीं होती। सामान्य अवस्था सबके लिए घटित हो सकती है। अतः एक दिन में ही सब जीव अनुत्तर विमान के देवों के समान विशुद्ध लेश्यी नहीं हो पाते, किंतु अपनी क्रिया, अपने विचारों को, अपने भावों को, अपने अध्यवसायों को शुद्ध करते हुए, निर्मल करते हुए, पवित्र करते हुए एक दिन ऐसा आएगा कि अनुत्तर

विमान से भी अधिक विशुद्ध लेश्या हो जाएगा।

क्या सामायिक में हमारा मन नियंत्रित नहीं हो पाएगा ?

हकीकत यह है कि हम उसका लक्ष्य बनाते ही नहीं हैं। हम केवल सामायिक की क्रिया पर ध्यान देते हैं। 48 मिनट बैठे हैं। मन, वचन, काया को साधने का हमारा लक्ष्य शायद कम रहता होगा। यदि मन साधने की भावना और लक्ष्य होता तो सामायिक से उठने के बाद मन में सावद्य भाव जल्दी से पैदा नहीं होते। जल्दी से यह भाव पैदा नहीं होता क्योंकि मैंने अपने आपको साधा है। अपने आपको साधेंगे तो एक घंटे की साधना का असर 23 घंटे चलेगा।

आप मोबाइल को चार्ज करते हैं। चार्ज करने के बाद कितने घंटे मोबाइल काम करता है, मुझे पता नहीं है। आप जानते हो कि कितने घंटे तक चलता है।

(एक व्यक्ति ने कहा - 12 से 15 घण्टे)

मुझे नहीं पता किंतु आप कह रहे हो 12 से 15 घंटे चलता है। हमारे मन को हमने चार्ज किया तो मन कितने घंटे तक शांत है? कितने घंटे तक समाधि में है? सामायिक का असर हमारे मन पर कितने समय तक रहता है?

यदि असर नहीं रहता है तो निश्चित है कि हमने चार्जर सही नहीं लगाया। हमने मोबाइल रखा पर मोबाइल चार्जर नहीं लगाया। मोबाइल से वह अलग रह गया। मोबाइल अलग रह गया तो फोन चार्ज होगा क्या?

(लोगों ने कहा - नहीं होगा)

और हमारा मन अलग रह गया तो...

(लोगों ने कहा - चार्ज नहीं होगा)

फिर हमारी सामायिक की सार्थकता क्या हुई?

बोल देंगे, ठीक है म.सा. आज से सामायिक करनी बंद।

सामायिक बंद करने से सिद्धि हो जाएगी?

एक बच्चा स्कूल में गया। उसे पढ़ाई समझ में नहीं आई और वह फेल हो गया। अब वह कहे कि मैं क्या करूँ स्कूल जाकर, मैं तो फेल हो गया, अब

स्कूल जाने में फायदा क्या है तो वह एम.ए. बी.ए. पास हो पाएगा क्या ?

स्कूल नहीं जाएगा तो एम.ए. बी.ए. पास नहीं होगा। हो सकता है बाहर रहकर एम.ए. बी.ए. कर ले, किंतु उसके लिए भी पढ़ाई करनी पड़ेगी। अभ्यास करना पड़ेगा।

वह कहे कि मैं सालभर पढ़कर भी फेल हो गया, तो फिर पढ़ाई करके क्यों समय बरबाद करूँ।

वैसे ही हम सोच लें कि सालभर सामायिक की, किंतु अभी भी मन-वचन-काया को नहीं साध पाया फिर क्या मतलब सामायिक का !

साधु जीवन में एक परीषह बताया गया है कि मैं इतने समय तक साधु जीवन की साधना करता रहा पर मुझे मिला तो कुछ भी नहीं।

क्या मिलना चाहिए था ? कोई प्रमाण पत्र मिलना चाहिए था ? कोई सर्टिफिकेट मिलना चाहिए था ? क्या मिलना चाहिए था ? साधु जीवन की आराधना करते हुए क्या नहीं मिलता ? यदि कुछ नहीं मिल पाया तो उसमें गलती किसकी रही ? गुरु ने अध्ययन करा दिया, किंतु मेरा दिमाग कहीं और काम कर रहा था। यह किसकी कमी थी, किसका दोष था ? वही हाल हुआ कि चार्जर नहीं लगा तो पॉवर कैसे आएगा।

आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी म.सा. ने एक बहुत सुंदर बात कही। उन्होंने कहा कि भगवान महावीर की धर्म प्रज्ञसि-उपदेश ‘पण्णा समिक्ख्यए धार्म’ के अनुसार अपने धर्म की समीक्षा करो कि मैं कितना ठीक हूँ! विचारों की, बुद्धि की समीक्षा करो कि मैं कितना सही हूँ! जहाँ गलत लगे वहाँ सुधार करना चाहिए। यह नहीं कि जब गलत हूँ तो सुधार क्या करना। यदि हम ऐसा सोच लें तो सुधार नहीं कर पाएंगे। हमारी क्रिया हमारे मन को सांत्वना देने वाली होनी चाहिए। हमारे मन को समाधि देने वाली होनी चाहिए। हमारे मन को सुकून देने वाली होनी चाहिए। जब मैं साधना से उटूँ तो मुझे लगना चाहिए कि आज बहुत तृप्ति है। बहुत संतुष्टि है। बहुत आनन्द है। आनन्द का अनुभव हमें होते रहना चाहिए।

शांतिलाल अपने माता-पिता और आशा सास-ससुर की सेवा में

तल्लीन है। आशा के मन में यह नहीं हुआ कि सास-ससुर की इतनी सेवा की, किंतु मुझे क्या मिला! मिला भी तो आशीर्वाद मिला। आशीर्वाद की जगह धन मिलना चाहिए था। पर ध्यान रखना सच्चा आशीर्वाद धन मिलना नहीं है। सच्चा आशीर्वाद है कि तुम्हारा मन शांत हो जाए। मन की अशांति दूर हो जाए।

सच्चा आशीर्वाद क्या है?

मेरे मन की मुराद पूरी होना सच्चा आशीर्वाद नहीं है।

एक बच्चे के हाथ में अफीम की डली है। वह अफीम खाना चाहता है। उसके पिता जी उसके हाथ से अफीम की डली को छीनना चाहते हैं। बच्चे ने मुझी टाइट बंद कर ली। बच्चा माना नहीं तो क्या उसके पिता उसे खाने दें?

(लोगों ने कहा- नहीं खाने देंगे)

पिता अफीम की डली को हटाने की कोशिश करेगा। बच्चे के मन की मुराद है कि मैं अफीम की डली खा लूं, किंतु उसके पिता जान रहे हैं कि अफीम की डली खाना मृत्यु का कारण हो सकती है, इसलिए उसके पिता उसको खाने नहीं देंगे। वैसे ही जो अहित करे वह सच्चा आशीर्वाद नहीं है। आशीर्वाद का अर्थ होता है कि जिससे मेरा हित होने वाला हो। जिससे हित सधे, वह सच्चा आशीर्वाद होगा। धन मिलना आशीर्वाद की बात नहीं है। मन शांत रहना चाहिए। कितनी भी कठिनाइयाँ आ जाएँ, विपरीत परिस्थितियाँ आ जाएँ, समस्याएँ आ जाएँ, मेरे मन में खिन्नता, निराशा नहीं आनी चाहिए। मेरा मन शांत रहना चाहिए। सच्चे आशीर्वाद का यह परिणाम मिलता है।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

शांतिलाल के पिता बीमार हुए। काफी उपचार किया गया किंतु बीमारी ठीक नहीं हुई। बीमारी का इलाज हो सकता है, किंतु मृत्यु का इलाज नहीं हो सकता। कुछ बीमारियाँ ठीक होने के लिए आती हैं और कुछ बीमारियाँ हमें ले जाने के लिए आती हैं।

वास्तव में देखें तो वह हमारे शरीर को ले जाने के लिए आती हैं। हमें ले जाने की ताकत उसमें नहीं है क्योंकि आत्मा तो अजर, अमर है। बीमारी या तो हमारे शरीर को ले जाने के लिए आती है या शरीर को पीड़ित करने के लिए

आती है। पर एक बात ध्यान में लेना कि मन से पीड़ित होना या नहीं होना हमारे ऊपर निर्भर है।

दुखी होने के लिए हम खुद बीच में घुस जाते हैं। कितनी भी बीमारी क्यों न हो, हम चाहें तो अपने मन को दुखी होने से बचा सकते हैं। कैसे बचा सकते हैं इसका प्रमाण आपके सामने रखते हैं।

सनत्कुमार चक्रवर्ती के शरीर में 16 महारोग पैदा हो गए। दो-चार नहीं, सोलह-सोलह रोग। वह भी सामान्य रोग नहीं, महारोग पैदा हो गए। आज तो महारोगों पर भी उपचार की प्रक्रिया चालू हो जाती है। एक समय टी.बी. की बीमारी बहुत खतरनाक मानी जाती थी। चिकित्सा विज्ञान ने उस बीमारी को कंट्रोल किया। कैंसर की बीमारी खतरनाक थी। कोई इलाज नहीं था। अब डॉक्टर कहते हैं कि कैंसर हमारी मुट्ठी में है।

लाइलाज क्या है?

कोराना। कोरोना लाइलाज ही था। लगे रहते थे डॉक्टर। जैसा मन हुआ लगा दो इंजेक्शन। दे दो दवाई। इलाज नहीं था तो लाइलाज हो गया।

सनत्कुमार के दीवान ने कहा, राजन अच्छे से अच्छे डॉक्टरों को दिखाते हैं।

सनत्कुमार ने कहा, बस हो गया। मैंने कोई कमी नहीं रखी थी शरीर की साज-सँभाल में। तेल से मालिश करना, व्यायाम करना, यह करना, वो करना। बहुत सार-सँभाल की। बढ़िया से बढ़िया खिलाया, किंतु उसकी चाल ऐसी ही है। अब मुझे इसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।

आत्मा जाग गई म्हारीरे, चेतना जाग गई म्हारी,

पुद्गल संग में फँसी चेतना है तन सून्न्यारीरे।

क्या बोलते हैं चक्रवर्ती सप्राट! क्या बोल रहे हैं सनत्कुमार चक्रवर्ती?

बोल रहे हैं कि इतने समय तक मेरा चेतन सोया हुआ था। मैंने शरीर की खूब सार-सँभाल कर ली, अब मैं थक गया। अब मुझे अपना कल्याण करना है।

आचार्य पूज्य श्री गणेशलाल जी म.सा. इसी उदयपुर में अपने जीवन के अंतिम समय में विराज रहे थे। डॉ. रामावतार और डॉ. शूरवीर सिंह जी ध्यान रखा करते थे। उन्होंने कहा कि म.सा. दवा चेंज करते हैं।

पूज्य गणेशलाल जी म. सा. ने कहा कि डॉक्टर साहब! अब आपको नहीं, मुझे मेरा इलाज करना है। उन्होंने मुनि श्री नानालाल जी म.सा. से संलेखना करवाने को कहा। सजग अवस्था में 29 घंटों तक उनका संथारा चला।

कहने का मतलब है कि जब आदमी जान जाता है, तो कहता है कि अब मुझे शरीर की सार-सँभाल करने की आवश्यकता नहीं है। मन से करो या लोगों के कहने से करो, किंतु इसी में लगे रह गए तो फिर बाजी हाथ से निकल जाएगी।

महासती श्री कमलाकँवर जी म.सा. ने विचार किया कि अब मुझे संथारा लेना है। महासतिवर्याओं ने कहा कि अभी तो आप एकदम ठीक लग रही हैं तो उन्होंने कहा कि नहीं-नहीं, मुझे संथारा लेना है। उन्होंने संथारा लिया। 49 दिनों तक उनका संथारा चला। एक दिन तो संथारा सीझेगा ही। एक दिन तो ऐसा आएगा जब शरीर को कोई रोक नहीं पाएगा।

सनत्कुमार चक्रवर्ती कहते हैं कि मुझे शरीर का कोई सार-सँभाल नहीं करना है। अब मुझे मेरी आत्मा की साज-सँभाल करनी है।

‘बहु बीती थोड़ी रही... थोड़ी भी अब जाय’

बहुत समय हाथ से निकल गया। जितना हाथ से निकल गया उतना वापस मिलेगा क्या? जन्म लेने के बाद जितना समय निकल गया, बहुतों को उतना समय वापस मिलने वाला नहीं है। यह नहीं कह रहे हैं कि सबको नहीं मिलेगा। बहुतों को कह रहा हूँ। बहुतों को वापस जितना समय मिलना चाहिए, उतना मिलने वाला नहीं है। कुछ तो विचार करते हैं कि हम पके पान हैं, कब खिर जाएं पता नहीं। खिर जाने का इंतजार मत करो। यह शरीर खिरे, उससे पहले चेतन को जगा लो।

‘आत्मा जाग गई म्हारीरे, चेतना जाग गई म्हारी,

पुद्ल संग में फँसी चेतना है तन सून्न्यारीरे’

सनत्कुमार चक्रवर्ती जागृत हो गए। उन्होंने कह दिया कि अब मुझे

शरीर का इलाज नहीं कराना। वे साधु बनकर साधना में लग गए।

देवों ने विचार किया कि एक बार और परीक्षा करनी चाहिए। देव, वैद्य का रूप बनाकर सनत्कुमार मुनि के पास गए और कहा कि इलाज करवा लो मुनिराज, हम आपका इलाज करना चाहते हैं।

सनत्कुमार मुनि ने कहा कि मेरे शरीर का इलाज करना चाहते हो या मेरी आत्मा का?

वैद्य ने कहा, मुनिराज मेरे पास आत्मा का इलाज करने की ताकत नहीं है। मैं आपके शरीर को स्वस्थ करने का उपाय कर सकता हूँ।

मुनिराज ने कहा कि शरीर का उपचार अब मुझे नहीं कराना है। अब मुझे मेरी आत्मा का इलाज करना है। शरीर के रोग से मुझे कोई तकलीफ नहीं है। रोग दूर हो या पड़े रहें, मुझे उससे कोई तकलीफ नहीं है।

‘जहां देह अपनी नहीं वहां न अपना कोय’

जब शरीर मेरा नहीं है तो शरीर में आने वाले रोग भी मेरे नहीं हैं। शरीर की बीमारी शरीर को दुखी बना सकती है, किंतु मन को पीड़ित करे, यह जरूरी नहीं है। हम शरीर के साथ मन को देखते हैं, अपने सम्बन्ध को जोड़ते हैं और अपना रिलेशन उसके साथ बनाए रखते हैं तो बहुत पीड़ा होगी। हमने रिलेशन काट दिया तो हमें कोई पीड़ा नहीं होगी।

शांतिलाल-आशा ने बहुत सेवा की, किंतु पिताजी एक दिन स्वर्गस्थ हो गए। जितना इलाज करना था उतना इलाज कराया। पिता ने देखा कि अब इलाज कारगर होने वाला नहीं है तो कहा, बेटा अब मुझे नहीं लगता कि मैं बचूंगा। तुम शांति में रहना, समाधि में रहना और अपने भाई का ध्यान रखना। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी शांतिलाल को सौंप दी और उनका देहावसान हो गया।

निश्चित है कि जो जन्मा है, उसका एक दिन मरण होगा। यह निश्चित है कि जो जन्म लेगा, वो मरेगा। जन्म लेना अनिवार्य नहीं है, किंतु मरना अनिवार्य है। जन्म लेंगे तो मरना ही पड़ेगा, क्योंकि शरीर सदा रहने वाला नहीं है। शरीर पुद्गल है, आत्मा शाश्वत है। शरीर अशाश्वत है। एक समय तक ही साथ रहता है।

शांतिलाल के पिता चले गए। उनके गए हुए थोड़े दिन बीते नहीं कि माता का साया भी सिर से उठ गया। अब सारी जिम्मेदारी शांतिलाल पर आ गई। हालांकि जिम्मेदारी तो पहले से शांतिलाल पर ही थी, फिर भी उनके सिर पर छत्र था। अब शांतिलाल अपनी जिम्मेदारी को ओढ़ने के लिए तत्पर हो रहा है।

आगे क्या स्थिति बनती है, यह अपन समय के साथ विचार करेंगे, किंतु जो भी कार्य करें उसमें तल्लीन हो जाएं, तन्मय हो जाएं। सामायिक करनी है तो सामायिक में तल्लीन हो जाएं। खाना खाना है तो खाना खाने में तल्लीन हो जाएं। जो कार्य करें मन उसी में लगा रहना चाहिए। यदि तीर्थकर देवों की धर्म प्रज्ञसि समझना है तो ‘पंथड़ो निहालुं रे बीजा जिण तणो रे’ की बातें समझनी होंगी। तीर्थकर देवों का मार्ग यही है। भगवान महावीर का मार्ग भी यही है। जो भी कार्य करें उसमें एकमेक हो जाएं। तन्मय हो जाएं। उस कार्य को प्राथमिकता देकर सम्पन्न करें।

ऐसा करने से कोई कारण नहीं कि सामायिक में मन नहीं लगे। साधना, स्वाध्याय, माला में मन नहीं लगे। जहाँ हम रहेंगे हमारा मन हमारे साथ रहेगा। ऐसा नहीं कि शरीर कहीं रहे और मन कहीं और। जहाँ रहें, वहीं मन भी रहे। इस साधना को साधें और अपने आपको धन्य बनाएं। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

10. बोधि हो आरोग्यमय

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...

सेवा करने की विधि जानना जरूरी है। उपासना की विधि जानना जरूरी है।

कैसे की जाए उपासना ? उपासना का तरीका क्या है ? उपासना की विधि क्या है ?

एक है साधना। दूसरा रूप है उपासना और तीसरी अवस्था है आराधना। यह जानना होगा कि साधना का रूप क्या है, उपासना की विधि क्या है और आराधना तक हम कैसे पहुँच सकते हैं ?

एक विद्यार्थी रात-दिन पढ़ता है। रात-दिन पढ़ने के बाद उसने परीक्षा दी। रिजल्ट आया तो वह फेल हो गया। उसके घरवालों को आश्चर्य हुआ कि इतने समय तक पढ़ता था, रात-दिन पढ़ता था, फिर फेल कैसे हो गया !

बताएंगे आप कि वह क्यों फेल हो गया ?

इसलिए फेल हो गया क्योंकि वह कोर्स की पढ़ाई नहीं कर रहा था। वह उपन्यास पढ़ता रहता था। वह रात भर उपन्यास पढ़ने में लगा रहता था इसलिए फेल हो गया। उसका रिजल्ट फेल के रूप में आया ?

उसका रिजल्ट क्या आया ?

(लोगों ने कहा - फेल)

अनुकूल साधना होगी तो हम आराधना के स्तर को प्राप्त कर पाएंगे।

साधना का अर्थ क्या है ?

साधना का अर्थ है मन, वचन, काया को साधने के लिए किया गया

उपक्रम।

उपासना किसे कहेंगे ?

अल्पकाल के लिए आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध स्थापित करने को उपासना कहते हैं। अपने भीतर ऊर्जा संग्रहित करने को उपासना कहते हैं।

साधु जीवन स्वीकार करना, पाँच महाब्रतों को स्वीकार करना, उसका पालन करना साधना है। थोड़ी देर बैठकर आत्मचिन्तन करना, प्रतिक्रमण करना उपासना है। उपासना थोड़ी देर होती है। उसमें अपने आपको बहुत पॉवरफुल बना लिया जाता है।

पूणिया श्रावक एक सामायिक करता था।

वह एक सामायिक ही करता था पर दिनभर पवित्र भावों में रहता था। वह दिनभर तनावमुक्त जीवन जीता था। हम लोग पाँच सामायिक करते हैं तो भी हमारा दिमाग तनाव में रहता है। यहाँ तक कि सात या दस सामायिक भी कर लेते हैं तो भी हमारा दिमाग तनाव में रहता है। समस्याएं हमें घेरे रहती हैं। हम समस्याओं से घिरे रहते हैं। उलझनें सुलझती नहीं।

उलझनों की पैदाइश कहाँ से हुई ? उलझनें कहीं बाहर से आई क्या ?

उलझनें बाहर से नहीं आती। इसे आप अपने आप को सामने रखकर समझिए। आप किसी दुकान पर गए। कपड़े की दुकान हो, चाहे किराने की दुकान हो या फिर आभूषण की दुकान हो। आपने कहा कि मुझे कुछ सामान खरीदना है। दुकानदार ने सामान दिखा दिया, किंतु आपको पसंद नहीं आया। उसने बहुत वेरायटी दिखाई, किंतु आपको एक भी पसंद नहीं आई। क्या दुकानदार जबरदस्ती आपको माल देगा कि आपको ले जाना पड़ेगा ! इतना माल देखा तो आपको ले जाना ही पड़ेगा ! ऐसा कोई नियम-कानून नहीं है कि आपने इतना देखा तो आपको ले जाना ही पड़ेगा। माल खरीदना ही पड़ेगा। भले ही पचासों प्रकार की चीजें देखी हों, किंतु जरूरी नहीं है कि आपको वे चीजें लेनी ही पड़ें।

हम जब अपने मन में तैयार होंगे तो कोई वस्तु खरीदने के लिए हमारी तैयारी होती है। तैयारी होती है तो हम खरीद लेते हैं। हम जिसको स्वीकार करेंगे, वही वस्तु हमारे साथ आएगी। दूसरी सारी चीजें वहीं छूट जाएंगी। इसी

तरह जिन समस्याओं को हम स्वीकार करते हैं, वे ही समस्याएं हमारे भीतर उलझन पैदा करती हैं। हम यदि उनको स्वीकार ही नहीं करें तो कोई समस्या, कोई उलझन नहीं है, किंतु उनको स्वीकार किए बिना हमारा मन रहता नहीं है। हम उनको स्वीकार करते चले जाते हैं। जब अपने भीतर उनको भर लेंगे तो फिर समस्याएं खड़ी होंगी ही। उलझनें पैदा होंगी ही।

साधना का अर्थ है उलझनों से अपने आपको दूर करना। हजारों उलझने होंगी, किंतु मैं मन उनमें नहीं लगाऊंगा तो सारी उलझनें दूर ही रहेंगी। मैंने यदि मन को उनमें उलझा दिया तो वे सारी उलझनें मेरे मन में आ जाएंगी। साधना का अर्थ यही होता है कि सब चीजें छोड़ते चले जाओ।

प्रतिक्रमण किसलिए किया जाता है?

प्रतिक्रमण किया जाता है अतिक्रमण से वापस होने के लिए। उससे वापस लौटने के लिए। मैंने अतिक्रमण नहीं किया तो मुझे प्रतिक्रमण करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। अपने जीवन व्यवहार में हम बहुत बार अतिक्रमण कर लेते हैं। अतिक्रमण करने के कारण हमारे भीतर समस्याएं उलझती जाती हैं। उनको सुलझाने के लिए प्रतिक्रमण है।

दिनभर में मैंने जितनी गाँठें अपने भीतर बाँधी हैं, उनको खोलना जरूरी है, नहीं तो वे सघन ग्रन्थि का रूप ले लेंगी और कठिनाइयां खड़ी करेंगी। जो बातें हमने पकड़ी हैं वे बातें, गाँठ का रूप ले लेती हैं। ग्रन्थि का रूप ले लेती हैं। वह हमारे भीतर बन जाती हैं तो जब तक नहीं सुलझती तब तक साधना का मार्ग नहीं खुल पाएगा।

कल दोहपर में प्रश्न हुआ कि गए काल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर और आने वाले काल के पच्चक्खाण में कोई दोष लगा हो तो साधना में प्रवेश करने से पहले अतीत का प्रतिक्रमण करना जरूरी है। अर्थात् हमारे भीतर पहले गाँठें बनी हुई हैं। हिंसा, झूठ, छल-प्रपञ्च की गाँठों को खोलकर फिर भीतर प्रवेश करो।

एक जगह ध्यान सिखाने की व्यवस्था थी। कुछ जैन मुनि भी वहाँ पहुँचे कि हमें ध्यान सीखना है। सिखाने वालों ने कहा कि ठीक है, आपको भी

सिखाएंगे।

जैन मुनियों ने कहा, हमारी मर्यादा है कि हमारा फोटो नहीं लिया जाए।

आयोजकों में से एक ने कहा कि अब तो अवश्य तुम्हारा फोटो लिया जाएगा, क्योंकि तुम्हारे दिमाग में यह ग्रन्थि यदि बनी रह गई तो तुम ध्यान में प्रवेश नहीं कर पाओगे।

मूल बात है कि हमारे भीतर ऐसी ग्रन्थि नहीं होनी चाहिए।

प्रश्न होगा कि क्या उनको वहाँ फोटो खिंचवा लेना था ?

इसका समाधान है कि जहाँ तुम्हारी मर्यादा नहीं बोल रही है, वहाँ क्यों जाना ! मर्यादा का पालन न करके आराधना की जाती है तो आराधना के स्थान पर विराधना होती है। हम बाहर की तरफ झाँकते हैं तो हमें लगता है कि हमारे पास कुछ नहीं है। हम करो हैं। और जब हम अपने भीतर देखते हैं, तो लगता है कि हमारे पास बहुत है। तब लगता है कि दुनिया में कुछ है ही नहीं।

हमारे पास भगवान की वाणी है। भगवान का उपदेश है। भगवान का वृहद ज्ञान है। इससे बढ़कर दुनिया में क्या मिलेगा !

अभी आप सुन रहे थे आदित्य मुनि जी म.सा. से कि भारत में क्या-क्या चीजें हैं। भारत में अनेक वेरायटीज हैं किन्तु हमें बाहर की चीजें नजर आती हैं। हम अपने भीतर देखने को तैयार नहीं हैं। हम अपनी चीजों के प्रति लापरवाह हैं। सोचते हैं कि उसको क्या देखना ! मैं यह बात कह दूँ कि ज्ञान की जितनी भी बातें हैं वे सारी बातें जिनमत से ही इधर-उधर फैली हैं। वहीं से बातें गई हैं।

समुद्र में पानी कहाँ से आता है ?

(लोग कहते हैं- नदियों से आता है)

नदियां समुद्र में जाकर नहीं मिलतीं तो समुद्र में पानी कहाँ से आता।

दुनिया में ज्ञान कहाँ से आया ?

यदि तीर्थकर भगवान में ज्ञान का उद्भव नहीं होता तो ज्ञान नहीं मिलता। प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव भगवान ने ज्ञान का विस्तार किया। उन्होंने

ज्ञान दिया। तभी ब्राह्मी लिपि चालू हुई। स्पष्ट है यह विशाल जैन मत से, जैन समुदाय से, तीर्थकर देवों की कृपा से सारा संसार ज्ञान से आप्लावित है, किंतु हमें उस वाणी पर उतना विश्वास नहीं है। हम केवल रटी-रटाइ बात पर चलने वाले हो गए।

आरुगबोहिलाभं एक प्रकल्प है। आरुगबोहिलाभं का अर्थ क्या है ?

इसका अर्थ होता है कि मेरी बोधि आरोग्यमय बनी रहे। मैं शरीर को निरोग रखना चाहता हूँ। हम चाहते हैं कि हमारा शरीर निरोग रहे।

‘पहला सुख निरोगी काया’

पहला सुख है काया का निरोग होना। काया एक बार रुण भी हो जाए तो कोई बात नहीं, किंतु हमारी बोधि, हमारी समझ यदि रुण हो गयी तो भारी कठिनाई आ जाएगी। हमारी समझ सही रहेगी तो हम अपने शरीर की बीमारी को दूर करने में सफल हो सकते हैं। समझ सही नहीं रहेगी, तो स्वस्थ शरीर भी रुण हो सकता है। स्वस्थ शरीर भी रोग का घर बन जाएगा। शरीर रोग का घर न बने इसलिए सही समझ होना बहुत जरूरी है।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की समझ को बोधि कहा गया है। हमारे में समझ है तो हमें यह परीक्षा करनी पड़ेगी कि वह स्वस्थ है या अस्वस्थ। संशयों से धिरी हुई है या संशयों से रहित है। हमारे भीतर शंकाएं, कुशंकाएं तो नहीं हैं। ऐसा होता है क्या ? ऐसा हो सकता है क्या ?

आजकल विज्ञानियों से तो मेल नहीं खा रहा, व्यवहारिक क्षेत्र से मेल नहीं खा रहा। कैसे क्या समझें ?

हमें पहले अपनी समझ सही करनी जरूरी है। यदि हमारी समझ में कोई बात नहीं आ रही है तो यह समझना चाहिए कि मेरा क्षयोपशम अभी पूरा नहीं हुआ है। मेरी समझ पूरी नहीं हुई। दूसरी बात, सारी बातें सारे लोग जान लें, यह भी कम संभव है। एक ही कक्षा में पढ़ने वाले विद्यार्थी समान अंकों से उत्तीर्ण नहीं होते। उनके अंकों में फर्क रहता है।

एक ही किताब, एक ही स्कूल, अध्ययन कराने वाले एक ही टीचर, प्रोफेसर, लेक्चरर ने सबकी समान रूप से पढ़ाई कराई, किंतु क्या कारण है

कि सबका परिणाम एक समान नहीं हो पाया। दस आदमी एक साथ खाना खा रहे हैं। सारी खाद्य सामग्री एक समान है। सबने एक समान खाया। किसी ने कम-बेसी नहीं खाया, किन्तु क्या सबका परिणाम एक समान हो गया? नहीं होता। किसी के शरीर में अच्छा पाचन हो गया, तो किसी का पाचन हो ही नहीं पाया। समान भोजन था, किंतु सबको एक समान परिणाम नहीं मिला। वैसे ही हम समान रूप से ज्ञान की प्राप्ति करते हैं किंतु क्षयोपशम की तारतम्यता से हमारा ज्ञान समान रूप से परिणाम नहीं होता। हालांकि अभ्यास करते रहेंगे तो क्षयोपशम भी बढ़ेगा।

अग्नि में ईंधन डालते जाएंगे तो अग्नि प्रज्ज्वलित होती जाएगी और ईंधन नहीं डाला गया तो अग्नि धीरे-धीरे बुझ जाएगी। इसका आप स्वयं अनुभव कर सकते हैं। बचपन में जो ज्ञान सीखा, जो दोहराते रहे, उसका आवर्तन करते रहे, वह आज भी याद है। बचपन में जिस थोकड़े को याद किया और बार-बार रिवाइज करते रहे वह आज भी याद है। रिवाइज करना बंद कर दिया तो याद नहीं रहेगा।

वह ज्ञान रहेगा क्या?

नहीं रहेगा। मैं धार्मिक ज्ञान की बात नहीं कर रहा हूँ। स्कूल का भी ज्ञान याद नहीं रहेगा।

‘पान सड़े घोड़ा अड़े विद्या बिसर जाय...’

जैसे पान को पलटते नहीं हैं तो वह सड़ जाता है और घोड़े को रोज-रोज नहीं घुमाया, तो उसकी चाल जैसी होनी चाहिए, वैसी नहीं हो पाएगी, वैसे ही विद्यार्थी या हमने यदि बार-बार आवर्तन नहीं किया, चितारा नहीं तो विषय को भूल जाएंगे। हम बार-बार नहीं चितारेंगे तो जो हमें याद है वह मंद हो जाएगा। बुद्धि से उतर जाएगा। इसलिए बार-बार चितारना होता है। अपना क्षयोपशम बढ़ाने के लिए हमने जो सीखा है, उसे दूसरे को सिखाते चले जाएं तो हमारा रिवीजन अपने आप होता चला जाएगा। साथ ही पढ़ने वाला कुछ पूछेगा तो उसके जिज्ञासा के समाहिति के लिए समाधान ढूँढ़ना पड़ेगा। इससे हमारे ज्ञान की पर्यायें और खुलेंगी। विकसित होंगी अर्थात् हम ज्ञान रूपी अग्नि

में ईंधन डालने वाले होंगे, जिससे वह ज्ञान अग्नि धीरे-धीरे प्रज्जवलित होती रहेगी। यदि अग्नि को ईंधन नहीं मिला तो अग्नि बुझ जाएगी।

‘आरुगबोहिलाभं’ यानी मेरी बोधि का आरोग्य सुरक्षित रहना चाहिए। अपने आपको निशंक रखना बहुत कठिन होता है। हमारे सामने बहुत सारे दृश्य आ सकते हैं, बहुत सारी बातें आ सकती हैं। ऐसे समय में अपने बोधि को निर्मल रखना, पवित्र रखना बहुत महत्वपूर्ण होता है। हमारी समझ सही रहेगी तो कहीं कोई असुविधा नहीं होगी।

एक बहुत बड़े राजर्षि हुए जनक। बहुत प्रसिद्ध राजर्षि हुए। बहुत-से लोग जानते हैं। वे अध्यात्म में रमण करने वाले थे। उन्हें जब भी फुर्सत मिलती तो सभा को धर्म सभा में परिवर्तित कर देते थे। बड़े-बड़े विद्वान आते और आत्मा की, परमात्मा की, ज्ञान की, तत्त्व की चर्चा चलती थी। एक बार की बात है, राजर्षि जनक रात में सोए हुए थे तो उन्हें सपना आया कि एक बहुत बलशाली राजा ने उनके राज्य पर आक्रमण कर पूरे राज्य को तहस-नहस कर दिया। उसने राज्य को लूट लिया। राजा जनक को प्राण बचाने के लिए जंगल में भागना पड़ा। राजा जनक जंगल में भाग गए। वे काफी समय तक जंगलों में इधर-उधर भागते रहे। उनकी भूख पूरी नहीं मिट रही थी। उनको कहीं भी खाने के लिए रोटी नहीं दिखी। जो मिला खा लिया।

एक दिन उनकी हालत देखकर किसी सभ्य आदमी ने, किसी राहगीर ने एक रोटी उनके हाथ में दी। रोटी देखकर उनकी आँखों में चमक आ गई कि आज बहुत दिनों बाद रोटी मिली है। वे जैसे ही खाने के लिए उद्धित होते हैं कि एक कौआ कहीं से उड़ता हुआ आया और रोटी लेकर उड़ गया।

सोचें, अब उनकी क्या दशा होगी, क्या विचारणा हुई होगी ?

सुना होगा आपने ‘अरे घास री रोटी ही जब वन बिलावड़े ले भाग्यो’

नानो सो अमरियो चीख पड़यो, राणा रो सोयो दुखड़ो जाग्यो॥

किस-किसको यह गीत आता है ?

सुरेश जी ! आपको आता है क्या ?

(सुरेश जी कहते हैं- नहीं आता)

नरेश जी^१ आपको आता है क्या ?

(नरेश जी ने कहा - नहीं आता भगवन्)

...तो फिर क्यों मेवाड़ में रहते हो।

‘अरे घास री रोटी...’

जो अमर सिंह राजकुमार मान-मनुहार से भी भोजन नहीं करते थे, वह आज एक रोटी के लिए चीख रहे हैं। राजकुमार को उसके कारण इतनी पीड़ा हो रही है। दिख रहा है कि मेरी रोटी को ले गया। महाराणा प्रताप को भयंकर दर्द हुआ। वैसे ही कई दिनों से राजा जनक को रोटी देखने को मिली।

जैसे ही वे रोटी खाने के लिए तैयार हुए कि एक कौआ आया और उनके हाथ से रोटी लेकर उड़ गया। राजा जनक को बड़ा भय लगा और उनके मुँह से एकदम से चीख निकली। जैसे ही चीख निकली राजा जनक की नींद खुल गई।

राजा सोचने लगे कि मैं तो राजमहल में हूँ। कहाँ है जंगल, कहाँ घेरा शत्रुओं ने मुझे ? मेरे पर हमला जैसा तो कुछ भी नहीं है। उन्होंने अपने आप को जब अच्छी तरह से देखा तो कहा कि मैं मख्खली गद्दे पर सो रहा हूँ। ठाट-बाट से जी रहा हूँ। किंतु उनके मन में एक प्रश्न खड़ा हो गया कि वह सत्य है या यह सत्य है ? सत्य क्या है ? जो सपना देखा वह सत्य है या जो जी रहा हूँ वह सत्य है।

जैसे ही रात पूरी हुई, उन्होंने अपना सपना बताना शुरू कर दिया। बड़े-बड़े विद्वानों से पूछा कि वह सत्य है या यह सत्य है ? यहाँ भी बहुत सारे स्वाध्यायी उपस्थित हैं, जो एक सामान्य पुरुष से ऊँचा होते हैं, उनमें से कौन बताएगा ?

सुभाष जी^२ आप बताओ, यह सत्य है या वह सत्य है ?

(सुभाष जी ने कहा - दोनों ही असत्य है)

राजा जनक की सभा में भी कई विद्यानों ने भिन्न-भिन्न उत्तर दिये किंतु राजा जनक को समाधान नहीं मिला। अब तो स्थिति यह थी कि जो भी

आता उसी से पूछते हैं कि वो सत्य है या यह सत्य है?

लोग कहने लगे कि राजा डिप्रेशन में आ गए। पागल हो गए। उनकी चिकित्सा करायी गयी, किंतु कोई फर्क नहीं पड़ा। एकदा अष्टावक्र ऋषि आए तो उनके सामने भी राजा जनक ने प्रश्न किया कि यह सत्य है या वह सत्य है?

अष्टावक्र ऋषि ने कहा, राजन! वह भी सच है और यह भी सच है। राजा को आशर्चय हुआ। अब तक प्राप्त समाधानों से यह समाधान हटकर था। अष्टावक्र ने अपना कहना जारी रखा। उन्होंने कहा- राजन, जब आप सपना देख रहे थे तब आप महल में थे। उस समय जंगलों में भटकना गलत ही था। अतः वह अवस्था सच नहीं थी। इसी तरह तुम सोचो जब तुम राजमहल में थे तब भी तुम्हारा चित्त तो जंगलों में ही घूम रहा था। अतः उस समय तुम्हारा महल में रहना भी गलत था, सच नहीं।

इस पर राजा ने कहा कि सत्य क्या है?

अष्टावक्र ने कहा, राजन तुम्हारा द्रष्टा भाव सत्य है। आपने इसको भी देखा है और उसको भी देखा है, यह द्रष्टा भाव है। ये सत्य है। अपने द्रष्टा भाव को यथावत बनाए रखें। उसमें दूसरा मिश्रण मत होने दें।

यह अच्छा है, यह बुरा है जैसे ही प्रतिक्रिया पैदा हो गई तो हमारा द्रष्टा भाव विकृत हो जाएगा।

हम विचार करें कि हमारा द्रष्टा भाव कैसा है!

हम किसी को देखते हैं तो तत्काल प्रतिक्रिया पैदा हो जाती है कि वह आदमी ऐसा है, वैसा है। वह आदमी अच्छा नहीं है। यह बुरा है, वह ज्यादा अच्छा है। हम तत्काल प्रतिक्रिया करते हैं। केवल आदमी को देखकर ही प्रतिक्रिया नहीं करते। खाने-पीने की चीजें हों या पहनने-ओढ़ने की, आभूषण हों या कुछ और, हम तत्काल प्रतिक्रिया कर देते हैं। कहते हैं, यह देखो, यह बढ़िया लग रहा है। हमें जो अच्छा लग रहा है शायद दूसरों को बुरा लग सकता है।

आप दुकान में गए। आपको पचास आइटम में से एक आइटम पसंद आया। बाकी के 49 आइटम भी बिकेंगे या नहीं?

(लोगों ने कहा- बिकेंगे)

वो भी किसी को पसंद आएंगे या नहीं?

(लोगों ने कहा- आएंगे)

मेरी दृष्टि अलग हो सकती है और दूसरे की दृष्टि अलग हो सकती है। मैं उसको एकदम यह नहीं कह सकता कि यह खराब है, यह बेकार है। मैंने ऐसी प्रतिक्रिया की तो अपने द्रष्टा भाव को सुरक्षित नहीं रखा।

जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसे ही देखने को कहते हैं ज्ञाता द्रष्टा भाव। बोधि को आरोग्यमय रखना है तो प्रतिक्रिया से बचें। केवल वस्तु को देखें कि वह कैसी है!

‘देखो भालो, तको मत’

देखना बुरी बात नहीं है, किंतु ताकना बुरी बात है। ताकना पाप होता है। किसी चीज में मन अटक जाता है तो हम उसे गौर से देखते हैं। मन अटक जाना पाप है। देखना बुरा नहीं है, किंतु हमारी प्रक्रिया यदि बदल गई, प्रतिक्रिया हो गई तो हमारी दृष्टि बदल जाएगी। उस समय हम किसी को अच्छा, किसी को बुरा बतायेंगे। किसी को अनुकूल किसी को प्रतिकूल बताएंगे। इससे द्रष्टा भाव खंडित होता है। इसलिए जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा देखो। उससे हमारे ज्ञान, दर्शन, चारित्र की बोधि को, समझ को कोई रुण नहीं कर सकता। कोई उसमें बीमारी पैदा नहीं कर सकता। द्रष्टा भाव छिन्न-भिन्न होगा तो हमारी बोधि में संशय पैदा होने लग जाएंगे। उससे बोधि रुण हो जाएगी। उससे तार जुड़ने वाला नहीं होगा।

शांतिलाल की बात आप सुन रहे हैं। उसमें सत्य के संस्कार हैं। वह सत्य की संस्कृति पर जीवित है।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

शांतिलाल के पिता का स्वर्गवास हुए कुछ ही समय हुआ था कि माता का भी स्वर्गवास हो गया। इससे शांतिलाल एकदम से टूट गये। उनकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह सोचने लगे कि अब क्या होगा, कैसे होगा। वह विचार करने लगे कि अब तक जब भी कोई समस्या आती तो माता-पिता के चरणों में सिर रखता और मेरी समस्या का समाधान हो जाता। मुझे शांति हो जाती, समाधि मिल जाती। मुझे जीवन जीने की उमंग पैदा हो

जाती। कुछ कर गुजरने का उल्लास भाव मन में पैदा होता। अब मुझे वह सांत्वना कहाँ मिलेगी! वह काफी निराश हो गए, किंतु उनकी पत्नी आशा ने कहा कि मन को छोटा मत कीजिए। मन को ओछा मत कीजिए। निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। किसी के माता-पिता या कोई भी जन्म लेने वाला अमर नहीं होता।

अमर होती है आस्था। अमर होती है आत्मा, जो कितने ही रूप बदलने के बाद अपने आप में मौजूद रहती है। वह नरक में गई, तिर्यच में गई, जगह-जगह धूमकर आ गई।

वनस्पति के कितने भैद बताए गये हैं?

(एक व्यक्ति ने कहा— 84 लाख)

84 लाख तो जीव योनि होती है। उसमें 14 लाख साधारण और 10 लाख प्रत्येक वनस्पति होती है।

24 लाख प्रकार की वनस्पति में हम कौन-कौनसी वनस्पति में नहीं गए? कीड़े-मकोड़ों के कौन-से भव में हमने जन्म नहीं लिया? किस-किस के रूप में जन्म नहीं लिया?

भगवान कहते हैं कि संसार में ऐसी कोई भी योनि बाकी नहीं है, जिसमें तुम्हारी आत्मा ने जन्म नहीं लिया। तेरी आत्मा राजा भी बनी, रंक भी बनी है। दीवान भी तेरी आत्मा बनी है और सेनापति व राजा भी तेरी आत्मा बनी है। इतने पात्रों को अदा कर लिया कि अब एक भी पात्र अदा करने के लिए बाकी नहीं रहा। जितने भी पात्र अदा किए वो एक-दो बार नहीं, अनन्त बार अदा किए। मनुष्य भी एक बार नहीं, अनेक बार बने।

जैसे पानी बरसा और बह गया, वैसे ही यह जन्म हमें मिला और चला गया। मनुष्य के अनन्त भव चले गए। और कितने भव बहाने की तैयारी में हो?

(एक व्यक्ति ने कहा— अब बहाएंगे नहीं, कम करेंगे)

कैसे कम करेंगे, कैसे कम होंगे?

‘आरुगबोहिलाभं’ उसके लिए आरोग्यमय बोधि का लाभ होना

जरूरी है। निरोग बोधि का लाभ होना चाहिए। निशंक यानी शंका रहित बोधि की प्राप्ति होनी चाहिए। वह प्राप्ति हो जाए तो हम निश्चित रूप से ऐसा मानकर चलेंगे कि संसार के भव सीमित होंगे। पुनः-पुनः जन्म-मरण करना नहीं पड़ेगा। हमारी समझ में जितनी बात आ रही है उतनी समझने का प्रयत्न करें, किंतु जहाँ हमारी समझ ठप हो जाए, हमारी समझ में कोई विषय नहीं आ रहा हो, वहाँ समझना चाहिए कि ‘तत्त्वं तु केवलिगम्यम्’ अर्थात् केवलियों ने जो कहा है, सर्वज्ञों ने जो कहा है उसमें कहीं से कहीं तक कोई संशय नहीं है।

‘तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहि पवेइयं’

जिनेश्वर देवों ने जो कहा है, वह एकदम सत्य है। उसमें संशय की कोई गुंजाइश नहीं है। उनमें केवलज्ञान की दृष्टि थी। वह दृष्टि हमारे पास नहीं है। हमारी आँख से बहुत छोटी चीजें नहीं दिखती हैं। बहुत छोटी चीजों को देखने के लिए हम दूरबीन का प्रयोग करते हैं। दूरबीन या माइक्रोस्कोप बोलते हो ना आप! दूरबीन बहुत पॉवरफुल हो तो रेती के कण को उससे देखेंगे तो बहुत बड़ा दिखेगा, जबकि हमारी आँखें उसे बहुत छोटा देख रही हैं। यह फर्क देखे जाने वाले माध्यम के कारण है। जो केवलज्ञान रूपी दूरबीन से देखा जाएगा, वह हमारी आँख से कैसे देखा जा सकता है? हमारे श्रुतज्ञान से वैसा का वैसा देखा जा सकता है। श्रुतज्ञानी भी वैसा ही देखता है, जैसा केवली देखता है, किंतु श्रुतज्ञानी आदेश से देखता है। केवलज्ञानी प्रत्यक्ष देखते हैं और श्रुतज्ञानी उनके द्वारा कहीं हुई बात से देखता है।

कल या परसों, मैंने लाइब्रेरी की अलमारी का उदाहरण दिया था। अलमारी में ग्लास लगे हुए हैं। उसमें रही हुई किताबों को हम देख सकते हैं। उसमें रखे कागजों को देख सकते हैं। उनमें रही किताबों के नाम पढ़ने की सुविधा है, किंतु जब तक ग्लास वाले कपाट को खोलेंगे नहीं, तब तक उसमें रखी किताब हमारे हाथ में नहीं आ पाएगी। केवलज्ञान अर्थात् दरवाजा खुल गया है। कोई रुकावट नहीं रही। पर हमारे ऊपर अभी परदा पड़ा हुआ है। हम केवल बाहर से देख रहे हैं। केवलज्ञानी साक्षात् देख रहे हैं, किंतु देखना उतना ही है।

एक अलमारी में जितनी किताबें हैं, केवलज्ञानी भी उतनी ही देख रहे हैं और हमें भी उतनी ही दिखाई दे रही हैं, फिर भी देखने-देखने में फर्क है। यही फर्क मेरी समझ में नहीं आ रहा है। यह मेरी समझ की कमी हो सकती है। क्षयोपशम की कमी हो सकती है, किंतु तीर्थकर देवों ने कहा उसमें कोई फर्क नहीं है।

खैर, आते हैं शांतिलाल पर। आशा, शांतिलाल से कहती है कि आप निराश मत होइए। निराश होने की बात नहीं है। आशा शांतिलाल को सद्वौध देती है कि अपने कर्तव्य पर डटे रहो। अपने पथ पर डटे रहना। वही हमारा सच्चा पुरुषार्थ बनेगा। वही माता-पिता को सच्ची श्रद्धांजलि होगी। आशा कहती है कि मन में निराशा लाने के बजाय हमें उद्यम करना चाहिए। हम उद्यम करेंगे तो निश्चित रूप से समाधि को प्राप्त करेंगे।

आशा कहती है, नाथ! निराशा मौत को दिखाती है।

जब आदमी निराश होता है, सब तरफ से टूट जाता है, तो उसके मन में विचार आएगा कि अब तो मर जाना श्रेष्ठ है। उसके मन में मरने की भावना पैदा होती है। निराशा में जीने वालों की हालत आप जानेंगे, सुनेंगे, पढ़ेंगे, तो पता चलेगा कि निराशा में जीने वाले आत्महत्या की तरफ बढ़ जाते हैं। आत्महत्या करने वाले किसी न किसी कारण से निराशा में गये और निराशा इतनी गहरी हो गयी कि वे अपने आपको भूलकर आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गये।

आशा कहती है कि नाथ! निराशा मन को मौत दिखाती है और जीते हुए आदमी को खा जाती है।

चिंता और चिंता में क्या फर्क है? चिंता किसको खाती है?

जिन्दा आदमी को चिंता खाती है। मौत की तरफ ले जाने वाली चिंता है और चिंता मुर्दे को जलाती है। चिंता जीवित को जलाती है और चिंता मरे हुए को जलाती है। इसलिए आप हीन विचारों को छोड़ो। अब आप क्यों चिंता कर रहे हो! आजतक आप पूरे परिवार का संचालन करते रहे। छोटी दुकान है तो क्या, छोटा घर है तो क्या, हमारा काम चला और अब तो आपका छोटा

भाई डॉक्टरी पढ़ रहा है। वह भी सहयोगी बन सकता है।

इस प्रकार का सद्बोध दे आशा ने शांतिलाल के निराश मन में आशा का संचार किया। आगे किस प्रकार प्रसंग बनता है, उस पर समय के साथ विचार करेंगे। यह समझने की बात है कि जीवन में कठिनाइयां भी आती हैं, किंतु आदमी को निराश नहीं होना चाहिए। यदि वह निराश होता है तो कठिनाइयां उस पर और हावी हो जाती हैं और वह यदि तत्पर रहता है, गतिशील रहता है तो निराशा हट जाती है। कठिनाइयां हट जाती हैं। समस्याएं खत्म हो जाती हैं, किंतु इसके लिए हमारी समझ सही होनी चाहिए।

‘आरुगबोहिलाभं’ 23 जनवरी को चालू हुआ। ‘आरुगबोहिलाभं’ की पहचान है यहाँ रहते हुए मुमुक्षुओं में अध्ययन करते हुए आत्मसमाधि का बोध पैदा हो। वे बोध को आरोग्यमय बनाती हुई साधना में रत रहें। साधना की बात मैंने बताई। उपासना थोड़े समय के लिए आत्मसाक्षी से की जाती है। आराधना का अर्थ है रिजल्ट प्राप्त होना। मैं उत्तीर्ण हो गया यह मेरी आराधना है। मैंने कितनी भी साधना की, किंतु अभी तक उत्तीर्ण नहीं हुआ तो वह विराधना है, आराधना नहीं। हमारी साधना, उपासना हमें आराधना तक पहुँचाए। हमारी साधना हमें आराधक बना दे तो ही साधना-उपासना सही होगी।

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे लही प्रभु सेवन भेद...

सेवन की विधि को जानकर सेवा करेंगे, साधना करेंगे तो हम सफलता तक पहुँचेंगे। ऐसा हमारा लक्ष्य बने, प्रयत्न बने तो हम धन्य होंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

11. परमात्मा से मुलाकात

संभव देव ते धुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद...
सेवन कारण पहली भूमिकारे, अभय, अद्वेष, अखेद

परमात्मा की भक्ति भय से नहीं हो पाएगी। हमारे मन में भय है तो हम परमात्मा से मुलाकात नहीं कर पाएँगे। परमात्मा की बात तो दूर है, हम अपने आप से भी मुलाकात नहीं कर पाएँगे। आत्मा और परमात्मा से मुलाकात करने के लिए हमें निःशंक और निर्भय होना पड़ेगा। निर्भर्यता उसे कहा गया है जब कितनी भी कठिनाइयां हमारे सामने आएं पर हमारे मन में ऊहापोह पैदा नहीं हो। हमारे मन में शंका का कोई स्थान नहीं हो।

सम्यक् दृष्टि जीवों के आचार के आठ प्रकार बताए गए हैं। सबसे पहला प्रकार है निश्शंक-शंका रहित होना। दूसरा प्रकार है निष्कंख अर्थात् आकांक्षा रहित होना। हमें अपने आप पर भरोसा होना चाहिए। जब अपने पर भरोसा होगा, तब हमें धर्म पर विश्वास होगा। तब हमें परमात्मा पर भरोसा होगा। अपने पर ही भरोसा नहीं है तो धर्म पर भरोसा कैसे होगा! थोड़ी देर के लिए धर्म पर भरोसा हो भी सकता है किंतु गहरा भरोसा नहीं होगा।

जब अपने पर भरोसा होता है तो दूसरे की कोई आकांक्षा मन में नहीं आती। जब अपने पर भरोसा नहीं होता है, तो अपना घट खाली नजर आता है। अपना घट खाली नजर आता है तब हम दूसरे के घड़े की ओर देखने की कोशिश करते हैं। हमारा घड़ा भरा हुआ होगा तो हम दूसरे की तरफ क्यों देखेंगे! उस स्थिति में दूसरों की बढ़ती को देखकर मन में हीन भावना भी आ जाएगी कि हमारे पास कुछ भी नहीं है।

कल भी मैंने कहा था कि जो हमारे पास है, वह अन्यत्र नहीं है। अन्यत्र जो कुछ भी फैलाव हुआ है, उसका मूल स्रोत हम ही हैं। हमारे यहाँ से

ही वे चीजें इधर-उधर फैली हैं। कोई विचार करता है कि अमुक जगह बहुत सेवा की भावना है। बहुत इज्जत है, आदर है, सम्मान है। हमारे यहाँ नहीं है। किन्तु हकीकत ऐसा नहीं है। हमारे संस्कारों में तबदिली हो गई इसलिए आज हमें ऐसा लग रहा है, हमारे सेवादि की कोई कमी नहीं थी, न है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से वात्सल्य भाव बड़ा महत्वपूर्ण भाव है। अपनों के प्रति ही नहीं प्राणी मात्र हमारे वात्सल्य का पात्र होना चाहिए। वात्सल्य के आधार पर ही धर्म जिंदा है। वात्सल्य अगर सूख जाए तो धर्म को जिंदा रखना वैसे ही मुश्किल है, जैसे खून का दौरा रुक जाने से हमारे शरीर का टिके रहना। हमारे शरीर में खून प्रवाहित हो रहा है, इससे हमारा शरीर टिका हुआ है। यदि खून का दौरा बंद हो जाए, हार्ट, खून सप्लाई करना बंद कर दे, तो एक सेकेण्ड भी हमारा शरीर नहीं रहेगा। एक सेकेण्ड शायद बहुत अधिक हो जाएगा, उससे बहुत कम समय तक भी हमारा शरीर नहीं रहेगा। हम निढ़ाल हो जाएँगे। जैसे शरीर में रक्त का स्थान है, वैसे ही धर्म में वात्सल्य का स्थान है।

हम माता का वात्सल्य देखते हैं। यदि माता का वात्सल्य हट जाए तो संतान का लालन-पालन होना मुश्किल हो जाए। माता के वात्सल्य से ही संतान का लालन-पालन हो पाता है। संतान सुख की श्वास लेने में समर्थ हो पाती है।

धर्म में वात्सल्य का मतलब है कि धर्म पर हमारा गहरा अनुराग होना चाहिए। जो धर्म के अनुयायी हैं, जो धर्म को स्वीकार करके चल रहे हैं, उनके प्रति हमारा वात्सल्य भाव गहरा होना चाहिए।

बिछड़ा हुआ भाई मिलने पर जितना आनन्द आता है, जितना प्रेम उमड़ता है, वैसे ही स्वधर्मी को देखकर हमारे हृदय में वात्सल्य का भाव जगना चाहिए। औपचारिकताएँ बहुत होती हैं किंतु औपचारिताओं में वह यथार्थता नहीं आ सकती। यथार्थता के लिए हमारे भीतर वात्सल्य भाव प्रवाहित होना चाहिए।

बात भरोसे की हो रही थी। खुद पर भरोसा होगा तो हम कहीं पर भी पराजित नहीं होंगे। जितने भी वीर योद्धा हुए हैं, उन सबको खुद पर भरोसा था। राम, कृष्ण, महावीर किन्हीं का भी नाम ले लें, उन सबके भीतर अभय की

भावना थी। वे भय रहित होकर जी रहे थे। उनके सामने हजारों शत्रु आ गए तो भी उन्हें घबराहट नहीं हुई कि अब क्या होगा। अकेला योद्धा हजारों के सामने भारी पड़ जाता था। यह आत्मविश्वास की बात है। आत्मविश्वास नैतिक जीवन जीने से आएगा। हम उस प्रकार का जीवन जीएंगे तो हमारा आत्मविश्वास गहरा बनेगा। कोरा जीवन जीएंगे, ऊपरी स्तर पर जीएंगे तो आत्मविश्वास उतना गहरा नहीं हो पाएगा। आत्मविश्वास के लिए हमें सिद्धांत की जानकारी भी होनी चाहिए।

आत्मा क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है?

आत्मा का स्वरूप अजर, अमर, अविनाशी है। जब हमारे भीतर यह गहरा विश्वास होगा कि आत्मा कभी मरती नहीं है, वह सदा से थी, है और सदा रहेगी। जब ये विचार मन में गहरे बैठ जाएंगे तब किसी के वियोग होने पर अथवा मृत्यु को साक्षात् सामने दखने पर भी हमारे मन में रंच मात्र भी भय नहीं होगा, दुःख नहीं होगा क्योंकि हमें पता है कि छूटता है केवल शरीर। शरीर आज नहीं तो कल छूटेगा। हमारी मोहब्बत आत्मा से होनी चाहिए, शरीर से नहीं। शरीर केवल सहयोगी है। सहयोगी के लिए जितना स्थान होना चाहिए उतना ही स्थान हमारे मन में शरीर के प्रति रहना चाहिए। घर का मालिक और मुनीम एक नहीं हो सकते। मालिक, मालिक होता है और मुनीम, मुनीम होता है।

शरीर, आत्मा के लिए सहयोगी है किन्तु जब हम शरीर पर ही आधारित हो जाते हैं तब तो हमारे शरीर संबंधित भय खड़ा हो जाता है हमारे सामने आकांक्षाएँ खड़ी हो जाती हैं, हमारे सामने शंकाएँ खड़ी हो जाती हैं। लेकिन जब हम अपने में स्थित होते हैं तब हम निर्भय होते हैं।

एक प्रसंग है। एक महात्मा अपने शिष्य के साथ चल रहे थे। एक जंगल आया। महात्मा ने कहा कि मैं थोड़ी भक्ति करना चाहता हूँ। अपने परमात्मा से मुलाकात करना चाहता हूँ। वह एक पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान में निमग्न हो गए। दो-चार मिनट गुजरे होंगे कि सिंह की दहाड़ सुनाई पड़ी। सिंह की दहाड़ सुनकर शिष्य घबरा गया और गुरु से कहने लगा, गुरुदेव! सिंह की दहाड़ हो रही है, उसकी गर्जना सुनाई पड़ रही है। देखते ही देखते सिंह सामने

आ गया। सिंह को समाने देखकर शिष्य घबरा गया और पेड़ पर चढ़ गया।

गुरु शांत भाव से वहीं बैठे रहे हैं। सिंह आता है और महात्मा के पैर को संधकर आगे बढ़ जाता है। सिंह चला गया तो शिष्य पेड़ से उतरा। गुरु जी का ध्यान भी पूरा हो गया। गुरु ने कहा चलो चलते हैं। दोनों चले। रास्ते में गाँव के नजदीक पहुँचे तो एक कुत्ता भौंकने लगा। कुत्ता के भौंकने से गुरु जी घबराने लगे। डरने लगे।

यह देखकर शिष्य को हँसी आई। शिष्य ने कहा, गुरुदेव! जिस समय सिंह आया उस समय आप घबराए नहीं और एक कुत्ता भौंकने लगा तो आप डर गए।

गुरु ने कहा उस समय मेरे परमात्मा मेरे साथ थे। मैं मेरे परमात्मा के साथ था और अभी मैं तेरे साथ हूँ।

(प्रवचन में बैठे लोग हँसने लगे)

हँसने की बात नहीं है। बात समझने की है और गहराई से समझने की है। जब हम शरीर के साथ होंगे तो भय लगेगा। जब हम आत्मा के साथ होंगे तो निर्भय हो जाएँगे। हमारी दृष्टि में आत्मा सदैव बनी रहना चाहिए। आत्मा को विस्मृत नहीं करें। आत्मा पर जब हमारी दृष्टि होगी तो शरीर जाए या ठहरे, उसकी कोई चिंता नहीं होगी।

चिंता इसलिए नहीं होगी क्योंकि शरीर जाएगा तो नया मिल जाएगा। कपड़ा यदि जीर्ण-शीर्ण हो गया, पुराना हो गया, फट गया तो उसके लिए हम रोना-धोना चालू नहीं करते। हम जानते हैं कि कपड़ा तो फटेगा। फट गया तो नये कपड़े पहनेंगे। जैसे नया कपड़ा आता है, वैसे ही यह शरीर छूटेगा तो नया शरीर मिलेगा। यदि आत्मविश्वासी हैं तो विश्वास करिए कि इससे बढ़िया शरीर मिलेगा। इससे अच्छा मिलेगा।

यह विश्वास किसको होना चाहिए? हमें होना चाहिए

हमें यह विश्वास होगा तो खेल बना पाएंगे। विश्वास नहीं होगा तो खेल बनना मुश्किल है। जिस व्यक्ति को ये आत्मविश्वास होगा, उसको कभी पश्चाताप करने की नौबत नहीं आएगी, क्योंकि स्थिति आत्म केन्द्रित है।

शरीर से समझौता करके चलने पर हमें शरीर की तरफ देखना पड़ता है। आत्म साक्षी से चलने पर शरीर गौण हो जाता है। आत्मा मुख्य हो जाती है।

हम जितना बोलते हैं, जितना सुनते हैं, उतना जागरण नहीं हो पाता। बात यदि कसकर बाँध लें तो बार-बार सुनने की आवश्यकता नहीं रहेगी। भगवान कहते हैं- ‘उद्देसो पासगस्स णत्थि’ यानी जो द्रष्टा है अर्थात् जिसने सत्य को देख लिया है जान लिया है, उसको उपदेश की आवश्यकता नहीं है। जो जाग गया उसको क्या जगाना।

किसको जगाया जाता है?

सोए हुए को जगाने की बात होती है। जो जगा हुआ है उसको कोई कहे कि उठ! तो वह कहेगा, मैं तो उठा हुआ ही हूँ भाई। हाँ, यह बात जरूरी है कि उठने वाला प्रमाद में न जाए। उसके लिए एक उपदेश है कि तुम प्रमाद में मत जाना।

‘उद्धिए णो पमायए’

क्योंकि प्रमाद में चले गए तो वापस आवरण आ जाएगा। ढक्कन लग जाएगा। अज्ञान का आवरण आ जाएगा। इसलिए प्रमाद नहीं होना चाहिए। प्रमाद नहीं होने का अर्थ है कि आत्म विस्मरण नहीं होना। ‘चरैवेति, चरैवेति...’ हमारे भीतर सदा गतिशीलता बनी रहनी चाहिए, अन्यथा हम बहुत बार धोखे में रह जाएँगे। रह जाएँगे क्या, उसी धोखे में जीए हैं और जीए जा रहे हैं। धोखा खा रहे हैं और मर मरकर मरते रहे हैं। जन्म-मरण का चक्र उसी कारण से बना हुआ है। हमारा आत्मविश्वास जग जाएगा तो जन्म-मरण की शृंखला टूट जाएगी। हम मुक्त हो जाएँगे। यह केवल सुनने की बात नहीं है। इतिहास की बात नहीं है। यह जीवन की सच्चाई है।

हमने बहुत बार सुना है सेठ सुदर्शन को। एक सेठ सुदर्शन के सामने अर्जुन माली है और सेठ सुदर्शन के सामने अभया महारानी है। अभया महारानी ने सेठ सुदर्शन को धर्म स्थान से उठवाकर अपने राजमहल में मँगवा लिया और उसके साथ अनैतिक असंयमी जीवन की चाह करने लगी। भोगों की याचना करने लगी।

सेठ सुदर्शन शांत रहे। सेठ सुदर्शन ने एक बार कहा कि माँ तुम यह क्या कर रही हो। राजा की रानी, माता के समान होती है। यह सुनकर अभया महारानी एकदम से चंडी का रूप बनाती है। कहती है “खबरदार! मेरी बात नहीं मानी तो इसका दुष्परिणाम भोगना होगा। बोटी-बोटी काट दी जाएगी और मेरी बात मानोगे तो राज्य का उपभोग करोगे। महारानी ने सेठ सुदर्शन से कहा, मैं विश्वास दिलाती हूँ कि राजा को तो एक झटके में मैं दूर कर दूँगी। इस राज्य के मालिक तुम बन जाओगे। और मेरी बात नहीं मानी तो उसके भयंकर दुष्परिणाम होंगे।” सुदर्शन के सन्मुख एक प्रकार से, समझ लीजिए मारणान्तिक कष्ट था। सामने दिख रहा है कि महारानी की बात नहीं मानने पर मौत आएगी, किंतु सेठ सुदर्शन ने मौन धारण कर लिया।

सेठ सुदर्शन ने सोचा कि अभया के सिर पर जिस प्रकार से काम हावी हो रहा है, ऐसे में अब उसको उपदेश देने से कोई फायदा होने वाला नहीं है। कोई आदमी सोया हुआ है और हम उपदेश दिए जा रहे हैं, उसे शिक्षा दिए जा रहे हैं तो वह शिक्षा उसके लिए क्या काम आएगी? सोया हुआ आदमी न सुन रहा है और न श्रद्धा रहा है। कोई भी सीख उसी के काम आएगी जो सुनेगा। शिक्षा या उपदेश उसी के लिए सार्थक होगा, जो सुने हुए पर श्रद्धा करेगा। सुने हुए को स्वीकारेगा। जो सुनने वाला नहीं है, जो और समझने के लिए तैयार नहीं है, उसे दिया गया कोई भी उपदेश उसके लिए उपयोगी नहीं हो पाएगा। कितना ही उपदेश दे दिया जाए, वह उपदेश सार्थक नहीं हो पाएगा।

सेठ सुदर्शन ने विचार किया कि अभी उपदेश देने में फायदा नहीं है। तर्क-वितर्क करने से कोई मतलब नहीं है। यह विचारकर सेठ सुदर्शन ने मौन धारण कर लिया। रात खत्म होने वाली थी। अभया महारानी ने विचार किया कि यदि मैंने कुछ उपाय नहीं किया तो भारी रिस्क हो जाएगा।

उसने अपने शरीर को नोचा, खरोंचा और कपड़े फाड़ के चिल्हाई; बचाओ-बचाओ।

बचाओ-बचाओ की आवाज सुनकर अंगरक्षक आ गए। महारानी के कहने से उन्होंने सेठ सुदर्शन को गिरफ्तार कर लिया।

सेठ सुदर्शन को राजा के सामने प्रस्तुत किया गया। उस पर आरोप था कि इसने महारानी का शील हरण करने की कोशिश की।

सेठ सुदर्शन को सम्राट जान रहे थे। सेठ सुदर्शन को सम्राट के सामने लाया गया। सेठ सुदर्शन के चेहरे की शांति, उनके चेहरे की धैर्यता, उनके चेहरे की गंभीरता कहीं से कहीं तक यह साबित नहीं करती कि यह अपराधी है। उसकी उस स्थिति से नृप को विश्वास ही नहीं हो रहा था कि इसने अपराध किया हो।

पुलिस वाले, सी.बी.आई. वाले अपराधी को जल्दी से क्यों पहचान लेते हैं?

इसलिए पहचान लेते हैं क्योंकि अपराधी के पैर कच्चे होते हैं। उसके मन में घबराहट होती है। उसके मन में शंका होती है कि कोई मेरे पीछे तो नहीं आ रहा है! कोई मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है! कोई मुझे पकड़ने की कोशिश तो नहीं कर रहा है! वह चौकन्ना होकर चलता है। अभी तो बैंकों का युग हो गया, अब चेक चलने लगे। एक समय था कि सम्पत्ति अपने साथ लेकर यात्रा करनी होती थी।

मान लीजिए एक करोड़ की सम्पत्ति साथ लेकर आप ट्रेन या बस में यात्रा कर रहे हैं और एक बार आप बिना सम्पत्ति के अकेले यात्रा कर रहे हैं तो दोनों स्थिति में आपके भीतर की स्थिति एक समान है या उसमें कुछ अंतर होगा?

अंतर होगा।

सम्पत्ति साथ में होती है तो चिंता करनी पड़ती है और जब अकेले होते हैं तो कोई चिंता नहीं होती। पहचान करने वाला हमारे हाव-भाव से जल्दी पहचान कर लेगा कि दाल में कुछ न कुछ काला है। शातिर लोग जल्दी पहचान लेते हैं और फिर पीछा करने लग जाते हैं। ऐसी घटनाएं आए दिन आप लोग सुन रहे हो। पढ़ रहे हो। पढ़ते होंगे।

क्यों हो जाता है ऐसा?

जो निश्चिंतता स्वाभाविक होती है वह निश्चिंतता चोर में नहीं होगी।

चोर के चलने में चपलता होगी। उसके पाँव रखने में अंतर होगा।

‘भय चंचलता होजे परिणामनीरे...’

हमारे भीतर थोड़ा भी भय होता है तो वहाँ चंचलता निश्चित रूप से होगी। भय और चंचलता का एक समान रिश्ता है। चोली-दामन का रिश्ता है। जहाँ भय होगा वहाँ चंचलता होगी। चंचलता से भय की पहचान हो जाती है, इसलिए मैंने कहा कि यदि हम भक्ति करना चाहते हैं तो निर्भय होना पड़ेगा।

सेठ सुदर्शन निर्भय था। राजा ने बोला अपना बयान दो। सेठ सुदर्शन मौन खड़ा है। राजा चाहता था कि न्याय हो। दूध का दूध और पानी का पानी हो। वह चाहता था कि कोई भी निरपराध अनावश्यक रूप से दंड न पाए।

बार-बार कहने पर भी जब सेठ सुदर्शन ने बयान नहीं दिया तो फिर विवश होकर राजा को नियमानुसार दंड की व्यवस्था करनी पड़ी। सेठ सुदर्शन को सूली का दंड दिया गया, फाँसी का नहीं। सूली यानी बहुत बड़े खम्भे पर एक कील होती है। उस कील पर आदमी के मल-द्वार को स्थापित किया जाता था। धीरे-धीरे वह कील मलद्वार से होती हुई आदमी के भीतर चली जाती। कील शरीर के भीतर जाना यानी समझा जा सकता है कि उससे कितनी पीड़ा होगी! फाँसी के फंदे पर चढ़ाने पर लगभग मानते हैं कि जीव बहुत जल्दी खत्म हो जाता है। शरीर से जीव निकल जाता है किंतु सूली की सजा पाया हुआ जीव पीड़ा का अनुभव करते हुए त्राहिमाम-त्राहिमाम करेगा। लेकिन सेठ सुदर्शन शांत है। उसको मालूम है कि सूली का दंड दिया गया है, किंतु उसके मन में कोई हलचल नहीं है। यह आत्मविश्वास का परिणाम है। हम बोलते जरूर हैं कि साँच को कभी आँच नहीं, पर हमको उस पर कितना विश्वास है? इस बात पर हम कितना विश्वास करके चलते हैं? शायद हम बहुत जल्द भयभीत हो जाते हैं। जब हमारे भीतर भय होता है तो कोई भी घटना हमें निर्भय नहीं होने देती। इससे हमारे मन में भय और ताजा हो जाता है। हमारी स्मृति और ताजी हो जाती है।

सेठ सुदर्शन को ले जाया जा रहा है सूली के स्थान पर। उसे वध स्थान पर ले जाया जा रहा है। यह करना, वो करना, मुँह काला करना आदि जो कुछ भी व्यवस्था थी, वह की गयी, पर सेठ सुदर्शन के मन में अभया

महारानी के प्रति रक्ती भर भी द्वेष नहीं आया। उसके भीतर कोई हलचल नहीं हुई। उसे कोई भय नहीं हुआ। उसके मन में बस यह है कि-

‘जीना है तो धर्म के लिए, मरना है तो धर्म के लिए’

वध स्थान पर ले जाने पर उससे कहा गया कि अपने इष्ट का स्मरण कर लो। उसने अपने इष्ट का स्मरण किया।

तत्पश्चात् उसे जैसे ही सूली पर चढ़ाया गया उतने में क्या हो गया ?

‘शूली का सिंहासन हो गया, शीतल हो गई ज्वाला।

शील जिसने पाला, सच्चा है रखवाला, फेरो एक माला,
हो-हो फेरो एक माला॥’

आप अनुभव करना। सच्चे दिल से धर्म की आराधना होगी तो हमारा विलपॉवर स्ट्रांग बनेगा। हमारे भीतर स्ट्रांगनेस आएगी। हमारा आत्मविश्वास बढ़ेगा। दृढ़ता आएगी। कोई कारण नहीं कि दृढ़ता नहीं आए, किंतु ऊपरी तौर पर धर्म की आराधना करेंगे तो वह चीज हमें हस्तगत नहीं हो पाएगी।

शांतिलाल-आशा की बात भी हम सुनते आ रहे हैं। शांतिलाल एक बार थोड़ा हताश हो गया था। वह सोचने लगा कि अब क्या होगा।

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

शांतिलाल, आशा से कहता है कि प्रिये, जब तक माता-पिता का साया सिर पर रहता है तब तक व्यक्ति सौभाग्यशाली होता है।

हम क्या मानते हैं? हमारे मन में क्या विचार आते हैं? माता-पिता के साये को हम सौभाग्य समझते हैं या दुर्भाग्य?

जीवन भर साता नहीं पहुँचाई और मरने के बाद उसकी तसवीर को माला चढ़ाकर हम दर्शाते हैं कि माता-पिता के प्रति बहुत बड़ी भक्ति है। यदि यह सत्य है तब तो ठीक है, नहीं तो मेरा आत्मविश्वास मुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा। वह बार-बार कुरेदेगा कि तू ढोंग कर रहा है। ढोंग करने से आत्मविश्वास मजबूत नहीं होता। यदि सही तरीके से जीया तो आत्मविश्वास पर कोई चोट नहीं पड़ेगी यदि चोट पड़ती है तो वह उसे सहन करने में समर्थ नहीं होता है।

शांतिलाल कहता है कि व्यक्ति तब तक सौभाग्यशाली होता है, जब तक उसके माता-पिता का साया सिर पर रहता है। इस मायने में मैं दुर्भागी हूँ कि बहुत जल्दी मेरे सिर से माता-पिता का साया हट गया। उसके मन में चिंता जागृत हो गई। चिंता के कारण जो चिंतन उभरना चाहिए था वह नहीं उभरा।

चिंता और चिंतन भिन्न नहीं है। चिंता और चिंतन को हमने भिन्न-भिन्न बना दिया है। वैसे दोनों का नाम ही चिंता है, किंतु आज चिंता और चिंतन का अर्थ भिन्न-भिन्न हो गया। संसार के पदार्थों की चिंता, इज्जत की चिंता, पद-प्रतिष्ठा की चिंता, जीवन निर्वाह की चिंता, चिंता हो गई और आत्मा-परमात्मा का विचार, दुरध्यान से रहित होकर सदध्यान में लगाव को हम चिंतन की संज्ञा देते हैं। आज ऐसा माना जा रहा है कि चिंता हमें पतन की ओर ले जाने वाली होती है और चिंतन उत्थान की ओर। इसलिए दोनों का अर्थ भिन्न-भिन्न किया गया।

शांतिलाल कहने लगा, प्रिये, मैं स्वयं अनुभव कर रहा हूँ कि संसार के रिश्ते-नाते सच्चे नहीं हैं। जीते-जी के रिश्ते-नाते होते हैं। जैसे ही आँखें बंद होती हैं, रिश्ते-नाते टूट जाते हैं। माता-पिता का रिश्ता हो, पिता-पुत्र का रिश्ता हो या भाई-भाई का रिश्ता हो, सारे रिश्ते कब तक टिके होते हैं?

(लोगों ने कहा- जीते-जी रहते हैं)

हकीकत यह है कि मरने के बाद कोई किसी का नहीं होता है। थोड़े दिन तक शोक मना लेते हैं। थोड़े वर्षों तक वर्षी मना लेते हैं। उसके बाद कौन किसको याद रखता है! ध्यान रहे जो जन्म लेता है उसका मरना निश्चित है। जिसे इसका पता हो जाता है, उसका मन न शोक से ग्रस्त होता है, न उसे रोना आता है, न उसे भय होता है, न चिंता सताती है। ये सब इसलिए नहीं होता क्योंकि वह जानने लगा है कि जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है। पहले के जमाने में बहुत शोक रखा जाता था। अब कितना शोक रखा जा रहा है? मेवाड़ हो या मारवाड़ कोई भी क्षेत्र देखें, पहले महीनों-वर्षों तक शोक मनाते थे। आज भी गाँवों में रखते होंगे पर शहरों में तो तीसरे दिन शोक निवारण होने लगा गया।

शोक रखने से क्या होगा ? शोक रखने से क्या जाने वाला वापस आ जाएगा ? कितने दिनों तक याद करोगे तो वापस आ जाएगा ?

आना ही होता तो जाता ही क्यों ! शोक रखने की परम्परा इसलिए कम पड़ी है कि कहीं न कहीं हमने समझा है कि जो आया है वह जाएगा ही। पहले रोना-धोना किया जाता था, आजकल वह परम्परा भी बंद हो गई। थोड़े समय के लिए आदमी का दिल भर जाता है। भर सकता है। मैं नहीं कहता कि नहीं भरता होगा, किंतु उसमें समझ है तो वह अपने दिल को समझा लेता है कि किसी के वश की बात नहीं है, किसी की मौत रोकना। बीमारी को ठीक किया जा सकता है, किंतु मौत का कोई इलाज नहीं है। डॉक्टरों ने आज तक बीमारियों की खोज की है, उनके इलाज को ढूँढ़ा है, किंतु मौत का कोई इलाज नहीं है। यह निश्चित है कि जन्म लेने वाला मरेगा। यदि नहीं मरे तब तो आज हमारे सामने तीर्थकर भगवान मौजूद होते।

बोलो होते या नहीं होते ?

(लोगों ने कहा- होते)

यदि जन्म लेने वाले को मरना जरूरी नहीं होता तो हमारे तीर्थकर देव, हमारे भगवान महावीर हमारे सामने जिंदा होते। तीर्थकरों को भी मौत ने नहीं बख्शा, हमें तो बख्शे ही कैसे !

शांतिलाल कहता है कि प्रिये, जब तक मैं शोकमग्न था तब तक यह बात मेरे समझ नहीं आई, किंतु अब मैं समझ गया कि कोई व्यक्ति वापस नहीं आता है। समझने से, आशा के कहने से, समझाने से और चिंतन का भाव बनने से वह शांत होता है। वह धैर्य में आता है।

हम भी धैर्य की दिशा में आगे बढ़ने का लक्ष्य बनाएं। धैर्य की दिशा में आगे तब बढ़ेंगे, जब हमारा आत्मविश्वास गहरा होगा। आत्मविश्वास गहरा होगा तो हमारे धैर्य को कोई चुनौती नहीं दे पाएगा। कोई चुनौती दे भी दे, तो मेरी दृढ़ता के होते हुए वह चुनौती सार्थक नहीं हो पाएगी।

बंधुओ ! बार-बार यह कहना हो रहा है कि मनुष्य जन्म कितना महत्वपूर्ण है। ज्ञानियों ने इसको देव दुर्लभ भव बताया। देवता का भी जन्म

दुर्लभ नहीं है। यह देव से भी दुर्लभ भव है। मनुष्य भव की प्राप्ति होना बहुत कठिन है।

इसलिए इस भव को दुर्लभ बताया गया क्योंकि मनुष्य जीवन में जो सार्थकता प्राप्त की जाती है, वो न तो तिर्यच में की जा सकती है, न नारक में और न देव भव में। वह सार्थकता एकमात्र मनुष्य कर पाता है। आत्मसाधना, समाधि की प्राप्ति और सदा-सदा के लिए कर्मों से मुक्त होकर शाश्वत सिद्धि को प्राप्त करने का अधिकार केवल मनुष्य को है। ऐसा सुन्दर अवसर हमें मिला है तो सोचने की बात है कि हमें क्या करना चाहिए।

कम से कम यह विचार अवश्य करना चाहिए कि मनुष्य भव प्राप्त करके अब तक मैंने क्या किया? आत्महित में मैंने क्या किया? अब मुझे आत्महित में क्या करना चाहिए? मेरा लक्ष्य क्या है? क्या बैल की तरह जीवन-पर्यन्त गाड़ी में जुता रहूँ या थोड़ा विश्राम करूँ?

सोचना। इस पर विचार करना। सोचेंगे-विचारेंगे तो तत्त्व हासिल होगा। सत्य हासिल होगा। सत्य को प्राप्त कर पाएंगे। सत्य हमारे हाथ में आएगा और हमारा आगे बढ़ने का लक्ष्य बनेगा। आगे बढ़ने का लक्ष्य बनाएंगे तो धन्य होंगे। इतना ही कहते हुए विराम।

12. कर्सँ शुद्ध मन संथारो रे

तीन मनोरथ धारो रे साधु, तीन मनोरथ धारो रे...

जल्दी मोक्ष जाने के 23 बोल बताए गये हैं। 23 बोल की भावना भाने वाला जीव शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है। इनमें से एक है सुबह जल्दी उठकर तीन मनोरथ का भावपूर्वक चिंतन करना। औपचारिक रूप से तो हम रोज ही बोलते हैं कि

‘आरंभ-परिग्रह तज करुं महाव्रत हो स्वीकार,
करुं संथारा अंत में तीन मनोरथ सार’

पर इन शब्दों का रस हमारे भीतर टपकता है या नहीं! इन शब्दों की गहराई में हमारा मन झूबता है या नहीं! ऐसा तो नहीं कि हम केवल कोरे शब्दों का उच्चारण करते हुए चले जाते हैं!

श्रावक के भी तीन मनोरथ हैं और साधु के भी तीन मनोरथ हैं। दोनों के तीन-तीन मनोरथ हैं पर भिन्न हैं। श्रावक के मनोरथ भिन्न हैं और साधु के मनोरथ भिन्न हैं। श्रावक का पहला मनोरथ है आरंभ-परिग्रह तजने का। उसका पहला मनोरथ है कि वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं आरंभ-परिग्रह का त्याग करूंगा। वह भावना भाता है कि हे प्रभु! वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा, जिस दिन मैं आरंभ-परिग्रह का त्याग करूंगा।

कौन-सा दिन कल्याण का होगा?

जिस दिन मैं आरंभ-परिग्रह का त्याग करूंगा, वह दिन धन्य होगा।

जिस दिन मैं करोड़पति-अरबपति, खरबपति...

पता नहीं आगे कौन-कौन सी संख्या आएगी। क्या हो जाएगा इतना पैसा इकट्ठा करने से! क्या हमारा जीवन शांति से गुजर जाएगा! क्या उससे

कल्याण हो जाएगा।

यदि धन से कल्याण होता तो चक्रवर्तीं सप्राट कभी भी धन छोड़कर साधु नहीं बनते। कभी भी साधु जीवन स्वीकार नहीं करते। जो चक्रवर्तीं सप्राट जग गए उन्होंने धन को ठोकर मार दी। साधु बनने के लिए चक्रवर्तीं पद को ठोकर मार दी। वे मोक्ष में चले गए। जो उन भोगों में लिस बना रहा, उनके लिए सातवीं नरक का स्थान खुल गया।

आसक्ति बहुत भयंकर है। किसी भी चीज में लगाव हो गया, किसी पदार्थ में, किसी व्यक्ति से लगाव हो गया तो दुर्गति निश्चित है।

श्रमण हजारीमल जी ने गीत में पहला मनोरथ श्रुत ज्ञान को बताया। श्रुत ज्ञान को प्राप्त करना साधु का पहला मनोरथ है।

‘सुख-सागर दातारो रे’

जैसे सागर में लहरें उठती हैं, वैसे ही हमारे जीवन में सुख की लहरें उठेंगी। बड़ी महिमा है श्रुत ज्ञान की। राजनीति के ज्ञान से, व्यवहारोचित ज्ञान से सुख की लहरें उठने वाली नहीं हैं। वह उठेंगी श्रुत ज्ञान से। वह इधर से उधर दौड़ती रहती हैं। जैसे हिरण कस्तूरी की गंध की तलाश में इधर से उधर भागता फिरता है। कस्तूरी उसके हाथ नहीं आती।

कस्तूरी कहाँ बसी है ?

उसकी नाभि में है।

कस्तूरी हिरण की नाभि में है। अपने पास की चीज व्यक्ति को जल्दी नजर नहीं आती। व्यक्ति दूर-दूर की चीजें बहुत देखता है। दूर के दूंगर बड़े सुहाने लगते हैं। वे बड़े आकर्षित करते हैं। आदमी को जो रोज प्राप्त है उससे आदमी संतुष्ट नहीं है। श्रुत ज्ञान संतोष देने वाला है।

पहलो मनोरथ सूत्र ज्ञान है, सुख-सागर दातारो रे

जिस दिन सीख समझ हिये धारूं, भवोदधि तारण हारो रे...

अर्थात् वह दिन धन्य होगा, जिस दिन श्रुत ज्ञान की सीख हृदय में उतरेगी। श्रुत ज्ञान संसार सागर से तिराने वाला है। पार लगाने वाला है। पुनरपि जनम, पुनरपि मरण के शृंखला का भेदन करने वाला है। उसका छेदन करने

वाला है। यह महिमा श्रुत ज्ञान की है। श्रुत ज्ञान हमारे भीतर गहरा उतरेगा तो विरक्ति का भाव आएगा।

‘ज्ञानस्य फलं विरतिः’ अर्थात् ज्ञान का परिणाम विरक्ति भाव है। जब तक ज्ञान नहीं होता, तब तक संसार के प्रति अनुरक्ति बनी रहती है। उस समय संसार बड़ा सुंदर लगता है। मनमोहक लगता है। फिर संसार से निकलने का मन ही नहीं होता है। बेटा, पोता, पड़ पोता, लड़ पोता के प्रति अनुरक्ति बनी रहती है। उनको देखकर मन बाग-बाग हो जाता है। पता नहीं कितनी पीढ़ियां लोग देखना चाहते हैं।

मरुदेवी माता ने कितनी पीढ़ियां देखी थी ?

65 हजार पीढ़ियां।

आप लोग कितनी पीढ़ियां देख लोगे ?

65 हजार ! 65 हजार नहीं तो 65 सौ ! 65 सौ नहीं, 65 भी बहुत हैं। 65 में से 6 का अंक हटा दो। पाँच पीढ़ियां भी देख लेता है तो आदमी सोने की सीढ़ियां चढ़ जाता है। उतनी पीढ़ियां देखने से कल्याण हो जाएगा ?

मरुदेवी माता मोक्ष गई तो 65 हजार पीढ़ियों को देखने के कारण से नहीं गई। वह भक्ति में लीन थी, ऋषभदेव भगवान की भक्ति में रमने के कारण मोक्ष में गई।

श्रावक का दूसरा मनोरथ क्या है ?

श्रावक का दूसरा मनोरथ है कि हे प्रभु ! वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा, जिस दिन मैं अगार धर्म को छोड़कर अनगार धर्म को स्वीकार करूँगा। हर वक्त यह भावना रहनी चाहिए कि वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं भी अनगार धर्म स्वीकार करूँगा। भवि आत्मा की अन्तर्भावना होती है कि मैं अनगार धर्म स्वीकार करूँ। उसकी पुकार रहती है-

हे प्रभु मेरी एक पुकार, मैं भी बन जाऊं अनगार

छोड़ के सारे पाप अठार, मैं भी बन जाऊं अनगार

हे प्रभु ! एक ही पुकार है, एक ही लक्ष्य है, एक ही धारणा है, एक ही अवधारणा है कि मैं अनगार धर्म को प्राप्त करूँ।

साधु का दूसरा मनोरथ है एकल विहारी होना। अकेला विहार करना। अकेला विहार दो प्रकार का बताया गया है। प्रशस्त और अप्रशस्त। गुस्से में आकर, लड़ाई-झगड़ा करके अकेला विचरण करने वाले के लिए बताया गया है कि वह महाक्रोधी होता है। महाअहंकारी होता है। वह जीव किसी के साथ नहीं खट्टा है तो अकेला विहार करता है। अकेला विहार मनोरथ है।

आठ प्रकार के गुण जब हमारी आत्मा में, हमारे संयम जीवन की यात्रा में प्राप्त होते हैं तो हमारे भीतर इतनी दृढ़ता आ जाती है कि कोई हमें जिनशासन से चलित भी करना चाहे तो नहीं कर सकता। कितना भी दमखम लगा दे, किंतु जिनशासन से चलित नहीं कर सकता। हमारे भीतर आठ गुणों का समावेश हो जाता है तो गुरु महाराज की अनुज्ञा मिल जाती है। वह एकल विहार प्रतिमा को ग्रहण करके उस प्रतिमा का वहन करते हुए विचरण करता है। सबसे असंग होकर वह विचरण करता है।

वह सोचता है कि समुदाय में रहते हुए समुदाय को देखना भी मेरा धर्म है अकेला विहार स्वीकार करना। उस समय मैं मेरे में ही जीने वाला बनूंगा। न किसी से अपेक्षा और न किसी की उपेक्षा। कई बार साधक भी अपेक्षा और उपेक्षा में उलझ जाता है। जब कई बार उसकी अपेक्षा पूरी नहीं होती तो उसके मन में भाव आते हैं कि मेरी उपेक्षा हो रही है। ये अपेक्षा और उपेक्षा हमें संसार में रुलाने वाली है। यदि हमने अपेक्षा और उपेक्षा को सहन किया तो धन्य बनेंगे जबकि इन दोनों के कारण से मन ऊँचा-नीचा हुआ तो भटकने वाले होंगे। एकल विहार प्रतिमा स्वीकार करने वाला न किसी से दोस्ती रखता है और न किसी से वैर। उसे एकमात्र संयम और आत्मभाव से लगाव होता है।

जिस दिन विचरूं हुं मही मण्डल वो दिन भाग्य हमारो रे।

वह दिन मेरे सौभाग्य का होगा, जिस दिन मेरे जीवन में ऐसे गुणों का भंडार होगा। वह दिन सौभाग्य का होगा, जिस दिन ऐसे गुण मेरे भीतर अवतरित होंगे और अकेला विहार स्वीकार करने में समर्थ बनूंगा।

तीसरा मनोरथ श्रावक और साधु का एक ही है। वह मनोरथ है कि हे प्रभु! वह दिन मेरे लिए परम कल्याण का होगा, जिस दिन आलोचना-प्रतिक्रमण पूर्वक शुद्ध मन से संलेखना स्वीकार करूंगा।

**तीजो मनोरथ अन्न-जल त्यागुं करुं शुद्ध मन संथारो रे
पण्डित मरण शरण कब लेसुं खलक लगे मोहे खारो रे।**

इस शरीर, काम भोग, इन इंट्रियों के विषयों के प्रति कोई ललक नहीं है। मेरा मन इन सबसे उपरत हो गया। अब इनसे मेरी कोई चाह नहीं है। जब ऐसा निरासक्त भाव होता है, तभी संथारा-संलेखना सार्थक होता है। जिसके मन में चाह बसी हुई है, जिसके मन में लगाव बना हुआ है, उसका संथारा-संलेखना शुद्ध भाव से नहीं होगा। चाहे देवत्व की चाह हो या किसी अन्य प्रकार की भी चाह क्यों न हो। शुद्ध रूप से संथारा हो जाए, तो उसी जन्म में मोक्ष का प्रसंग बन जाए। कहते हैं ऐसे भाव वाला तीसरे भव का उल्लंघन नहीं करेगा। ऐसा संथारा विरले के जीवन में घटित हो पाता है। ऐसा सौभाग्य विरले को मित पाता है।

महासती श्री सुअर्चा श्री जी म.सा. के विषय में आप सुन गए। लगभग 67 की उम्र में उन्होंने दीक्षा ली। पीहर पक्ष स्थानकवासी साधुमार्गी जैन संघ परिवार से रहा। ससुराल वाले तेरापंथ समुदाय से जुड़े हुए हैं। धर्म-ध्यान, ज्ञान-ध्यान में उनकी रुचि थी। लगाव था। तेरापंथ समुदाय में दीक्षा लेने का उनका विचार था, किंतु वहाँ अनुमति नहीं मिली। महासती ताराकंवर जी म.सा. का गंगाशहर-भीनासर चातुर्मास था। ताराकंवर जी म.सा. के सम्पर्क में आई। उनकी बेटी ने मुझे निवेदन किया “माँ की दीक्षा लेने की भावना है, उम्र 67 वर्ष के लगभग हो चुकी है।”

हमारे यहाँ पर नाना गुरु के समय से या उनसे पहले से ही यह भावना रही है कि कोई भी संयम लेना चाहे तो उसको सहयोग दिया जाए। मैंने कहा महासती जी के पास में रहें, अनुभव करें। साम्प्रदायिक भेद थोड़ा-बहुत होता है किंतु पीहर पक्ष स्थानकवासी होने से संस्कार अच्छे थे। उनकी दीक्षा गंगाशहर-भीनासर में विशेष आज्ञा से सम्पन्न हुई। उन्होंने दस वर्षों तक संयम की आराधना की। 24 जुलाई की रात को सभी साध्वियों का नाम लेकर सबसे क्षमा याचना करने लगे। कहने लगे कि आपके साथ मेरा मन मिल गया। अगली बार सेवा में पता नहीं कौन आएगा।

सुमुक्ति श्रीजी म.सा., सुविराग श्रीजी म.सा. निरंतर सेवा में लगे रहते

थे। वृद्धावस्था में शरीर जब रुण हो जाता है, तो कोई न कोई कठिनाई आती रहती है। फिर भी उनके मन में यह दृढ़ता थी कि मुझे संयम में दोष नहीं लगाना। कई बार दवाई ग्रहण करने की स्थिति बन जाती है, किंतु सजगता यह थी कि उसकी आलोचना करके शुद्धिकरण कर लेते। कल सुबह धोवन पानी आया और सतिया जी ने पानी पीने का निवेदन किया तो कहा कि अभी नवकारसी नहीं आई। नवकारसी आने के बाद लूँगी। नवकारसी आने के बाद धोवन पानी लिया। दूध की दो-एक घूँट ली होगी कि साइलेंट अटैक हो गया। बस लुढ़क गयीं।

हंसा उड़ गया। हंसा उड़ जाए तो पिंजरा किस काम का! डॉक्टर ने कह दिया कि कुछ भी गुंजाइश नहीं है। इससे जिंदगी और मौत का फर्क समझ लो।

फर्क कितनी देर का है?

जीवन है तब तक हम बड़ा खुशमय जीवन जी रहे हैं। जिंदगी है तब तक हम खुशहाल हैं। हमारा सौभाग्य है कि हमें जैन धर्म मिला। आँखें बंद होने के बाद क्या होगा! अभी आपने आदित्य मुनिजी म.सा. से सुना कि जिंदगी का क्या भरोसा। जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है, किंतु आशा अमरधन है। तीन मनोरथ भावपूर्वक हमारे विचारों में चलता रहता है तो उसकी सफलता कभी न कभी होती है।

भावना भवनाशिनी...

जैसा भाव भाता है आदमी वैसा ही बन जाया करता है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः

आदमी की जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा आकार लेने लग जाता है।

नाना गुरु की दिली तमन्ना रहती थी कि मैं खाली हाथ न चला जाऊं। वे हम लोगों के भरोसे भी नहीं थे। हम लोगों ने संथारा तो बाद में कराया, दो दिन पहले जैसा कि महासतियों ने बताया कि वे दशनार्थ आई थीं तो हाथ जोड़े हुए दृष्टि छत की ओर थीं। कुछ पच्चखाण कर रहे थे। उसके बाद हमने खिलाने-पिलाने की कोशिश की तो थूक देते थे। दिनांक 27 को मैं नित नियम कर रहा था कि पता नहीं कहाँ से आवाज आई तिविहार संथारा, तिविहार

संथारा।

मैं उठा और निवेदन किया संथारा करवाना। तत्काल हाथ जोड़ दिए। एक सेकेण्ड की भी देर नहीं की। संथारा सुबह करवाया। संथारा बड़े शांत भाव से था। किसी प्रकार की ऊहापोह की स्थिति नहीं थी। बहुत सजग अवस्था चल रही थी। उदयपुर वाले स्वयं साक्षी रहे हैं। मुझे ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है। कहना इतना ही है कि यदि हमारी भावना अन्तर्भाव से होती है तो वह रूप ले लेती है।

हम अर्थ प्रधान जिंदगी जी रहे हैं। दिमाग में अर्थ ही अर्थ धूमता रहता है। बस यह धूमता रहता है कि कैसे धन इकट्ठा कर सकते हैं, कैसे धन प्राप्त कर सकता हूँ। उसमें हमें संथारा-संलेखना याद भी आएगा या नहीं? बहुत कठिन है याद आना। जीवन में जब तक समझ है, तब तक मोड़ ले लेना चाहिए। विचार करना चाहिए कि बहुत हो गया। क्या करना है अधिक प्राप्त करके। बहुत मिला है उसमें क्या हुआ? और बहुत मिल जाएगा तो क्या हो जाएगा? धन, मान, सम्मान, इज्जत बहुत मिल गई क्या हुआ?

इनसे कुछ फलित हुआ क्या?

इनसे कुछ फलित नहीं होगा। आत्मनिष्ठ बन जाएं। आत्मा की समाधि में रमण करने वाले बन जाएं। इसे अपने जीवन का लक्ष्य बनाएं। यह हमारे जीवन का लक्ष्य बनेगा तो महासती जी के निमित्त से हम स्मृति सभा के माध्यम से अपने आप में प्रेरणा ले सकते हैं। अपने आपको प्रेरित कर सकते हैं। ऐसा प्रसंग केवल सुनने-समझने के लिए नहीं होता है। निश्चित रूप से कुछ न कुछ प्रेरणा लेना का होता है। हम महासती के जीवन से प्रेरित हों कि 67 वर्ष की उम्र में उनके मन में विचार पैदा हुआ। विचार तो कुछ समय पहले से ही चलता होगा, किंतु 67 वर्ष में वह विचार फलित हुआ। हमारा भी ऐसा लक्ष्य बने। ऐसी भावना बने। ऐसा मनोरथ बने। इस स्मृति सभा में हम अपने आपको प्रेरित करके धन्य बनेंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

13. परम सफलता का सूअर

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव...

प्यास लगने पर पानी की याद आती है। उस समय लगता है कि पीने का पानी मिले। जब प्यास से गला सूख रहा हो, जीभ ऊपर की ओर खिंच रही हो, कहीं पानी का आसार दिखाई नहीं दे रहा हो, वैसे समय में यदि पानी मिल जाए तो कितनी खुशी होगी! कितना आनन्द आएगा! कितने प्रसन्न हो जाएंगे! केवल पानी को देखने मात्र से चेहरा प्रफुल्लित हो जाएगा। हाथ में गिलास आ जाए तो शांति की अनुभूति होगी। बस अब पीना ही बाकी रह गया है।

आनन्दघन जी अभिनन्दन भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं ‘अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये...’ अर्थात् भगवन्! दर्शन के लिए आँखें तरस रही हैं। कैसे दर्शन प्राप्त करूँ। दर्शन बहुत दुर्लभ है। दर्शन हो नहीं पा रहे हैं।

दर्शन नहीं होने का कारण क्या है?

कारण है द्वंद्व। जब तक मन में द्वंद्व चलता रहेगा, तब तक दर्शन नहीं कर पाएंगे। दूसरा कारण है धर्म क्षेत्र में कई मत हो गए हैं, कई पंथ हो गए हैं। उन पंथों में जाकर जब बात पूछी जाती है तो एक ही उत्तर मिलता है कि हमारे पास ही सही ज्ञान है। हमारे पास ही सही विधियाँ हैं।

कुछ दिन पहले मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें लेखक ने इस बात को उकेरा कि दुनिया में धार्मिक क्रिया की सही विधि तो केवल मेरे पास ही है, अन्यत्र नहीं है। इसी प्रकार दूसरा आदमी कुछ और कहेगा और तीसरा आदमी कुछ और कहेगा। अलग-अलग लोगों की भिन्न-भिन्न तरह की बातें सुनकर सुनने वाला समस्या में आ जाता है कि किसको सही मानूँ!

हमारे यहाँ पर कोई आ जाए और आपसे पूछे कि आपके यहाँ पर वंदना की विधि क्या है, नमस्कार की विधि क्या है तो आप क्या बताएंगे?

देवेन्द्र जी धींग¹, क्या विधि है वंदना की? कोई अजनबी आदमी आकर पूछ ले तो क्या बताएंगे? चार आदमियों से अलग-अलग पूछ ले तो चारों आदमी कौन-कौन सी विधि बताएंगे? सब एक समान बताएंगे या सब में भिन्नताएँ होंगी?

(लोग कहते हैं- सब में भिन्नता हो जाएगी)

सब में भिन्नता होगी तो वह किसको स्वीकार करे?

कोई दायीं तरफ से हाथ घुमाने के लिए बताएगा तो कोई बायीं तरफ से। कोई कहता है कि ‘करेमि’ पद आए तो घुटने जपीन पर इस प्रकार करना है। इस प्रकार वंदना के लिए अलग-अलग लोग अलग-अलग तरीका बताएंगे। पता नहीं कितनी विभिन्नताएं हमारे भीतर आ गई हैं। भिन्नताएं आने का कारण है कि हमने जैसा देखा, वैसा करते चले गए। हमने जैसा देखा, वैसा करना शुरू कर दिया। जिससे सीखा उसने अपने मन से कुछ भी एड कर दिया। किसी सही गुरु के पास हम ट्रेनिंग नहीं ले पाए। हमने अपना उच्चारण सुधारने की कोई कोशिश नहीं की। जैसा हो रहा है, वैसा होने दे रहे हैं।

देशनोक में गुरुदेव का चातुर्मास सम्पन्न हो रहा था। वहाँ एक नया थानेदार आया। नया थानेदार स्थानक पर आया। उसने स्थानक के बाहर मंत्री को बुलाकर पूछा कि आपके धर्म स्थान में प्रवेश करने की विधि क्या है?

उस थानेदार को क्या पता कि क्या विधि है! उन दिनों संयोग से मुँहपत्ती का आंदोलन चल रहा था। मंत्री जी ने थानेदार से कहा कि स्थानक में आने के लिए मुँहपत्ती लगाना होता है। उस समय यह व्यवस्था थी कि गुरुदेव के चरण स्पर्श मुँहपत्ती लगाकर करना। कई लोग ऐसे थे, जो चरण स्पर्श नहीं करते थे। उन लोगों की जिद थी कि मुझे मुँहपत्ती नहीं बाँधनी है। मुझे रुमाल नहीं बाँधना है। वे लोग दर्शन करके साइड से निकल जाते थे। मर्यादा का पालन करते थे, किंतु मुँहपत्ती नहीं बाँधते थे। हममें से बहुत से लोग जानते हैं कि साधु के पास जाने के लिए पाँच अभिगम का पालन करना होता है।

पाँच अभिगम कौन-कौन से हैं?

सचित्त का त्याग, अचित्त का विवेक, उत्तरासन धारण, दृष्टि वंदन,

विधि युक्त वंदन / मन की एकाग्रता। विधि युक्त पर्युपासना में भी बहुत सारी भिन्नताएँ हैं। कैसे करना चाहिए, क्या करना चाहिए। इसमें बहुत सारे सुधार और संशोधन की आवश्यकता है।

खैर, मंत्री जी ने थानेदार को बताया कि मुँहपत्ती लगाकर दर्शन करना। थानेदार ने मुँहपत्ती बाँधी और दर्शन करने आया। बाद में उसको कोई यह नहीं कहे जा कि ऐसे कैसे आ गया, इसलिए उसने पहले ही सावधानी बरती। उसने पृच्छा कर ली कि धर्मस्थान में पुलिस वाले प्रवेश कर सकते हैं या नहीं?

कई जगह ऐसा होता है कि पुलिस के अंदर घुसने पर कह देते हैं कि अंदर कैसे आ गये! इसलिए उसने पूछ लिया। उसको विधि बता दी गयी तो उसने विधि सहित अंदर प्रवेश किया।

‘लोग कहते हैं कि एकरूपता नहीं हो रही है।’ इसलिए नहीं हो रही है क्योंकि सबकी समझ एक समान नहीं होती। समझ में अंतर होने से भिन्नता तो आएगी। ऐसा नहीं होगा कि अंतर नहीं आए। हमारी समझ जितनी होगी, हम उतना ही कैच कर पाएंगे। उतना ही स्वीकार कर पाएंगे। लेकिन ट्रेनिंग से इसमें काफी सुधार की गुंजाइश है। साथ ट्रेनिंग लेने की रुचि व जिज्ञासा होना भी जरूरी है।

श्रीमद् भगवती सूत्र में माकंदी अणगार का वर्णन आता है। माकंदी मुनि थे। वे भगवान के पास आए और पूछा, भगवन्! कापोत लेश्या वाले पृथ्वीकायिक जीव, कापोत लेश्या में मरकर मनुष्य भव को प्राप्त करके उस भव में ही केवलज्ञानी होकर मोक्ष जा सकते हैं या नहीं?

भगवान ने फरमाया कापोत लेश्या वाला, पृथ्वीकाय जीव वहाँ से मर कर मनुष्य भव में उत्पन्न हो सकता है, केवलज्ञान की प्राप्ति कर सकता है और उसी भव में सारे दुखों का अन्त करके मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ है।

माकंदी ने उसी प्रकार से अप्काय और वनस्पतिकाय जीवों के लिए भी पूछा। भगवान ने वैसा ही समाधान दिया। माकंदी अणगार भगवान को वंदना-नमस्कार करके अपने स्थान पर आए। वहाँ पर और भी श्रमण निर्ग्रथ विराज रहे थे।

माकंदी अणगार ने उनसे कहा, हे देवानुप्रियों! कापोत लेश्या वाला पृथ्वीकाय जीव मरकर मनुष्य भव में उत्पन्न हो केवलज्ञानी केवल दर्शनी हो सीधा मोक्ष जा सकता है।

यह सुनकर मुनियों के मन में संशय हुआ। इस अर्थ पर उन्होंने श्रद्धा नहीं की। उस पर श्रद्धा नहीं करते हुए उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं हो सकता।

वे भगवान के पास पहुँचकर भगवान से पृच्छा करते हैं।

भगवान ने कहा, जैसा माकंदी ने कहा, मैं भी वैसा ही कहता हूँ कि कापोत लेश्या वाला पृथ्वीकायिक जीव मरकर मनुष्य बनकर इसी भव में केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त यावत् सब दुःखोंका अन्त कर सकता है।

भगवान महावीर से सुनने के बाद उनको विश्वास हुआ, श्रद्धान हुआ और वे वापस माकंदी मुनि के पास पहुँचे। उन्होंने माकंदी मुनि से क्षमा याचना करते हुए कहा कि हमें क्षमा करें। हमने आप पर विश्वास नहीं किया कि आप सही बात बता रहे हो। आपने जो बताया वह वैसा ही है। पहले उनको जब विश्वास नहीं हुआ था तब उन्होंने उनके कथन को स्वीकार नहीं किया पर भगवान से पूछने पर भरोसा हो गया तो वापस आकर समाधान की बात कहते हैं एवं उस मुनि से क्षमा याचना करते हैं कि मैंने आपके ऊपर विश्वास नहीं किया। समझ की भिन्नता से भिन्नता हो सकती है पर सत्य को समझाने का लक्ष्य हो तो उस प्रसंगानुसार एकरूपता बन सकती है।

परमात्मा के दर्शन कैसे हों? आज भी एक जिज्ञासा मेरे सामने आई थी कि क्या हम किसी को अनुभूति का संवेदन करा सकते हैं! जो मैंने जाना है उसका एहसास दूसरों को कराया जा सकता है!

मैंने कहा यह संभव नहीं है। अपनी अनुभूति को शब्दों से व्यक्त नहीं कर सकते क्योंकि शब्द अधूरे होंगे। पूरे नहीं होंगे। अनुभूति को कभी भी शब्दों में ढाला नहीं जा सकता है। जैसा मैंने अनुभव किया, वैसा ही अनुभव आप करोगे, यह जरूरी नहीं है क्योंकि शब्दों का अर्थ भी हम अपने-अपने तरीकों से ढूँढ़ते हैं। अपने तरीके से लगाते हैं, कैसे ढूँढ़ते हैं, कैसे लगाते हैं, एक घटना से जान सकते हैं।

गंगाशहर-भीनासर की बात है। आचार्य पूज्य श्री नानालाल जी

म.सा. ने संघ-सेवा पर व्याख्यान दिया। बात चली कि संघ की सेवा करने से क्या लाभ होता है।

प्रवचन उठने के बाद बहुत सारे लोग कहने लगे कि गुरुदेव, आज तो आपने पूरा व्याख्यान मेरे पर ही दिया।

धर्म संघ में, संघ की व्यवस्था में, संघ की सारणा, वारणा, धारणा में कहाँ-कहाँ हम अटक जाते हैं? चतुर्विधि की सेवा से, वर्णवाद से क्या लाभ होता है? आप में से कोई बताएगा कि क्या लाभ होता है?

सुलभ बोधि की प्राप्ति होती है। सेवा ही नहीं, केवल उसका वर्णवाद करने से, उसकी प्रशंसा करने से भी जीव सुलभ बोधि हो सकता है। सुलभ बोधि का अर्थ होता है कि आने वाले समय में बोधि ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सुलभता से प्राप्ति होना। उसको ज्यादा पापड़ बेलने नहीं पड़ेंगे। आसानी से उसको ज्ञान की प्राप्ति होगी। दर्शन एवं चारित्र की प्राप्ति होगी। कई लोगों को बड़ी कठिनाई से ये सारी चीजें प्राप्त होती हैं। कई लोग बहुत पुरुषार्थ करते हैं तब जाकर उनको प्रतिक्रमण याद होता है। सामायिक का पाठ याद होता है। बहुतों को वह भी नहीं हो पाएगा।

यहाँ सभा में जितने भी भाई लोग बैठे हैं, उनमें कितने लोग हैं जिनको सामायिक के पूरे आठ पाठ याद हैं? कितने लोग हैं, हाथ खड़े करो?

(थोड़े लोगों ने अपने हाथ ऊपर किये)

इतने ही लोगों को याद है! जो लोग हाथ खड़ा नहीं कर रहे हैं, उन सबको याद नहीं है? जब सामायिक का पाठ भी याद नहीं है तो फिर प्रतिक्रमण की, आगम की बात कहाँ से करें!

माष्टुष मुनि की एक कहानी है। वह याद करने के लिए गुरु महाराज से पाठ लेता है। याद करने बैठता और भूल जाता। पहले मौखिक वाचनी चलती थी, आज की तरह लिखित में तो होता नहीं था।

वह वापस आकर पूछता कि गुरुदेव क्या पाठ है, मैं भूल गया!

कई संतों ने कहा कि बार-बार आकर क्यों गुरुदेव का टाइम खराब कर रहा है। कई लोग कह रहे हैं इसकी बुद्धि मंद है, किंतु मेहनत बहुत करता

है। कई संत उसकी प्रशंसा करते हैं और कई संत उपेक्षा करते। माष्टुष मुनि ने एकदा गुरुदेव के सामने जाकर कहा कि गुरुदेव कई संत कह रहे हैं कि देखो यह कितना मेहनत करता है तो मुझे अच्छा लगता है। कई कहते हैं कि यह तो ठोठीराम है, फालतू गुरुदेव का टाइम खराब कर रहा है तो मेरे मन में उनके प्रति कुछ द्वेष भाव जग जाता है कि ये अपने आपको क्या समझ रहे हैं।

गुरुदेव कहा कि एक सूत्र याद कर ले। ऐसा कहते हुए गुरु ने सूत्र दिया - 'मा रूस मा तूस' अर्थात् कोई तुम्हारी निंदा करे तो मन में द्वेष नहीं आने देना और कोई तुम्हारी प्रशंसा करे तो खुश नहीं होना।

मा रूस मा तूस का मतलब जब कोई निंदा करे, उस समय मन को छोटा नहीं करना, मन को भारी नहीं करना। मन में खिन्नता नहीं आने देना। और कोई प्रशंसा करे तो मन में ठंडी लहरें मत चलने देना कि मेरी कितनी प्रशंसा कर रहे हैं। किसी के प्रति अनुरक्ति का भाव बनना भी साधना में बाधक है। खिन्नता आना भी साधना में बाधक है। गर्म हवा चले तो भी आदमी को पीड़ा होती है और शीतलहर चले तो भी उसको पीड़ा होती है। जिसके पास दो-चार रजाई हो, हीटर लगा हो, उसको शीतलहर में दिक्षित नहीं होगी, किंतु जिनके पास साधन नहीं होते उनकी हालत क्या होती है?

हवा चाहे ठंडी हो या गरम, चाहे अनुकूल स्थिति हो या प्रतिकूल स्थिति, यदि हर्ष और खिन्नता का भाव पैदा होता है तो वह हमारी साधना में रुकावट पैदा करने वाला होता है।

गुरु महाराज ने उससे कहा था कि एक सूत्र याद कर लेना मा रूस मा तूस। सूरज ढलने लगा। इतने में हाजत हो गई। वह निपटने के लिए जंगल में गया। उतने समय में वह भूल गया कि गुरुदेव ने क्या सूत्र दिया था।

यह बात मैं इसलिए बता रहा हूँ कि कइयों की बुद्धि इतनी मंद होती है, कि एक सूत्र याद करना कठिन होता है, किंतु ज्ञानीजन कहते हैं कि यदि वह पुरुषार्थ करते रहें तो कुछ कठिन नहीं है। एक दिन उस कठिनाई को पार करेंगे। कठिनाई समझकर हम खड़े हो गए कि इतनी ऊँची घाटी पर मैं नहीं चढ़ सकता तो कभी नहीं चढ़ पाएंगे।

जो चढ़ने का प्रयत्न करता है, भले ही बीच-बीच में विश्राम भी

करना पड़े वह चढ़ जाता है।

बम्बोरा वाले बाबा कदमालियाजी रोज सुबह हाँफते-हाँफते ऊपर चढ़ जाते हैं और दर्शन करते हैं। वे चढ़ने का प्रयत्न करते हैं तो चढ़ जाते हैं और नीचे ही खड़े रहते कि मेरे से चढ़ना नहीं होता तो नहीं चढ़ पाते। जो घाटी को देखकर रुक जाएगा, उससे घाटी पार नहीं होगी किंतु चलने वाला घाटी पार कर लेगा। हो सकता है कि उसे दो-तीन जगह विश्राम करना पड़े, किंतु वह पार कर लेगा और नहीं चलने वाला वहीं खड़ा रह जाएगा।

कई लोग सोच लेते हैं कि सामायिक का पाठ याद होना मुश्किल है। 24 तीर्थकरों के नाम याद होना मुश्किल है। मुश्किल मान लिया तो मुश्किल ही है। आसान बनाया है तो प्रयास करना होगा। यहाँ बैठने वालों में से 24 तीर्थकरों के नाम किस-किसको याद है ?

24 तीर्थकरों के नाम याद हो या ना हों, किंतु क्रिकेट के खिलाड़ियों के नाम याद होंगे! खिलाड़ियों के नाम याद रह जाते हैं। सिने जगत के एकटरों के नाम मुखाग्र होंगे पर 24 तीर्थकरों के नाम याद नहीं रहते। मैं तो एक-दो खिलाड़ियों का भी नाम नहीं जानता। 24 तीर्थकरों से बढ़िया खिलाड़ी और कौन होगा? जो चौके-छक्के सब लगाकर संसार सागर से पार हो गए। उनसे बढ़कर और कोई खिलाड़ी होगा क्या, जिसने सब जगह पर जीत हासिल की। कितने ही उपसर्ग आए, कितनी ही कठिनाइयाँ आई, उन पर उन्होंने जीत हासिल की।

कर्म जीते या तीर्थकर जीते ?

(लोगों ने कहा- तीर्थकर जीते)

कर्मों ने जीत हासिल की या तीर्थकरों ने जीत हासिल की ?

(लोगों ने कहा- तीर्थकरों ने जीत हासिल की)

तीर्थकरों का ध्येय था कि मुझे मेरे रास्ते पर चलना है, तुम्हें जो करना है कर लो।

यह बहुत सुंदर बात है कि तुम्हारा काम तुम करते रहो, मुझे मेरा काम करना है। तुम्हारा काम कष्ट देने का है तो देते रहो, मेरा काम चलना है तो मैं

चलता रहूँगा। रुकूँगा नहीं। मुझे कितना ही रोकना चाहो मैं रुकूँगा नहीं।

‘चरैवेति, चरैवेति।’

मैं चलता रहूँगा, चलता रहूँगा। मैं नहीं रुकूँगा, डटा रहूँगा। ऐसा मनोबल हमारा होना चाहिए। ऐसे मनोबल के बिना हम सिद्धि प्राप्त नहीं कर पायेंगे। मुक्ति प्राप्त नहीं होगी। सही तरीके से धर्म की आराधना नहीं कर पाएँगे। धर्म की आराधना के लिए भी मनोबल ढूढ़ होना जरूरी है।

माषातुष मुनि का मनोबल ढूढ़ था। वह सूत्र भूल गया, किंतु मनोबल ढूढ़ था। वह बड़ी शंका से निवृत हो लौट रहा था कि एक जगह उड़द और उसके तूस दोनों के अलग-अलग ढेर पड़े थे। उसने एक ढेर की ओर संकेत करके किसान से पूछा कि यह क्या है?

किसान ने कहा, यह मास है-उड़द है।

उसने दूसरे ढेर की तरफ इशारा करके पूछा कि यह क्या है?

किसान ने कहा कि यह तुष है। छिलका है।

उसने सोचा गुरु महाराज ने भी तो यही कहा था।

गुरु महाराज ने जो कहा उसमें मा रूस था उसका मास हो गया और महा तूस में तूस रह गया और हो गया माषतूष।

इस पर उसकी विचारधारा चलने लगी कि गुरु महाराज के कहने का अर्थ यह हुआ कि तूष की तरह शरीर भिन्न है और मास की तरह आत्मा भिन्न। शरीर और आत्मा पर उनका विचार चला और उसे वहीं पर केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। जो एक सूत्र, एक श्लोक याद नहीं कर पा रहे थे, पुरुषार्थ ने उन्हें कहाँ पहुँचा दिया। पुरुषार्थ बहुत आवश्यक है। सोच लें कि मुझे पुरुषार्थ करना ही है। मेरे पास दूसरा विकल्प है ही नहीं। मैं करके ही रहूँगा। मुझे करना ही है।

बोलो क्या करना है? जिनको 24 तीर्थकरों के नाम याद नहीं हैं, वे आज कितने तीर्थकरों के नाम याद करेंगे? बोलो; दो, चार, पाँच, छह कितने नाम याद करेंगे?

कुछ तो याद करो। दो दिन में, चार दिन में कौन-कौन पूरे तीर्थकरों के नाम याद कर लेंगे? किन-किनको नाम याद नहीं हैं, खड़े हो जाओ।

दो दिन में, तीन दिन में, चार दिन में। अपनी-अपनी मरजी है। एक दिन में याद करो तो बढ़िया, दो दिन में याद करो तो अच्छा और चार दिन में याद करो तो भी बढ़िया। संकोच मत करना कि लोग क्या बोलेंगे कि इसको 24 तीर्थकरों के नाम भी याद नहीं हैं। अभी पहले पूछा तो लोगों ने हाथ खड़े नहीं किए और अभी खड़े भी नहीं हो रहे हैं। लोग सोच रहे हैं कि नाम याद तो कर लेंगे, पर खड़ा नहीं होना, नहीं तो लोग कहेंगे कि तीर्थकरों के नाम भी याद नहीं है। याद नहीं है तो नहीं है। आदमी को अपना नाम भी याद नहीं रहता है, भूल जाते हैं। अपना नाम भूल जाए तो बहुत अच्छी बात है, पर माता-पिता के उपकार को मत भूलना। गुरुजनों के उपकार को नहीं भूलना। यह परम सफलता का सूत्र होगा। जिसने अपने ऊपर उपकार किया, उसको नहीं भूलना। अपना नाम भले ही भूल जाना।

अपना नाम भूल जाओ तो अच्छी बात है, किंतु तीर्थकरों का नाम याद कर लेना। याद हो जाएगा। अभ्यास करने से क्या नहीं हो सकता। अभ्यास करने से लोगों ने बड़ी-बड़ी सफलताएँ प्राप्त की हैं। हम पहले ही मन से हार जाते हैं कि यह अपने वश की बात नहीं है। जब हम सोच लेते हैं कि अपने वश की बात नहीं है तो हम खुद ही अपनी बुद्धि पर ताला लगा देते हैं। अब जब तक ताला नहीं खुलेगा तब तक प्रवेश कैसे करोगे ?

मत-मत भेदे रे जो जर्ड पूछिये सुहृथापे अहमेव

आनन्दघन जी कहते हैं बड़ी विचित्र समस्या है भगवन् कि जहाँ जाओ सब अपनी-अपनी बात कहते हैं। सभी अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग अलापते हैं। समझ में नहीं आता कि क्या करें। ध्यान दें, जब तक हम दूसरों पर आधारित रहेंगे, दूसरों के सहारे की अपेक्षा करते रहेंगे, तब तक 100 समस्याएं हमारे सामने खड़ी रहेंगी। बाजार में चार सौ रुपये से लेकर चार हजार रुपए किलो तक धी बिकता है। एक किलो धी चार सौ रुपये में भी मिल रहा है और चार हजार रुपये में भी मिल रहा है। सब ही कहते हैं कि हमारे पास असली धी है। आप धी खरीदने के लिए गये तो क्या करोगे ? चार सौ वाला धी लोगे या चार हजार वाला लोगे ! क्या करोगे बताओ ?

(एक व्यक्ति ने कहा, क्षमता के अनुसार लेंगे)

जैसी क्षमता होगी वैसा लेना, पर वहाँ यह प्रश्न दिमाग में उठेगा या नहीं कि कोई चार सौ में क्यों दे रहा है और कोई चार हजार क्यों माँग रहा है?

फिर वहाँ आप अपने मन से समाधान लगाओगे कि क्लालिटी-क्लालिटी में फर्क है। इसलिए एक चार सौ रुपये में ही दे रहा है तो दूसरा चार हजार रुपये में देता है, किंतु दोनों की क्लालिटी में फर्क है। दोनों को प्रयोगशाला में प्रयोग करने पर एक समान क्लालिटी आए तो आप चार सौ रुपये वाला धी लोगे या चार हजार रुपये वाला?

(लोगों ने कहा - चार हजार रुपये वाला लेंगे)

दोनों की क्लालिटी एक ही हो, तो चार हजार वाला धी क्यों लोगे! वैसे ही धर्म के विषय में भगवान ने कहा कि अपनी प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करो और तत्व का विनिश्चय करो। हमने अपनी प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा कर ली तो हमें अपने आप ज्ञात होगा कि धर्म और अधर्म में क्या अंतर है। जो हमारे मन को समाधि देने वाला हो, जिससे हमारे मन को समाधि मिलती हो, हमारे मन का दूंदू दूर होता हो, दुविधा खत्म होती हो, वह धर्म है।

लोग अक्सर दुविधा में पड़ जाते हैं। एक भाई आया और कहने लगा कि म.सा., मेरे पिता जी मंदिरमार्गी हैं, मेरी माता दिगम्बर समाज से हैं। मेरा भाई तेरापंथी बन गया। मेरी भाभी स्थानकवासी हैं, मुझे क्या करना चाहिए?

मैंने उस भाई से कहा, भाई तुम मोक्षमार्गी बन जाओ। कोई मंदिरमार्गी है, कोई दिगम्बर समाज से है, कोई तेरहपंथ से है, कोई स्थानक से है, तुम मोक्षमार्गी बन जाओ। एक नया मार्ग खड़ा करना पड़ेगा। पहले से इतने मार्ग पड़े हैं फिर एक नया मार्ग खड़ा करना पड़ेगा। वैसे मोक्ष मार्ग तो बहुत पहले से है, किंतु धीरे-धीरे वह लुम होता जा रहा है।

आचार्य उमास्वाति जी ने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र मोक्ष का मार्ग है। इस पर चलने वाला मोक्षमार्गी है। आचार्य उमास्वाति जी ने कहा तब से ही नहीं, मोक्ष मार्ग उससे भी पहले से है, किंतु हम चलें तब ना! हम उस मार्ग पर चलेंगे तो मोक्षमार्गी बन जाएंगे। नहीं चलेंगे तो यहीं खड़े रहेंगे। इसलिए समस्याओं में उलझो मत कि हम क्या करें! हमें अपनी प्रज्ञा से हल ढूँढ़ना है। हम यदि अपनी बुद्धि का प्रयोग करेंगे तो

बहुत सांत्वना मिलेगी और मन विश्वास से भर जाएगा कि मैंने जो साधना की है, उससे मुझे समाधि मिल गयी। शांति मिल गयी।

मन की दुविधा खत्म होना धर्म है। जिससे चित्त में समाधि आ जाए, वह धर्म है। उस धर्म की मुझे आराधना करनी है।

शांतिलाल कौन-से धर्म की आराधना कर रहा है ?

सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार।

एक कहावत है कि ‘ओछी पूँजी बाणिये ने खावे’ यानी कम पूँजी से व्यापार ऊपर नहीं उठ पाता। खर्चों के सामने आदमी उलझ जाता है। कर्ज में आ जाता है। कर्जदार बन जाता है। उसके सामने समस्या खड़ी हो जाती है। मूल पूँजी चुकाना तो दूभर हो ही जाता है, ब्याज चुकाते-चुकाते कमर टेढ़ी हो जाती है। बड़ी समस्या खड़ी हो जाती है।

एक जमाना था जब लोग कर्जा लेना नहीं चाहते थे। कोई उधारी नहीं रखना चाहता था। आज की संस्कृति यह हो गई है कि बिना कर्जे के व्यापार नहीं करना। कर्जा लो और व्यापार करो। व्यापार चले तो ठीक, नहीं तो अपना कुछ गया नहीं। हाथ ऊँचे कर दो।

अन्न आपरो, धन आपरो, म्हारी तो खाली वाह-वाही है।

एक सप्राट के दीवान जी प्रज्ञासम्पन्न थे। किसी भी समस्या का समाधान बहुत जल्दी निकाल देते थे। जिस विषय को कभी सुना नहीं, कभी जाना नहीं, कभी समझा नहीं, कभी सामने आया नहीं फिर भी उसकी तह में जाना, उसका समाधान ढूँढ़ना उनके बाएं हाथ का खेल था। बहुत बार उन्होंने बाजी मारी थी। कुछ लोगों ने राजा के कान भेरे कि इतने बड़े दीवान जी ने एक भी दिन आपको अपने घर भोज नहीं दिया। एक दिन तो कम से कम भोज होना चाहिए।

राजा ने दीवान जी से कहा, भाई क्या कारण है कि तुमने हमें कभी घर पर नहीं बुलाया।

दीवान जी समझ गए फिर भी उन्होंने कहा, राजन मैं धन्य हो जाऊंगा।

राजा ने कहा, कौन-सी तिथि फाइनल करूँ ?

दीवान जी ने सोचा कि राजा को बुलाना सरल काम नहीं है।

रामनाथ कोविंद को निवेदन किया तो कितने लोग आएंगे साथ में? ऐसा तो है नहीं कि अकेले आएंगे। अमेरिका का राष्ट्रपति यदि भारत में आएगा तो अकेला टिकिट कटाकर नहीं आएगा। सैकड़ों लोग साथ में आएंगे। ये अधिकारी, वो अधिकारी, ये पदाधिकारी, वो पदाधिकारी। वह अकेला नहीं आएगा।

तारीख तय कर ली गयी। राजा ने पूछा, भाई मैं कितने लोगों को साथ ले आऊं!

दीवान ने कहा- अन्नदाता आप तो कृपा कराओ। आप चाहो जितने लाओ, ऐसा मौका कहाँ मिलेगा। (ना भी कहे तो शर्म की बात होती)

सप्राट ने सबसे कह दिया कि जिसको भी दीवान के यहाँ पर चलना है, सबको छूट है।

दीवान जी के पैरों के नीचे से जमीन खिसकने लगी पर दीवान जी भी हार मानने वाला जीव नहीं था।

भोज से एक दिन पहले एकदम मायूश चेहरा लेकर हताश-निराश जैसी स्थिति में राजा के पास उपस्थित हुए। दीवान का मुँह लटका हुआ था।

राजा ने कहा, दीवान जी क्या बात हुई! कोई तकलीफ हो तो बता दो मैं कुछ व्यवस्था कर दूंगा।

दीवान जी ने कहा कि आपकी कृपा तले सब अच्छा है पर एक बात है- मैंने लाख कोशिश कर ली, किंतु थाली, लोटे नहीं मिल रहे हैं। मैंने सब साधन जुटा लिए, किंतु जीमने के लिए थाली और पानी के लिए लोटा नहीं मिल रहा है। पत्तल पर खिलाना अच्छा नहीं है। बस इतना ही निवेदन है कि खाने वाले सभी लोग अपने-अपने घर से थाली और लोटा लाएं।

राजा ने कहा, यह भी कोई कहने की बात है। जो भी भोज करने आएगा, वह थाली और लोटा साथ में ले आएगा।

दूसरे दिन सैकड़ों-हजारों लोग भोजन करने आ गए। लोग भोजन करने बैठे। पुराने समय में ऊपर से हिलाने वाला पंखा हुआ करता था। पंखे झेलने वाले झेल रहे हैं। परोसगारी की जा रही है। लोग कह रहे हैं कि वाह!

दीवान जी ने क्या भोज दिया है। लोग खा रहे हैं और दीवान जी की प्रशंसा कर रहे हैं।

दीवान जी सबका उत्तर दे रहे हैं ‘अन्न थांरो, धन थांरो, मेरी तो खाली वाह-वाही है’ अर्थात् अन्न आपका है, धन आपका है, मेरा तो बस नाम है। मेरा तो नाम हो रहा है। मेरा कुछ नहीं है।

लोग कहने लगे, दीवान जी कितने नम्र हैं कि इतना सबकुछ किया, किंतु चेहरे पर यह नहीं झलक रहा है कि मैंने किया। लोगों ने प्रशंसा की, किंतु वे कह रहे हैं ‘अन्न थांरो, धन थांरो, म्हारी तो खाली वाह-वाही है’

खाना खाने के बाद सब लोग जूठी थाली-लोटा उठा ले जाने लगे तो दीवान जी ने कहा, मुझे इतना शर्मिंदा मत करो। जूठी थाली आप लेकर जाएं, यह ठीक नहीं लगता। आप जूठी थाली उठाकर नहीं ले जाएं।

सब लोगों ने सोचा कि कहाँ जाएगी थाली और उन्होंने थाली-लोटे वहीं छोड़ दिए।

घर में खाएंगे तो पीतल की, स्टील की थाली में खा लेंगे, किंतु कहीं जीमने जाना हो तो घर में जो बढ़िया से बढ़िया थाली होती है उसे ले जाते हैं। कांसे की, चाँदी की जो बढ़िया से बढ़िया थाली होगी ले जाएंगे।

कौन-सी थाली ले जाओगे ?

(लोगों ने कहा- बढ़िया से बढ़िया थाली ले जाएंगे)

एक-दो दिन निकला, तीन दिन निकला, लोगों के घर थाली-लोटा नहीं पहुँचा। लोगों ने राजा से कहा, अन्नदाता अभी भी दीवान जी के वहाँ से थाली-लोटा नहीं पहुँचा।

राजा ने दीवान जी से कहा, क्या बात है न राजदरबार की थाली आई, न अधिकारियों व अन्य जनों की थालियां आई! न किसी और की थालियां आई!

दीवान जी ने कहा, अन्नदाता! सभी के थाली-लोटा सेठ जनार्दन के वहाँ गिरवी पड़े हैं। जहाँ से मैं सामान लाया, वहाँ गिरवी है। दीवान ने कहा, अन्नदाता! मैंने तो उसी समय कहा था कि ‘अन्न थांरो, धन थांरो, मारी तो

खाली वाह-वाही है।’ अतः अपने-अपने हिस्से के पैसे चुकाएं और थाली-लोटा ले आएं।

लोगों ने कहा, दीवान जी से बुद्धि लगाना बहुत मुश्किल है। बाल की खाल निकालने में ये सक्षम हैं। हमने सोचा कि आया ऊँट पहाड़ के नीचे, किंतु ये आने वाला नहीं है।

लोगों ने अपने-अपने पैसे चुकाए और थाली-लोटा लेकर आए।

अन्न थारो, धन थारो, म्हारी तो खाली वाह-वाही है।’ ये किसका खेल हुआ?

(एक व्यक्ति ने कहा- बुद्धि का खेल हुआ)

बात मैं शांतिलाल की कह रहा था, किंतु बीच में दूसरी बात आ गई।

‘ओछो धन बाणिये ने खावे।’ ओछी पूँजी वाला महाजन जल्दी से ऊपर नहीं उठ पाता। उसके मन में बड़ी समस्या रहती है कि क्या करूँ, क्या नहीं करूँ! ले-देकर आशा ही आशा करता रहता है। संतोष धन का सहारा लेकर आगे बढ़ता है।

मैंने पहले ही बता दिया कि शांतिलाल की दुकान छोटी थी। उसका घर छोटा था। आशा ने कहा, नाथ! निराश होने की बात नहीं है। निराश होने से समस्या का समाधान नहीं होगा।

शांतिलाल कहता है कि तुम सही बात कह रही हो, किंतु अभाव के कारण भाई की पढ़ाई नहीं छूटनी चाहिए। उसने कहा कि जो इकट्ठा था वह माता-पिता की बीमारी पर खर्च हुआ। अब छोटे भाई की डॉक्टरी की पढ़ाई की भारी फीस चुकानी है। शांतिलाल ने मेहनत की। प्रयत्न किया। अपने पेट पर गाँठ लगाई और अपने भाई की फीस भरी। भले ही कर्जा लेना पड़ा, किंतु उसने कहा कि भाई की पढ़ाई रुकनी नहीं चाहिए।

‘सत्य सदा जयकार भविकजन, सत्य सदा जयकार’

शांतिलाल मेहनत कर रहा है। परिश्रम कर रहा है। पैसे का इंतजाम कर रहा है। अपने भाई को पढ़ाने के लिए पूरी तत्परता बरत रहा है। आगे क्या स्थिति बनती है अपन समय के साथ आगे बढ़ेंगे। गगन मुनि जी म.सा. के

आज 28 की तपस्या है। अक्षिता श्रीजी म.सा. के 27 की तपस्या है। और भी कइयों की तपस्या चल रही है। भाई-बहनों की तपस्या भी चल रही है। कई तो 9-11 और 15 में खिसक गए। कई आगे बढ़ रहे हैं। जिसका जितना सामर्थ्य है, वैसा चल रहा है। शक्ति के अनुसार भक्ति रहती है। हम अपनी शक्ति को जगाएं। जिन्होंने पच्चक्खाण लिया हो, न लिया हो वे भी मन में संकल्प लें कि मैं 24 तीर्थकरों का नाम याद करूँगा। इतना ही कहते हुए विराम।

27 जुलाई, 22

14. देव दर्शन ऐसे करें सुलभ

अभिनन्दन जिन दर्शन तरसिये, दर्शन दुर्लभ देव...

देव दर्शन भी दुर्लभ है। तीर्थकर महाप्रभु के दर्शन की दुर्लभता तो स्वाभाविक है। अभी पाँचवां आरा है। इस समय भरत क्षेत्र में तीर्थकर मौजूद नहीं हैं। लेकिन तीर्थकरों की वाणी, तीर्थकरों का मार्ग, तीर्थकरों की देशना अभी भी हमें उपलब्ध है। हमें प्राप्त है। दूसरी बात, वर्तमान में भी भावों से तीर्थकर भगवान के दर्शन किए जा सकते हैं। उनके दर्शन जब होंगे तब अपने तार उनसे जुड़ेंगे। आत्मा से परमात्मा का तार जुड़ेगा, तब तीर्थकर भगवान के दर्शन होंगे। तीर्थकरों के दर्शन में कई बाधाएं आती हैं। रुकावटें आती हैं।

एक रुकावट बताई गयी है बाहर की। भिन्न-भिन्न मत, अलग-अलग सम्प्रदाय अपनी-अपनी बात उकेरते हैं। कहते हैं। इससे व्यक्ति भ्रमित हो जाता है कि कौन-सा मत सही है और कौन-सा गलत! किसको किस रूप में स्वीकार करूँ! किसे मानना चाहिए! दूसरी तरफ हमारा मन पता नहीं किन-किन बातों में उलझा रहता है। वह अपने विचारों में ही मस्त बना रहता है। आत्मा और परमात्मा की दिशा में उसके विचार ही नहीं जाते। उसके भी बहुत सारे कारण हैं। आजीविका के लिए यदि व्यक्ति के पास कोई साधन नहीं है, परिवार चलाने के पर्याप्त साधन नहीं हैं, तो भी वह परमात्मा की दिशा में विचार नहीं कर पाता। जिसके पास बहुत ज्यादा धन है, बहुत साधन-सुविधाएं हैं, वह साधन-सुविधाओं में इतना ढूबा है कि उसका परमात्मा की ओर ध्यान ही नहीं जाता। वह तृष्णा की तरफ दौड़ता रहता है। वह इस फेर में लगा रहता है कि अपने धन को आगे से आगे कैसे बढ़ाऊँ। परमात्मा की दिशा उसको मिल नहीं पाती है। इसके इलावा भी हमारे मन की कुछ गतिविधियां हैं, हम अपने मन ही मन उनके चिंतन घोलते रहते हैं। चिंतन करते रहते हैं।

दो मित्र थे। एक मित्र गरीब था और एक मित्र अमीर। मित्रता अमीरी या गरीबी से नहीं होती। मित्रता का सम्बन्ध आत्मीय होता है। आत्मा से उसके तार जुड़े होते हैं। एक दूसरे के प्रति विश्वास से मित्रता निभती है। मित्रता में स्वार्थ त्याग की आवश्यकता होती है। मित्रता में हानि-लाभ नहीं देखा जाता है। स्वार्थ नहीं देखा जाता है। जहाँ जोड़-तोड़ की राजनीति चलती हो, वहाँ मित्रता नहीं निभती। इसके साथ ही कोई यह सोचकर प्रवृत्ति करे कि मित्रता करने से मुझे क्या लाभ होगा, तो उसके साथ मित्रता नहीं हो सकती।

भगवान महावीर कहते हैं कि प्राणिमात्र के साथ मित्रता का भाव होना चाहिए। प्रत्येक प्राणी को तुम अपनी आत्मा के समान समझो। उसके साथ मित्रता करो। जहाँ मित्रता का प्रवाह बहेगा शत्रुता वहाँ से दूर होती हुई चली जाएगी। मित्रता में आत्मीय सम्बन्ध होता है। वहाँ द्वेष, ईर्ष्या, नफरत अलग हो जाती है। मित्रता में ये चीजें रह नहीं पाती। जहाँ मित्रता नहीं होती, वहाँ पर द्वेष, ईर्ष्या, नफरत की गुंजाइश है। उसकी संभावना है। मित्रता बहुत मूल्यवान चीज है। मित्रता में एक बात और होती है कि वहाँ लुकाव और छिपाव नहीं चलता। मित्रता में खुलापन होगा तो ही मित्रता निभेगी, नहीं तो नहीं निभ पाएगी।

अभी दो मित्रों की बात हुई। उनकी अभिन्न मित्रता थी। किसी के मन में किसी के प्रति कोई दुराव और भेद नहीं आया। अमीर के मन में कभी यह विचार नहीं आया कि यह गरीब है, पता नहीं मेरे से क्या कुछ माँग ले! और गरीब के मन में भी नहीं आया कि यह तो बहुत अमीर है, मेरे साथ कब तक मित्रता निभाएगा!

दोनों की मित्रता चल रही थी। एक समय ऐसा आया कि गरीब के घर में कुछ मेहमान आने वाले थे। उसे इधर-उधर से कुछ सामान लाना था। उसने विचार किया कि स्कूटर मिल जाए तो इधर-उधर आने-जाने में सुविधा रहेगी। उसने सोचा कि मेरे मित्र के पास स्कूटर है, उससे दो-चार घंटे के लिए माँगकर ले आऊंगा, उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। यह सोचकर वह निकल पड़ा।

घर से चार-पाँच कदम चला ही होगा कि उसके मन में एक विचार पैदा हुआ कि मैं जा तो रहा हूँ, किंतु वह मुझे स्कूटर देगा या नहीं देगा! वो धनी

आदमी है, अमीर आदमी है, क्या पता स्कूटर दे या न दे। नहीं देना होगा तो सौ बहाने बना सकता है। वह कह सकता है कि स्कूटर में पेट्रोल नहीं है। फिर मन में कहा कि कोई बात नहीं, मैं कह दूँगा कि पेट्रोल नहीं है तो मैं डलवा दूँगा।

यह बनाव कौन बना रहा है?

गरीब मित्र बना रहा है। जबकि बात कुछ है नहीं। पर कल्पना के घोड़े दौड़ रहे थे। वही प्रश्न खड़ा करने वाला, वही उत्तर देने वाला। एक मन दो जनों का पार्ट अदा कर रहा था।

वह मन में ही अपने आप कल्पना कर रहा है कि ऐसा होगा तो ऐसा, ऐसा होगा तो ऐसा। ये बनाव जब बनाए जाते हैं तो आत्मा और परमात्मा कहाँ याद आएंगे! परमात्मा से कहाँ सम्पर्क होगा! आत्मा-परमात्मा के कहाँ दर्शन होंगे!

‘दर्शन दुर्लभ देव’

क्यों दुर्लभ हो गए दर्शन?

हमारे ही मन की गतिविधियां दर्शन को दुर्लभ बनाए हुई हैं।

सोचते-विचारते वह दो-चार कदम और आगे बढ़ा तो विचार किया कि वह अमीर आदमी है, इनकार करने में देर नहीं करेगा। दूसरे की गरीबी वो क्या जाने! दूसरे की कठिनाई वो क्या समझेगा! इस प्रकार की बातें वह अपने दिमाग में भर रहा था। दो कदम बढ़ा रहा था फिर रुक रहा था। फिर दो कदम बढ़ा रहा था फिर रुक रहा था।

ऐसे करते-करते मित्र का घर आ गया तो उसने बेल बजाई। बेल बजाते समय उसके मन में रोष आ रहा था, गुस्सा आ रहा था कि अपने आपको क्या समझ रहा है! अपने आपको पैसे वाला समझ रहा है! पैसे वाला वो ही है क्या! वो अपने आपको होशियार समझ रहा है! पैसे हो गए तो क्या हो गया! वो मना करेगा तो कह दूँगा कि नहीं चाहिए तुम्हारा स्कूटर।

इतने में उसके मित्र ने दरवाजा खोला और उसके सामने आकर खड़ा हो गया। जैसे ही दरवाजा खुला तो गरीब मित्र कहने लगा कि मत दे स्कूटर, तुम्हारे जैसे स्कूटर बहुत देखे हैं मैंने।

अमीर मित्र को कुछ समझ में नहीं आया कि वह ऐसा क्यों बोल रहा है। उसको कुछ मालूम नहीं था कि बात कहाँ से बनी और कहाँ तक पहुँची। गरीब मित्र अपने मन के विचारों को ही गूँथते चला गया। जैसे बहनें चोटी गूँथती हैं, जैसे लोग रस्सी गूँथते हैं, वैसे ही वह विचार गूँथता चला गया।

ऐसी एक बात नहीं, हम दुनियाभर की कितनी बातें सुनते होंगे। कितने ही व्यक्तियों के बारे में सुनते होंगे। अनेक पदार्थों के बारे में सुनते होंगे। उनको सुन-सुनकर मन में विचारों की उधेड़ बुन चलती रहती है। यही कारण है ‘दर्शन दुर्लभ देव’ का।

मद और अहंकार के वश में होंगे तो परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे। क्रोध के वश में चलेंगे तो परमात्मा के दर्शन नहीं होंगे।

जैसे गर्म पानी से भाप उठती है, वैसे ही हमारे विचारों की भाप उठती रहेगी। उस भाप में कुछ भी दिखना मुकिशल हो जाएगा। ठंडे पानी में, स्थिर पानी में कोई अपना चेहरा देखना चाहे तो उसमें दिख सकता है, किंतु वही पानी गर्म हो गया, उसमें से भाप निकल रही हो तो चेहरा नहीं दिखेगा। खौलते पानी में चेहरा देखना चाहेंगे तो नहीं दिखेगा। वैसे ही हमारे विचारों में भाप बनती रहे, ऊबाल आता रहे तो देव दर्शन दुर्लभ होंगे। ऊबाल चाहे क्रोध का हो या मान का, देव दर्शन दुर्लभ होगा। लोभ में घिरे हों या किसी अन्य कषाय में, देव का दर्शन दुर्लभ होगा।

कषाय में घिरा हुआ व्यक्ति अंधा हो सकता है। अंधा होने का मतलब है कि उसको उस समय कुछ भी नजर नहीं आता। जिस समय आदमी क्रोध में होता है, अहंकार में आता है, उस समय वह सही रूप से समझने में सक्षम नहीं होता। तत्त्व की सही अवस्था को जानना उसके लिए दुष्कर है। वह उस दशा में समझने का रुझान ही नहीं कर पाएगा। उसकी रुचि ही नहीं बन पाएगी। क्रोध के वशीभूत होकर आदमी कितना झूठ बोलता है और क्या-क्या बोल जाता है, उसे स्वयं पता नहीं रहता। जिस समय आदमी अत्यंत क्रोध में होता है, उस समय वह बोलना कुछ चाहता है और मुँह से निकल कुछ और जाता है। क्रोध में बोलने पर शब्द टूट-टूटकर निकलते हैं। एकदम सही बोलना बहुत कठिन होता है। बोलने में चूक होगी। भाषा में चूक होगी। उसका नियंत्रण

अपने आप पर रह नहीं पाता है। बहुत कम व्यक्ति क्रोध के क्षणों में अपने नियंत्रण को बनाए रखने में समर्थ होते होंगे। ऐसे व्यक्ति विरले होते हैं, अन्यथा पानी का बहाव आया और बाँध टूट गया। अधिकांशतया हम प्रवाह में बह जाते हैं। जैसे कच्चे बाँध पानी के बहाव से टिक नहीं पाते वैसे ही क्रोध के बहाव में हमारा नियंत्रण नहीं टूटे, यह बहुत कम संभव है। बाँध पक्का हो तो हो सकता है कि पानी के बहाव में नहीं बहे।

खैर, दोनों मित्रों की बातों पर लौटते हैं। जब गरीब मित्र ने कहा कि मत दे स्कूटर तो अमीर मित्र ने कहा, भाई तुमको हो क्या गया?

गरीब मित्र ने कहा कि मत पूछो क्या हो गया! तुम ज्यादा समझदार हो गए हो।

‘जो ना जाने इनसान को, वह क्या जाने भगवान को’

जो इनसान की पहचान नहीं कर सकता, इनसान के साथ सद्वाव नहीं रख सकता, भगवान के साथ उसकी सद्वावना बन पाना बहुत कठिन है। एक बात कही जाती है कि ‘ना जाने किस वेश में मिल जाए भगवान रे...’

भगवान किस वेश में मिल जाए, किस पोज में मिल जाए, हमें पहचान नहीं होगी। हम पहचान नहीं पाएंगे।

एक व्यक्ति को हीरा मिला, किंतु उसको पहचान नहीं थी कि यह हीरा है। कीमती है। वह उसको पत्थर समझकर उछालता हुआ आ रहा था। उससे खेलता हुआ आ रहा था। आते-आते एक दुकान पर ठहर गया। उसको तम्बाकू लेना थी। उसने दुकानदार से कहा कि दस पैसे की तम्बाकू दे दो। पुराने जमाने में दस पैसों में तम्बाकू आ जाती थी।

अब कितने पैसे लगते हैं?

(एक व्यक्ति ने कहा— दस रुपए लगते हैं)

अच्छा आपको पता है! इसका मतलब है आप भी खरीदते होंगे! नहीं खरीदते तो कैसे मालूम होता कि दस रुपए कीमत है। हड्डबड़ी में गड़बड़ी हो जाती है। उस समय दस पैसों में आ जाती थी तम्बाकू। बनिये ने तराजू उठाया। एक पलड़ा भारी और एक पलड़ा हल्का था। उसने दोनों पलड़े बराबर

किए। बनिये ने उसके पास पत्थर देखा तो कहा कि यह पत्थर मेरे को दे दो, मैं तुमको एक चिमटी ज्यादा तम्बाकू दे दूँगा। उसने कहा मुझे एक चिमटी ज्यादा तम्बाकू दे रहा है तो एक चिमटी तम्बाकू ज्यादा ले लूँ। व्यक्ति ने बनिया को हीरा दे दिया। उस दुकानदार ने सोचा रोज-रोज समझा होती है, उसने हीरे को डोरी के सहारे तराजू से बाँध दिया। हीरा लेने वाला भी नहीं जान रहा है और देने वाला भी नहीं जान रहा है कि यह हीरा है। दोनों उसे पत्थर समझ रहे हैं। दोनों की आँखों में परख नहीं है। परख नहीं है तो उनके लिए हीरा भी पत्थर है। जो उसे जानेगा उसके लिए हीरा है और जो नहीं जानेगा उसके लिए पत्थर है।

यहाँ बैठने वालों में से डच भाषा किस-किसको आती है? शायद ही आती होगी। कौन हैं जो चाइनीज भाषा को आसानी पढ़ लेते हैं? कुछ होंगे। कइयों के चाइना से व्यापारिक सम्बंध हैं। वे शायद समझ लें चाइनीज भाषा को, किंतु उसको लिखना बहुत कठिन है। उसकी लिपि बहुत कठिन होती है। उस अक्षर में कुछ भी लिख हुआ हो, हमारे लिए वे अक्षर किसी मतलब के नहीं हैं। समझ लो काला अक्षर भैंस बराबर। हम नहीं पढ़ पाएँगे।

वैसे ही पहचान नहीं है तो हीरा भी हमारे लिए पत्थर होगा। उसका कोई मूल्य नहीं है। यह कहानी गुरुदेव कई बार फरमाया करते थे। संयोग से उस ओर चार-पाँच मित्रों का एक दल निकला। उनमें से एक जौहरी था। उस दल ने वहाँ रुकने का विचार किया। सोचा कि थोड़ी देर रुकेंगे और खाना-पानी यहीं करेंगे। यदि यहाँ आटा-दाल मिल जाए तो दाल-बाटी बना लेंगे।

जौहरी उस दुकान पर आया और पूछा कि आटा मिलेगा क्या?

दुकानदार ने कहा, मिल जाएगा।

जौहरी ने उससे दाल-बाटी के सामान तौलवाए। इसी बीच उसकी आँख कहीं चली गई?

उसकी आँख कहाँ गई?

(लोगों ने कहा- हीरे पर गई)

उसकी नजर हीरे पर गई। उसने दुकानदार से कहा कि यह पत्थर बेचोगे क्या?

बनिया तो ऐसा होता है कि खाने के लिए थाली में रोटी रखी हो और कोई ग्राहक आ जाए उसे खरीदने के लिए तो उसको भी बेचने के लिए तैयार हो जाता है। सोचता है कि दूसरी रोटी बन जाएगी। दूसरी रोटी खा लेंगे।

उसने कहा— हाँ बेचूंगा।

जौहरी ने कहा कितने रुपए लोगे ?

उसने कहा पाँच रुपए लूंगा।

किससे बोला ?

जौहरी से बोला

क्या बोला ?

जौहरी से बोला कि पाँच रुपए लूंगा।

‘हीरे की कीमत, भाई कुंजड़ो तो जाणे काँई

जोहरी सूं परख कराओ रे तो भवि भाव।’

हीरे की कीमत किससे करवानी चाहिए ?

साग-सब्जी का व्यापार करने वाले के पास हीरा ले जाकर कहें कि इसकी कीमत बताओ तो वह क्या कीमत बताएगा ! जिसने कभी हीरा देखा नहीं, हीरा परखा नहीं, वह क्या मोल बताएगा।

वैसे ही हमारी आँख में यदि इनसान की परख नहीं है तो हम भगवान की परख करने में समर्थ नहीं होंगे। भगवान की परख करना संभव नहीं होगा। हमारे लिए भगवान की परख करना असंभव है क्योंकि हम किसको समझें कि कौन भगवान है।

भगवान महावीर के युग में क्या सभी लोग समझ गए कि यह महावीर भगवान हैं ? यह तीर्थकर है ? क्या सभी लोगों ने उनकी पहचान कर ली थी ?

गौतम जैसे लोग भी भगवान के सम्पर्क में आए, सुधर्मा जैसे भी लोग सम्पर्क में आए और वे समझ गए कि ये तीर्थकर हैं। भगवान हैं। गोशालक भी भगवान के सम्पर्क में आया, किंतु उसके अहंकार ने, उसके इगो ने कभी भी स्वीकार नहीं किया कि ये भगवान हैं। इस स्वार्थ के भाव से भगवान के साथ तो चला कि साथ रहूंगा तो मुझे खाना ठीक से मिल जाएगा, भिक्षा अच्छी

तरह से मिल जाएगी, किंतु भगवान पर विश्वास कभी नहीं कर पाया। तेजोलेश्या की लब्धि का प्रयोग भगवान से सीखा और उसका प्रयोग भी भगवान पर कर दिया। वह भगवान को नहीं पहचान पाया। भले ही कितना ही ज्ञानी रहा होगा, किंतु उसके अहंकार का बोझ इतना भारी था, उसका धुआं उसके मन इतना फैला हुआ था या इतना घना था कि वह आदमी भगवान को नहीं पहचान पाया।

जौहरी ने रत्न की पहचान तो कर ली, किंतु उसके मन में लोभ समागया कि ये दुकानदार, रत्न को जानता नहीं है तभी इसने तराजू पर बाँध रखा है। उसने दुकानदार से पत्थर बेचने की बात की तो दुकानदार ने कहा कि पाँच रुपए में बेचूंगा। जौहरी ने कहा कि चार रुपए ले लो ? यह बुद्धि बनिए में होती है। वह जान गया कि इसको कीमत मालूम नहीं है, इसने ऐसे ही पाँच रुपए बोल दिए। जौहरी ने चार रुपए मोल किया।

दुकानदार को लगा कि इस पत्थर में कुछ खासियत है तभी ग्राहक चार रुपये देने को तैयार हुआ है ऐसा सोचकर उसने कहा कि इसके पाँच रुपये से कम नहीं लूंगा।

जौहरी ने सोचा कि कहाँ जाएगा, पहले दाल-बाटी खा लेता हूँ, बाद में जाते हुए ले जाऊंगा।

संयोग से उसी जगह एक दूसरा दल भी आया। उसमें भी एक जौहरी था। वह भी आया वहाँ पर आटा खरीदने के लिए। उसकी भी दृष्टि गई उस हीरे पर। हीरा सामने हो और जौहरी की उस पर निगाह नहीं पड़े यह कम संभव है। वह जौहरी था उसकी नजर हीरे पर गई उसने कहा यह पत्थर बेचते हो क्या ?

दुकानदार ने कहा - हाँ सा !

जौहरी ने कहा कि कितने पैसे लोगे तो दुकानदार ने कहा दस रुपए लूंगा। उसने रुपये बढ़ा दिये, क्योंकि चार रुपये देने के लिए तो पहले वाला जौहरी तैयार था।

जब किसी चीज के लेने वाले ज्यादा होते हैं तो भाव बढ़ जाते हैं।

जौहरी ने कहा - नौ रुपए ले लो।

दुकानदार ने कहा- दस रुपए से एक पैसा भी कम नहीं लूँगा। दस में लेना है तो लो, नहीं तो मेरे पास पड़ा है।

जौहरी ने फिर कहा, नौ रुपए ले लो।

दुकानदार कहता है नहीं साहब, एक पैसा भी कम नहीं लूँगा।

जौहरी ने सोचा कि जाते हुए ले लूँगा।

थोड़ी देर बाद एक दल और आया। तीसरे दल में भी एक जौहरी था। वह भी दाल-आटा खरीदने के लिए आया। जैसे ही उस पत्थर पर उसकी दृष्टि गई उसने कहा भाई, क्या यह पत्थर भी बेचोगे?

दुकानदार ने कहा, हाँ सा बेच दूँगा। उसने सोचा कि जरूर यह पत्थर महंगा होगा। आज इसके ग्राहक बहुत आ रहे हैं।

जौहरी ने कहा, कितने पैसे लोगे?

दुकानदार कहता है, 20 रुपए लूँगा।

जौहरी ने विचार किया कि यह नहीं जानता कि यह रत्न कीमती है। लगता है जरूर कोई मेरा दूसरा भाई आया होगा इसलिए इसका भाव बढ़ गया। नहीं तो 20 रुपए कहने की इसकी हिम्मत नहीं होती। यदि रत्न की पहचान नहीं है तो भी वह 20 जाती तो वह 20 रुपए नहीं कहता यदि रत्न की पहचान नहीं है तो भी वह 20 रुपए नहीं कहता। एक पत्थर की कीमत 20 रुपए कौन बोलेगा! जरूर कोई न कोई जौहरी आया होगा, उसने भाव-ताव किया होगा, तभी इसने भाव बढ़ाए, तभी इसने 20 रुपए बोला।

जौहरी ने सोचा कि दाल-बाटी जाने दो। उसने 20 रुपए रखे और कहा निकालो पत्थर को।

दुकानदार ने कहा, दाल-आटा तो ले लो।

जौहरी ने कहा रहने दो। जौहरी ने दुकानदार को 20 रुपए दिए और वहाँ से पत्थर लेकर रवाना हो गया।

यह कहानी क्या बताती है?

‘दर्शन दुर्लभ देव’

पहले वाला जौहरी भी इसको प्राप्त कर सकता था या नहीं?

प्राप्त कर सकता था।

पहले वाला भी प्राप्त कर सकता था, किंतु इसलिए प्राप्त नहीं कर पाया क्योंकि वह प्रमाद में रह गया कि पहले दाल-बाटी, चूरमा खा लेता हूँ, बाद में ले जाऊँगा। थोड़े लोभ में भी पड़ गया।

‘बेला रां बायोडा मोती निपजे’ दूसरा जौहरी भी पहले का भाई निकला। बुद्धि का उपयोग नहीं कर पाया। इसलिए रत्न से वंचित रह गया।

समय की बात समय पर होती है। तीसरा जौहरी रुका नहीं। उसने सोचा कि यहाँ खाने-पीने के लिए रुक गया और दूसरे जौहरी को मालूम पड़ गया तो फालतू का संघर्ष हो जाएगा। अतः मुझे हीरा लेकर यहाँ से चल देना चाहिए और वह चला गया।

जो लोग कर लेंगे, कर लेंगे। जो सोचेंगे कि हो जाएगा, क्या जल्दी है, वह प्रमाद में रह जाएंगे। प्रमाद में रह जाने पर परमात्मा के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं।

‘दर्शन दुर्लभ देव’

किस कारण से दर्शन दुर्लभ हुए?

अपनी स्वयं की वृत्ति के कारण हम परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाते हैं।

गौतम स्वामी को भी भगवान के दर्शन कहाँ हुए! इंद्रभूति दर्शन करने के लिए भगवान के पास नहीं गए थे। वे तो गए थे भगवान से शास्त्रार्थ करने के लिए। भगवान को पराजित करने के लिए। वे नहीं जानते थे कि ये सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं। वे नहीं जानते थे कि ये विपुल ज्ञानी हैं। वे तो यह मान रहे थे कि मेरे से बढ़कर इस भरत क्षेत्र में और कोई विद्वान नहीं होगा। सबसे जानकार मैं ही हूँ। इस घमंड में वे भगवान महावीर से शास्त्रार्थ करने के लिए चले गए।

कहानी यह बताती है कि यज्ञ का प्रसंग था और यज्ञ करते हुए विमान आए और आगे चले गए। गौतम ने देखा कि बात क्या है, यज्ञ मैं कर रहा हूँ और देवता मेरे पास नहीं आकर सीधे कैसे चले गए।

किसी ने कहा कि पास मैं ही महावीर नाम के एक संन्यासी आए हैं,

ये विमान उनकी तरफ जा रहे हैं।

गौतम ने कहा कि जरूर कोई जादूगर होगा, कोई पाखंडी होगा, तंत्र-मंत्र करने वाला होगा जो मेरे यहाँ आ रहे विमानों को अपने पास खींच रहा है। देखता हूँ कि उसकी विशेषता क्या है! जाता हूँ उसके पास। उसको भागना पड़ेगा। मेरे सामने टिकेगा कौन!

वह किसलिए गया भगवान के पास?

जीतने के लिए गया। भगवान को पराजित करने के लिए गया। वह इसलिए गया कि मैं उसको जीतकर आऊंगा, बता दूँगा कि मेरे पास आने वाले विमानों को खींचने का क्या परिणाम होता है। वह वहाँ जाता है।

वहाँ पहुँचने पर भगवान ने कहा, इंद्रभूति!

गौतम ने सोचा, मेरा नाम कैसे जान लिया। फिर सोचा कि मैं तो विश्रुत विद्वान हूँ, पूरा भरत क्षेत्र मेरा नाम जानता है। सब मेरा नाम जानते हैं। कौन नहीं मेरा नाम जानता! ऐसा उसने विश्वास कर लिया।

फिर भगवान ने कहा कि इंद्रभूति, तुम्हारे जैसा विद्वान आत्मा पर संशय करे, आत्मा के विषय में अविश्वास करे, क्या यह उचित है?

यह सुनते ही गौतम की आँखें खुल गईं। उन्होंने सोचा कि मैं पाँच सौ शिष्यों को पढ़ाता हूँ, आत्मा का ज्ञान देता हूँ, आत्मा का व्याख्यान करता हूँ, विवेचना करता हूँ, आत्मा की परिभाषा करता हूँ किंतु अपने भीतर के संशय को मैंने कभी व्यक्त नहीं होने दिया। गौतम ने सोचा कि मेरे भीतर की बात जानने वाला यह कौन है?

यहीं से उनका द्वुकाव जिज्ञासा के रूप में आ गया। वह जैसे ही जिज्ञासा की वृत्ति में आए भगवान ने उनको तत्त्व का बोध दिया। जैसे ही तत्त्व का बोध मिला, वे भगवान के चरणों में न न हो गए। वे साधु बन गए। शिष्य बन गए। प्रसन्न हो गए। वे आए थे भगवान को जीतने के लिए, वैसे एक प्रकार से कहें तो जीत ही गए। सच्ची समझ प्राप्त कर ली। जिस मार्ग को प्राप्त करना कठिन था, दुरुह था, उसे पा गए।

अहंकार करने वालों के लिए इस मार्ग को प्राप्त करना संभव नहीं

होता। हम यदि तीर्थकर देव के मार्ग को जानना चाहेंगे तो अहंकार से नहीं जान पाएँगे। जब तक अहंकार दूर नहीं होगा, तब तक हम तीर्थकर देव के मार्ग को नहीं जान पाएँगे।

‘नमे सो गमे’

जो नमता है, वह तीर्थकर भगवान के मार्ग को जानता है। बिना नमे गोशालक नहीं जान सका। इंद्रभूति से पहले गोशालक भगवान के सम्पर्क में आया। कितना भी साथ-साथ रहा होगा, किंतु कोरा का कोरा रह गया। अपने अहंकार को बढ़ाने वाला बन गया। वह प्रचारित करने लगा कि मैं तीर्थकर हूँ। मैं विशिष्ट ज्ञानी हूँ। वह अपने ज्ञान का आडंबर, प्रचार-प्रसार करने में पीछे नहीं रहता था। उस समय उसके उपासक महावीर भगवान से भी ज्यादा थे। उसको मानने वाले बहुत थे। मानने वाले किसी के भी हो सकते हैं। जिनको जैसा रास्ता मिल जाता है लोग उधर ही बढ़ जाते हैं, किंतु जैसे ही सच्चाई ज्ञात हुई तो अनेक लोगों ने सच्चे धर्म की ओर कदम बढ़ा लिए।

मूल बात यह है कि हम परमात्मा के दर्शन कैसे करें ?

‘दर्शन दुर्लभ देव’

अमीर मित्र ने गरीब मित्र से कहा कि बात क्या है ? चिल्ला क्यों रहा है ?

गरीब मित्र का क्रोध शांत हुआ, तब उसको समझ में आया कि मैं क्या बोल गया, क्या कर गया !

अमीर मित्र ने कहा कि तुम क्या बोल रहे थे कि नहीं चाहिए तुम्हारा स्कूटर !

अब उसको अपने आप पर ही गुस्सा आ रहा है कि व्यर्थ में गुस्सा आ गया। फिर उसने कहा, कुछ नहीं भाई, विचारों की उधेड़ बुन में मैं इतना आगे बढ़ गया, इसलिए मुँह से शब्द निकल गए।

अमीर मित्र ने कहा बात क्या है, तब उसने सही बात बताई।

उस अमीर मित्र ने कहा, यह पड़ा स्कूटर ले जा।

सुदामा भी कृष्ण वासुदेव के पास जब गया, उस समय घबरा रहा था।

वह सोच रहा था कि क्या पता, अब वह बहुत बड़ा आदमी बन गया। कभी हम साथ में पढ़े थे। कभी हम एक गुरुकुल में रहते थे। वर्षों बीत गए पर मिलना नहीं हो पाया। अब पत्नी बोल रही है कि जाओ-जाओ। उस दबाव में उसके कदम बढ़ रहे हैं, किंतु दिल धक-धक कर रहा था। वह श्री कृष्ण वासुदेव के पास गया। श्री कृष्ण वासुदेव ने उनको अपने सिंहासन पर बैठाकर पाँव धोए।

कहानी बहुत लम्बी है, किंतु मित्रता कैसी होती है?

मित्रता में अमीरी और गरीबी बीच में नहीं आती। जहाँ मित्रता के बीच में कुछ आ जाता है वहाँ पर मित्रता निख नहीं पाती। जहाँ कुछ आ जाता है, वहाँ मित्रता का भाव औपचारिक हो जाए है। ऊपर-ऊपर का होता है। मित्रता के बीच में कोई भी बाधा आएगी तो वहाँ रुकावट पैदा हो जाएगी। जहाँ सच्ची मित्रता होती है, वहाँ रुकावट नहीं आती।

सत्य सदा जयकार भविकजन सत्य सदा जयकार,

शांतिलाल का छोटा भाई सुरेश डाक्टरी कर रहा था। सुरेश अच्छे अंकों से पास हुआ। जब उसका रिजल्ट घोषित हुआ तो शांतिलाल को बेहद खुशी हुई। वैसी खुशी हुई, जैसे घर में किसी संतान का जन्म होने पर होती है। वह भी बरसों बाद जन्मी संतान पर होने वाली खुशी जैसी खुशी। कई मनौतियों के बाद संतान पैदा होने पर व्यक्ति को जितनी खुशी होती है, वैसे ही खुशी शांतिलाल को हो रही है। वह बहुत खुश है कि मेरा भाई डॉक्टर बन गया। उसके पाँव जमीन पर नहीं टिक रहे हैं। वह आकाश में उछल रहा है। उसने सोचा कि मोहल्ले वालों को, परिवार वालों को और मेरे भाई के मित्रण, अध्यापकों को भोज दूँ। उसने एक समय रखा। सबको आमंत्रित किया। बड़ी खुशी के साथ, बड़ी उमंग के साथ उन सबको भोज देता है। वह लोगों को पुरस्कृत करता है कि मेरा भाई डॉक्टर बन गया।

ऐसी उमंग, ऐसी प्रसन्नता आशा ने भी कभी शांतिलाल में नहीं देखी। ऐसी प्रसन्नता देखकर आशा भी बड़ी खुश हो रही थी। वह सही रूप में धर्म सहायिका थी। जो पति के साथ निर्वाह करने वाली होती है, उसको धर्म सहायिका माना गया है।

बहुत सी नारियां पता नहीं क्या-क्या बातें बोल देती हैं। पति पर

बार-बार आरोप लगाती हैं। कहती हैं कि आपके घर में आकर मैंने क्या किया! 'न ताता खाया, न राता पहना।' यहाँ आकर मुझे क्या मिला! मैं तो रोज दिनभर मेहनत करती रहती हूँ। मेरी यहाँ कदर ही क्या है! पतिव्रता नारी के लिए इस प्रकार की सोच सही नहीं बताई गई है। सच्ची पतिव्रता वह होती है, जो यह सोचती है कि पति को कैसे साता पहुँचे! जो पति की खुशी में खुशी मानती है। यह नहीं कि आज पति उसकी मन की सभी मुराद पूरी कर रहा है तो वह पीछे-पीछे दौड़े और जैसे ही संकट आए वैसे ही मन में दुराव पैदा कर ले।

ऐसी बहुत सारी घटनाएं इतिहास के पन्नों पर हैं। वर्तमान में भी ऐसी घटनाएं घट जाती हैं। वे सारी कठिनाइयां मुझे कहने की आवश्यकता नहीं है। आप जानते ही होंगे कि क्या-क्या स्थितियां बनती हैं।

आशा, शांतिलाल की खुशी को देखकर बड़ी आनंदित हो रही थी। बड़ी खुश हो रही थी। सबको भोज कराया गया। प्रीतिदान भी दिया।

थोड़ा समय निकला तो शांतिलाल ने कहा कि भाई अब उम्र हो गई। शादी के लिए लोग बार-बार आ रहे हैं। कई लोग आ रहे हैं कि हमारी लड़की है, हमारी कन्या है। अब तुम्हारी शादी हो जानी चाहिए। सगाई होनी चाहिए। हमने कुछ जगह कन्याओं को देखा भी है। यदि तुम्हारी मंशा हो, तुम देखना चाहो तो देख सकते हो।

शांतिलाल ने एक-दो बार बात चलाई, किंतु उसने टाल-मटोल किया कि अभी जल्दी क्या है! किंतु शांतिलाल विचार कर रहा था कि मेरा कर्तव्य बनता है। पिता ने मुझे जवाबदारी सौंपी तो मैं अपने दायित्व का निर्वाह करूँ। इसलिए उसका कहना रहता था कि शादी कर लो। सुरेश ने ज्यादा कुछ नहीं बोला तो शांतिलाल की भी ज्यादा हिम्मत नहीं होती कि वापस जाकर बात कर लू। शांतिलाल कम बोलने वाला जीव था। शांतिलाल ने आशा से कहा कि कैसे ही करके तुम समझाओ। तुम उसकी भाभी हो, देवर को समझाना तुम्हरे लिए आसान होगा। हो सकता है कि तुम्हरे सामने खुल जाए।

आशा ने भी सुरेश से कहा कि आपके भाई साहब बड़े चिंतित रहते हैं। अब पढ़ाई हो गई, प्रैक्टिस भी आपने चालू कर ली। अब तो विवाह होना चाहिए।

सुरेश ने कहा, “भाभी आप मुझे तंग मत करो। मैं अभी इस बात से सहमत नहीं हूँ। करना होगा तब करूँगा। कहना होगा तब कह दूँगा। उसने कहा कि बार-बार यह बात मेरे सामने मत चलाओ।” तंग कहने की बात पुरानी हो गई। अब बात हो गई कि मुझे डिस्टर्ब मत करो। यह पढ़े-लिखे की पहचान हो रही है।

‘भणिया पर गुणिया नहीं’

यह हालत हो गई। आदमी को पढ़-लिखकर इनसान बनना चाहिए, किंतु कई लोग इनसान बनने के बजाय शैतान बन जाते हैं। हैवान बन जाते हैं। उनके सिर पर अहंकार चढ़ जाता है। आदमी सोच लेता है कि मैं बहुत बड़ा ज्ञानी हो गया। यही अहंकार खतरनाक बन जाता है। जब तक वह इस स्थिति को समझ पाता है, तब तक नदी का बहुत सारा पानी समुद्र में जा मिल गया होता है। समुद्र में जाकर खारा पानी बन जाया करता है।

सुरेश भी अपनी अकड़ में चल रहा है। किसी की सुनना नहीं, किसी की कोई बात मानना नहीं। अपनी मनमर्जी करना। बड़े-छोटे का लिहाज भी नहीं।

उसको देखकर शांतिलाल के मन में कई बार विचार भी होता है कि इसका रास्ता बदल गया है। यह अहंकार में जा रहा है, किंतु कहने की हिम्मत नहीं हो रही है। सोचता है कि यह अपने आप में इतना समझदार है, इसको क्या समझाऊँ! किंतु हकीकित, हकीकित ही होती है।

आगे के घटनाक्रम पर अपन समय के साथ विचार करेंगे, किंतु यह निश्चित है कि हम ही अपने विकास में रुकावट पैदा करने वाले हैं।

किसमें रुकावट पैदा करने वाले हैं? बोलो किसमें रुकावट पैदा करने वाले हैं?

‘दर्शन दुर्लभ देव’

परमात्मा के दर्शन को दुर्लभ किसने बनाया?

परमात्मा के दर्शन सुलभ हैं। मंदिरों में दर्शन फिर भी दुर्लभ हो सकते हैं। मंदिरों में ताले लग सकते हैं, किंतु हमारे सिद्ध भगवान के लिए कोई ताला

नहीं है। कोई दरवाजा नहीं है। इनके दर्शन हो जाते हैं। केवलज्ञान होगा और सीधे भगवान के दर्शन हो जाएंगे।

दर्शन हो जाएंगे या नहीं?

(लोगों ने कहा - हो जाएंगे)

रुकावट हमारे मन की है। जब तक हम अपने मन की रुकावट दूर नहीं करते हैं, तभी तक दर्शन दुर्लभ है। अपने भीतर की रुकावटें दूर कर देंगे तो परमात्मा के दर्शन सुलभ हो जाएंगे। हम इस पर चिंतन-मनन करें कि रुकावटें कैसे दूर होंगी। इस पर चिंतन-मनन करें कि हे प्रभु! आपके दर्शन को सुलभ कैसे करूँ।

तपस्या निरंतर जारी है। गगन मुनि जी म.सा. मासखमण से एक कदम दूर हैं। उन्होंने तीस के पच्चक्खाण कर लिए थे और अक्षिता श्री जी म.सा. के 28 की तपस्या चल रही है। 29 के पच्चक्खाण कराए हुए हैं। भाई-बहनों की तपस्या भी चल रही है। आगे क्या स्थिति बनेगी यह हमें समय के साथ ज्ञात होगा। अपनी शक्ति के अनुसार जितनी तपस्या हो, हम उतनी करें। हमें कषायों को मंद करने का प्रयत्न करना चाहिए। अहंकार को कम करने का प्रयत्न करना चाहिए। अहंकार को मंद करेंगे तो जीवन को रौनक का अनुभव कर पाएंगे। इतना ही कहते हुए विराम लेता हूँ।

28 जुलाई, 22

